## महाराष्ट्र राज्य पुराभिलेख व पुरातत्त्व मंडल

## ऐतिहासिक प्रकाशन ग्रंथमाला क्र. ३

प्रधान संपादक
**वि. गो. खोबरेकर**
संचालक, पुराभिलेख व पुरातत्त्व,
महाराष्ट्र शासन



इब्राहीम आदिलशाह (ब्रिटिश म्युझियम, लंडन)

महाराष्ट्र राज्य पुराभिलेख व पुरातत्त्व मंडल प्रकाशन क्र. ३

अ़ब्दुल दिह्लवीकृत

# इब्राहीमनामा

(लेखनकाल शकाब्द १५२५—हिजरी १०१२)

ज़बाँ हिन्दुई मुंज सो, हूँ दिह्लवी
न जानूँ अ़रब हौर अ़जम मस्नवी

—अ़ब्दुल

व्याख्याकार

**देवीसिंग व्यंकटसिंग चौहान**
बी.ए. (ऑनर्स), एल्.एल्.बी.

शकाब्द १८९५

शक १८९५ (१९७३)

मूल्य : ६ रुपये ७५ पैसे

**प्रकाशक :**

संचालक, पुराभिलेख
व पुरातत्त्व विभाग,
महाराष्ट्र राज्य, बम्बई ४०० ०३२.

**मुद्रक :**

व्यवस्थापक,
शासकीय मध्यवर्ती मुद्रणालय,
बम्बई ४०० ००४

# इब्राहीमका व्यक्तिमत्त्व

(बैन) भाका न्यारी न्यारी भाव एक
कहा तुरुक कहा बरहामन ॥

(बैन) उत्तम भाग नीको सो सोहे
जा सरसुती हुई परसन ॥

(अभोग) इबराहीम सौंसार चाहे बिद्या
सबद गुरु सेवा जप कर एक मन ॥

(इब्राहीमकृत नवरस, गीत ४६)

---

(अभोग) कंठ ढाल फटिक जपमाल नगर
बिद्यापूरी बाहन हती ॥

इबराहीम कू गोत, पिता देवगुरु गनपति,
माता पवित्तर सरसुती ॥

(इब्राहीमकृत नवरस, गीत ५६)

# वर्णलिप्यन्तर पद्धति

| अरबी | फार्सी-उर्दू | नागरी | अरबी | फार्सी-उर्दू | नागरी |
|---|---|---|---|---|---|
| ا | अलिफ़ | अ | ر | रे | र |
| ب | बे | ब | ڑ | ड़े | ड़ |
| پ | पे | प | ژ | ज़्हे | ज़्ह |
| ت<br>ط | ते<br>तोय | त | ش | शीन | श |
| ٹ | टे | ट | ع | अ़ैन | अ़ |
| ث<br>س<br>ص | से<br>सीन<br>साद | स | غ | ग़ैन | ग़ |
| ج | जीम | ज | ف | फ़े | फ़ |
| چ | चीम | च | ق | क़ाफ़ | क़ |
| ح<br>ہ ، ه | हे<br>हे | ह | ک | काफ़ | क |
| خ | ख़े | ख | گ | गाफ़ | ग |
| د | दाल | द | ل | लाम | ल |
| ڈ | डाल | ड | م | मीम | म |
| ذ<br>ز<br>ض<br>ظ | ज़ाल<br>ज़े<br>ज़ाद<br>ज़ोय | ज़ | ن | नून | न |
| | | | و | वाव | व |
| | | | ی | या | य |

# अनुक्रम

# अनुक्रम

अनुक्रम



**चित्रानुक्रम**

# संदर्भग्रंथोंकी सूची

**इब्राहीमनामा**––हस्तलिखित,

(१) औन्ध (महाराष्ट्र) पुराणसंग्रहालय, फार्सी लिपिमें

(२) सालारजंग हस्तलिखित ग्रंथालय, हैदराबाद

**किताब-ई नौरस** (उर्दू), डॉ. नज़ीर अहमद, लखनौ, शक १८७७

**अ़लीनामा**, मुल्ला नुस्रती, संपादक––प्रो. सिद्दीकी, हैदराबाद, शक १८७१

**ईराण ब-अहदे-सासानियान**, मूल लेखक––ख्रिस्टनसेन, भाषांतरकार––डॉ. मुहम्मद इक़बाल (उर्दू), अंजुमन-ईतरक्कीए–उर्दू, दिल्ली, शक १८६३

**अलीगढ़ तारीख़े-अदबे-उर्दू**, प्रथम खंड, अलीगढ़ विद्यापीठ, शक १८८४

**क़दीम उर्दू**, संपादक––डॉ. मसऊद हुसेन खान, उस्मानिया विद्यापीठ, शक १८८८

**कलामूल्मलूक** (फार्सी-उर्दू), सआ़दतअली रिज़्वी, हैदराबाद, शक १८४५

**शिअ़रुल अ़जम**, मौलाना शिबली, आज़मगढ़, शक १८४५

**मुल्ला नुस्रती**, डॉ. अ़ब्दुलहक़, अंजुमन-ई तरक़्क़ीए–उर्दू, दिल्ली, शक १८६६

**गुल्शने–इश्क़**, डॉ. अ़ब्दुलहक़, अंजुमन-ई तरक़्क़ीए–उर्दू, कराची, शक १८७४

**तारीख़-ईइस्कंदरी**, नुस्रतीकृत (हिन्दी), दे. व्यं. चौहान, पुणे, १९६९

**रिज़्वानशाह व रूहअफ़ज़ा**, फायज़कृत (उर्दू), संपादक––सय्यद मुहम्मद, हैदराबाद, शक १८७८

**चंदरबदन व महयार**, मुक़ीमीकृत (उर्दू), संपादक––अ. सिद्दीकी, हैदराबाद, शक १८७८

**ए लिटररी हिस्टरी ऑफ पर्सिया** (अंग्रेजी), ई. जी. ब्राऊन, खण्ड प्रथम, शक १८२४; और खण्ड द्वितीय, शक १८२६

**तारीख-ई फिरिश्ता**, ब्रिग्जकृत, अंग्रेजी भाषान्तर, खण्ड ३, कलकत्ता, शक १८३२

**ईरान**, पूरे–दाऊद, गव्हर्नमेण्ट फेलोशिप लेक्चर्स (अंग्रेजी), कामा इन्स्टिटचूट, मुम्बई, क्र. ६, शक १८५७

## सन्दर्भ ग्रंथोंकी सूची

**प्रो. व्युइल्यम्स जॅक्सन स्मारक ग्रंथ** (अंग्रेजी), कामा प्राच्य संस्था, मुम्बई, शक १८७६

**डी. जे. ईरानी स्मारक ग्रंथ** (अंग्रेजी), ईरान लीग, मुम्बई, शक १८६५

**म. म. द. वा. पोतदार स्मारक ग्रंथ**, शक १८७२

**ग्लोरीज ऑफ बीजापूर**, डॉ. भगवत दयाल वर्मा, पूना

**मुस्लिम एपिग्राफी इन साउथ वेस्टर्न इण्डिया**—अंग्रेजी डॉक्टरेट प्रबंध, डॉ. भगवत दयाल वर्मा, पूना (अप्रकाशित), मुम्बई विद्यापीठ, शक १८८६

**दि किंग्डम ऑफ अहमदनगर**, अंग्रेजी, डॉ. राधेश्याम, दिल्ली, शक १८८८

**शिवचरित्रवृत्तसंग्रह** (मराठी), खण्ड ३, प्रो. ग. ह. खरे, पूना, शक १८६३

**दक्खिनी हिन्दी का उद्भव और विकास**, डॉ. श्रीराम शर्मा, प्रयाग, शक १८८६

**उक्तिव्यक्तिप्रकरण**, दामोदरकृत, डॉ. सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या, मुंबई, शक १८७५

**कुतबशतक**, डॉ. माताप्रसाद गुप्त, वाराणसी, शक १८८९

**ब्रजभाषा**, डॉ. धीरेन्द्र वर्मा, प्रयाग, शक १८७६

**एपिग्राफिया इण्डो-मोस्लेमिका** (संक्षेप एइंमो)

## GENERAL EDITOR'S INTRODUCTION

*Ibrahimnama* is a poem of about 712 stanzas written in Dakkhini Hindi by one Abdul Dihlawi in 1603 A.D. This poet was in the Court of the Sultan of Bijapur, Ibrahim Adilshah II (1580-1627). This king was a great patron of art and poetry. Many poets of eminence flourished under his patronage. He also extended his patronage to men of erudition. He built the magnificent suburb of Bijapur called Navaraspur. In this suburb were constructed attractive houses for poets, singers, musicians and other artists. All facilities for them were provided by this generous Sultan. Due to this type of encouragement to them, many artists, musicians, singers and poets flocked to the Court of Bijapur.

The poet Abdul who was at Delhi was also invited to the Bijapur Court by Ibrahim Adilshah II. He was asked to recite the story of the Sultan's life. Thereupon Abdul inquired with the Sultan in which language he should compose his life-story. The poet submitted that he did not know Arabic or Persian. He only knew *Hindui*. On this the Sultan asked Abdul to compose his work in the *Hindui* language.

The work composed by the poet Abdul on the life of Ibrahim Adilshah II does not give us much information of historical value. Nor do instances of the valour of the Sultan nor his good deeds towards his people find much place in the work. However the poem gives us some important information not available in any history of that time. The poet was an eye-witness to the actual conditions of the reign of the Sultan in the years 1603-4 A.D. The subject of the poem is the praise of the king Ibrahim Adilshah II, his city, Court and the *nauras* palace. The poet describes how the trees of the forest fell passionately in love with the king when they heard about his glory and grandeur. A description of the birthday celebrations, detailed accounts of the ornaments worn by the dancing girls and details of social ceremonies held in the court are to be found in the poem. The poem ends with a comparison between the king and the god Indra in all his pomp and glory. Ibrahim Adilshah II was called *Jagat Guru*. He composed poems, a collection of which is famous under the name of *Nauras*. He also made the Dakkhini his court language in place of Persian. This matter is often repeated in this poem.

The poem *Ibrahimnama* has been subjected to a critical study by the eminent indologist Shri Devisinghji Chauhan. In his introduction he refers to the manuscript, author and matters of historical interest. He has also brought out the chief features of the poem commenting at the same time on the language of the poem in detail. His critical analysis of the work is exhaustive. There is hardly any need to add anything more to it.

We are happy to present this historical poem to the scholarly world.

I thankfully acknowledge the unfailing co-operation of the Manager and the staff of the Government Central Press, Bombay, in bringing out this work.

V. G. KHOBREKAR,
*Director of Archives and Archaeology,*
*Government of Maharashtra.*

# अब्दुलकृत इब्राहीमनामा

## भूमिका

**इहान्वयमुखेनैव सर्वं व्याख्यायते मया ।**

**नामूलं लिख्यते किञ्चिन्नानपेक्षितमुच्यते । ——मल्लिनाथ**

## १. द्वितीय इब्राहीम आदिलशाह

शक १२१६ में सर्वप्रथम अलाउद्दीन खिलजीने महाराष्ट्रके यादववंशीय नरेश रामदेव रावको, उसकी अपार संपत्ति हरण करके, अपना सामन्त बनाया। दिल्लीकी यह शक्ति बढ़ती गई। शक १२४० में मलिक काफ़ूरने देवगिरिकी यादववंशीय और वरंगलकी काकतीयवंशीय राज्यसत्ता नष्ट कर दीं। लेकिन दक्षिणापथमें दिल्लीकी सत्ता बहुत वर्षोंतक नहीं चल सकी। शक १२६९ में अलाउद्दीन हसन गंगू बहमनीने बहमनी राज्यकी दक्षिणमें स्थापना की। बहमनी राज्यवंशकी सत्ता गुलबर्गा और बीदरसे लगभग डेढ़ शती तक चलती रही। इस बहमनी राज्यके अन्तपर उसके पाँच प्रमुख सेनानियोंने अलग अलग पाँच सूबोंपर अपना स्वतंत्र क़बजा जमाया, वह आज़ाद राज्योंके रूपमें अपने राजकीय व्यवहार करने लगे। सबसे पहले बुर्हानपूरका इमादशाही वंश मुगलोंकी बढती हुई केन्द्रीय सत्ताका भक्ष्य बना। बीदरका बरीदशाही राजवंश कभी भी बलवान नहीं बन सका। अकबर सम्राटने शक १५२० में अहमदनगरकी निजामशाहीपर प्राणघातक आघात किया था। किन्तु मलिक अम्बर जैसे कुशल सेनानी और शासकके हाथों निजामशाहीकी प्राणज्योति बच गई। मलिक अम्बरने उसमें फिरसे जान भर दी। उसके हाथमें अहमदनगर जहांगीरके लिए अजिक्य रहा। शाहजहानके ईडीचोटीका ज़ोर लगानेके बावजूद भी मलिक अम्बरने, भातवडीके रणक्षेत्रमें शक १५४६ में, प्रचंड मुगलसेना और इब्राहीम आदिलशाहकी सहायक सेनाको बुरी तरह पराजित किया और अपनी अजिक्यता सिद्ध कर दी। परन्तु शक १५४८ के वैशाख मासमें मलिक अम्बरने स्वर्गवास किया और शक १५५७ में आदिलशाहीकी सहायतासे मुगलोंने निजामशाही राजवंशको हमेशाके लिए स्मृतिशेष कर दिया।

बहमनी राज्यके एक सेनानी सुल्तान क़ुली कुत्बुल्मुल्कने शक १४१५ के लगभग अपना स्वतंत्र राज्य स्थापित कर, शक १४४० में अपना राज्यारोहण समारोह संपन्न किया। यह कुतुबशाही वंश अच्छे प्रकारसे शककी सोलहवीं शतीके अंततक शासन चलाता रहा। मुगल सम्राट औरंगज़ेबने उसको शक १६०९ के आरम्भमें नष्ट किया और उस वंशके अंतिम नरेश अबूल-हसन ताना शाहको औरंगाबादमें काराबद्ध रखा।

बहमनी राजवंश शककी चौदहवीं शतीके अन्तमें अपना शासन अच्छी तरहसे सुधार रहा था कि उस वंशके सर्वश्रेष्ठ, कुशल राजकारणपटु प्रधान मंत्री ख़्वाजा महमूद गावानका, अपने नरेशके हाथों शक १३९३ में वध किया गया। दस सालोंके अन्दर अन्दर राज्यकी व्यवस्था बिगड गयी। सेनानियोंने अपने अपने सूबोंपर कब्जा कर लिया। पन्हालागड, जुन्नर और बीजापूरके सूबेदार यूसुफ़ आ़दिलख़ान सावीने अपना स्वतंत्र राज्य शक १४१२ में घोषित कर दिया। यूसुफ़ आ़दिलख़ान और बीस साल जीवित रहा। उसने इस कालमें अपना राज्य निष्कंटक बनानेकी चेष्टा की। यूसुफ़ आ़दिलख़ान तुर्कोंके राजवंशमें पैदा हुआ था। वह न्यायी, कलाप्रेमी, शूर और शिया धर्मपंथका अनुयायी था। आदिलशाही राजवंशका दूसरा नरेश इस्माईल आ़दिलख़ान था। उसने २४ वर्ष राज्य चलानेके बाद शक १४५६ में स्वर्गवास किया। मालूम होता है कि गो यूसुफ़ आ़दिलख़ानने २०–२१ वर्षोंतक स्वतंत्र राज्य चलाया, उसने राज्यारोहण समारोह नहीं करा लिया था। उसके पुत्र इस्माईलने भी यही परम्परा, कमसे कम, कुछ वर्षोंतक चलाई। उसने भी शाहकी उपाधि धारण नहीं की। यह सत्य उसके कालके दो तीन शिलालेखोंसे प्रकाशमें आ जाता है। इस्माईल आ़दिलख़ानके राज्यस्थित पन्हालगडपर शक १४३३ (हिजरी ९१७) में एक तालाब बनाया गया। उस गडपर उपरोक्त हिजरी सन बतलानेवाला एक शिलालेख फार्सी भाषामें अब भी मौजूद है। यूसुफ़ आ़दिलख़ानका देहान्त शक १४३२ (हिजरी ९१६) में हुआ। यह शिलालेख उसकी मृत्युके दूसरे वर्षका है। उसमें बहमनी राजवंशके नरेश सुल्तान महमूद शाह बहमनीका नामोल्लेख कर, बीजापूरस्थित सुंबुल मस्जिद नामी वास्तुमें एक शिलालेख लगा हुआ है। उसमें भी सुल्तान महमूदशाह बहमनीका नामोल्लेखके साथ आदर किया जा कर बीजापूर नरेशको आ़दिलख़ानी कहा गया है। इस मस्जिदके शिलालेखका वर्ष शक १४३९ (हिजरी ९१८) है।

तीसरा और एक फार्सी भाषाका शिलालेख प्राप्त है। वह बीजापूर किलेके चम्पा महल नामी स्थानके समीप गडके तटमें लगा हुआ है। उस शिलालेखमें तिथि २४ रबीऊलआख़र ९२८ हि. (२३ मार्च ई. स. १५२२) दी गई है। लेखमें बहमनी वंशका कोई उल्लेख नहीं है। परन्तु बीजापूर नरेशका उल्लेख आ़दिलख़ान बिन आ़दिलख़ान अथवा आ़दिलख़ानके पुत्र आ़दिलख़ानके रूपमें किया गया है। महमूदशाह बहमनीका देहान्त शक १४४० (हिजरी ९२४) में हो चुका था। लेकिन बहमनी राजवंश अभी चालू था। उसका अंतिम राजा शक १४४८ (हिजरी ९३२) में, अपने राजवंशको, स्मृतिमात्र रखते हुए चल बसा। मालूम होता है कि जबतक बहमनी वंशकी गद्दी बीदरमें चल रही थी बीजापूरके नरेशोंने अपने नामोंमें शाह शब्दका प्रयोग नहीं किया था। ईस्माईल आ़दिलख़ानने इसके पश्चात् समारोहपूर्वक राज्यरोहण कर, शाह उपाधि ग्रहण कर ली हो। इस अंतिम शिलालेखमें उस लेखका कारण यह बतलाया गया है कि विजयनगरके सम्राट कृष्णदेवराय (किश्तनराय) ने बीजापूर किलेका महासिरा कर डाला था। चार दिनोंके पश्चात् महासिरा उठा कर वह चला गया। शत्रूके पंजेसे मुक्ति मिलनेके इस आनन्द समारोहके सुअवसरपर एक नया बुर्ज बनाया गया, तटका कुछ भाग नया तामीर हुआ। इसी समय यह पत्थर लेख तटकी दीवारमें बिठाया गया। उपरोक्त चर्चासे यह बात सिद्ध होती है कि आ़दिलशाही राजवंशके पहले दो नरेशोंने अपना स्वतंत्र राज्य हो जानेके बावजूद भी, कई वर्षोंतक अपने नामोंमें शाहकी उपाधिका समावेशन नहीं किया था।

(इस सम्बन्धमें देखिए डॉ. भगवतदयाल वर्मा, पूना, का ग्रन्थ (अंग्रेजी)——दि ग्लोरीज ऑफ् बीजापूर)। फिरिश्ताने अपने इतिहास ग्रन्थमें लिखा है कि जब यूसुफ़ आदिलखानने अपना स्वतंत्र राज्य स्थापन किया तो उसने मुकुंदराव नामी एक मराठा सेनानीपर आक्रमण किया। मुकुंदराव और उसका भाई प्रथम बहमनी राज्यकी सेवामें थे। लेकिन जब उस राज्यकी व्यवस्था छिन्नभिन्न हुई तो मुकुंदरावने सह्याद्रिके एक मज़बूत गडपर क़बज़ा कर लिया। उसने मराठा काश्तकारोंको अपनी सेनामें भरती कर लिया। यूसुफ़ आदिलखानने दो हज़ार घोडेस्वार और पाँच हज़ार पायदलके साथ मुकुंदरावपर हल्ला कर उसको पराजित किया। मुकुंदरावका पूरा खानदान यूसुफ़के हाथमें लग गया। यूसुफ़ने मुकुंदराव की बहनसे विवाह किया और नाम बूबूजी खानुम रखा। इस पत्नीसे उसको एक पुत्र इस्माईल और तीन लड़कियाँ पैदा हुईं। यूसुफ़ आदिलखानके पश्चात् यही इस्माईल बीजापूरका स्वामी बना। सबसे बडी पुत्री मरीयम अहमदनगरके बुर्हान निज़ामशाह भैरीसे ब्याही गई। दूसरी पुत्री ख़दीजाका विवाह गावलगड और विदर्भके नरेश अलाउद्दीन इमादुल्मुल्कसे हुआ। तीसरी पुत्री बीबी सीतीकी शादी बीदरके अहमदशाह बहमनीसे बनी।

दक्खिनी हिन्दीके विकासके सम्बन्धमें यहाँ यह बात याद रहे कि इस्माईल आदिलशाह विदेशस्थ मुसलमानोंको अधिक चाहता था। इस प्रकार कि वह दक्खिनी मुसलमानोंका प्रोत्साहन न करता था। हिन्दुशाहके पुत्र मुहम्मद क़ासिम फिरिश्ताके अनुसार जो फार्सी भाषामें लिखे गए प्रसिद्ध इतिहासका लेखक है——इस्माईल आदिलशाहको ईरानी रीतिरिवाज, गायन और भाषा अतीव प्रिय थीं और इन्हीं दक्खिनी बातोंको वह पसंद नहीं करता था। वह क्वचितही दक्खिनी भाषामें भाषण किया करता था। उसको यह भाषा पसंद नहीं थी। उसने भाद्रपद शक १४५६ (१६ सफर ९४१ हिज़री) में स्वर्गवास किया।

इस्माईल आदिलशाहके दो बेटे थे, मल्लू बड़ा और इब्राहीम छोटा। बड़ा होनेके कारण मल्लू बादशाह बना। लेकिन उसके दुराचारसे जनता और नगरके प्रतिष्ठित सरदार तंग आ गए, अंतमें उसको पकड लिया गया और उसकी आँखें निकाली गईं। केवल ७ मासके शासन कालमें प्रथम ईब्राहीमशाहको गद्दीपर बिठाया गया।

प्रथम इब्राहीम आदिलशाहने गद्दी पाते ही सुन्नी पंथकी घोषणा की। उसको ईरानी रीतिरिवाज आदिसे बडी चिड़ थी। ईरानी परम्पराके अनुसार उसकी फौजके सैनिक एक विशिष्ट आकारकी केशरी वर्णकी टोपी पहना करते थे। इब्राहीमने उसको तुरन्त बंद कर दिया। इब्राहीमको विदेशी नेता और सेनानियोंकी बडी घृणा थी। उसने राज्यसूत्र हाथमें लेतेही आतंकवादी सब विदेशियोंको अपनी सेवासे हटा दिया। जो नोकरीमें रहे ऐसे विदेशियोंकी संख्या अब उसके राज्यमें केवल ४०० रह गई। अब उसने दक्खिनी मुसलमान और हबसियोंकी भरती की। असदखान लारी उसका मुख्य मंत्री था। उसको क़ायम रखा गया, उसके साथियोंको कनिष्ठ स्थानोंपर हटाया गया। उच्च स्थानोंपर दक्खिनी और हबशियोंको उन्नत किया गया। विदेशी सैनिक और सेनानी समीपके राज्योंमें चले गए। ऐसे ३,००० सैनिक विजयनगरके सम्राट् रामदेव रायकी सेवामें चले गए, इब्राहीम आदिलशाहने ऐसी तीस हजार दक्खिनी सेना सुसज्ज की। अपने पिताकी

स्वीकारी राज्यव्यवस्थामें भी इब्राहीमने कई तबदीलियाँ कर डालीं। पुराने समयमें राज्यका हिसाब फार्सी भाषामें रखा जाता था। उसने यह पद्धति तज दी। उसने ब्राह्मणोंको शासन सेवामें प्रविष्ट कर सब आयव्यय भाषामें रखना आरम्भ किया। इस प्रकार शासन व्यवस्थामें हिंदुओं–ब्राह्मणोंका वर्चस्व बढ़ता गया। असदखानको आज्ञा दी गई कि वह दक्खिनियोंको सेवामें नियुक्त करे और वह सुन्नी पंथका ग्रहण करे। इब्राहीम आदिलशाहने २४ वर्षोंतक राज्य चलाया, शक १४७० (हिज़री ९६५) में उसका देहान्त हुआ।

प्रथम इब्राहीमके पश्चात् उसका पुत्र प्रथम अली आदिलशाह सिंहासनका स्वामी बना। वह अपनी धार्मिक प्रवृत्तिसे शियापंथीय था। राज्यसूत्र हाथमें लेतेही उसने शिया रीतिरिवाज अपने राज्यमें चालू किए। उसके अच्छे न्यायप्रिय होनेका, इतिहास लेखक फ़िरिश्ताने वर्णन किया है। वह अपनी प्रजाके दुःखों और शिकायतोंकी ओर काफ़ी ध्यान देता था। उसके समयमें राज्यकोश भरपूर था। बीजापूर नगरमें उसने कई नयी वास्तूएँ निर्माण कीं। फ़िरिश्ताके अनुसार, नगरके समीप अपने राज्यारोहणके शुभ अवसरको चिरस्मृत बनानेके लिए, उसने एक नया नगर बसाया और उसका नाम शाहपूर रखा। आदिलशाही राजवंशका वह सबसे श्रेष्ठ वास्तुनिर्माता है। उसके बनाए अली रोज़ा––जिसमें उसका दफ़न किया गया है, जुम्मा मस्जिद, शाहपूरका तालाब, बीजापूर क़िलेका बनाया हुआ मज़बूत तट और शहरको पानी पहुँचानेकी जलयोजना उसीकी बनाई हुई हैं। यह वास्तुएँ अभी भी नजर आती हैं।

प्रथम अली आदिलशाह अपने राज्यविस्तारके सम्बन्धमें बडा महत्त्वाकांक्षी था। उसने अपनी सीमाएँ बढ़ानेकी कोशिश की। राज्यकी बागडोर हाथमें लेतेही उसने तत्कालीन विजयनगरके बलिष्ठ सम्राट् रामराजासे मित्रता संपादन कर ली। अहमदनगरके हुसेन निजामशाहसे उसकी अनबन रही। विजयनगरकी सहायतासे अलीने निज़ामशाहके दो प्रमुख गड कल्याणी और सोलापूर और उनसे सम्बन्ध प्रदेश, अपने वशमें कर लिया।

**तालीकोटका युद्ध**

प्रथम अली आदिलशाहके राज्य कालकी सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण घटना तालीकोटका युद्ध है। यह युद्ध शक १४८६ (२६ दिसम्बर सन १५६४) में बना। इस युद्धमें एक पक्ष विजयनगरके संपन्न और विस्तीर्ण हिन्दु साम्राज्यका स्वामी रामदेवराय था और दूसरे पक्षमें बीजापूरका पाँचवा बादशाह प्रथम अली आदिलशाह, अहमदनगरका नरेश हुसेन निजामशाह, गोवलकुण्डाके नरेश इब्राहीम कुतुबशाह और बीदरके अली बरीदशाह थे। अंतिमोल्लेखित चारों मुसलमान राजाओंने विजयनगरकी हिन्दुसत्ता मिटानेके लिए गुटबन्दी कर ली थी। एक दूसरेसे विश्वासपात्र रहनेके लिए उन्होंने शपथ सौगंद लिए थे। फ़िरिश्ताने बतलाया है कि इस पूरी योजनाका अभिक्रमण और संयोजन अली आदिलशाहने किया था। उसने अपने राजदूत पडोसी नरेशोंकी ओर भेज दिए। हुसेन निजामशाहसे अपने दोस्ती चिरस्थायी बनानेके लिए अलीने अपनी बहनका विवाह हुसेन निजामशाहके पुत्र मुर्तज़ासे किया जाना निश्चित किया और यह भी निश्चय हुआ कि हुसेनकी पुत्री चांदबीबीसे अलीका विवाह हो, दहेजमें हुसेन शोलापूरका क़िला और कुछ प्रदेश आदिलशाहको दे दे। इस युद्धमें विजयनगरके विशाल सेनासागर

को परास्त होना पडा। युद्धमें अहमदनगरके हुसेन निज़ामशाहने बडे धैर्यसे काम किया और रामदेवरायका शिर काट कर शत्रुसेनाको प्रदर्शित किया। यह युद्ध विजयनगर साम्राज्यको प्राणघातक सिद्ध हुआ। यह राज्य शक १२५८ में स्थापित हुआ था। अब वह २२८ वर्षोंके जीवितकालके पश्चात् एक दिनकी दुर्घटनासे नष्टप्राय हो गया। पूरा विजयनगर शहर, उसके उच्च तट, भव्य और विशाल मंदिर, प्रासाद और अन्य वास्तुएँ शत्रुसेनाके हाथों विनष्ट हो गयीं। मुसलमान विजेताओंको अपार धनसंपत्ति हाथ आ गई।

शक १४८९ में अली आदिलशाहने निज़ामशाही प्रदेश जीत लिया और धारूरमें (ज़िला बीड, महाराष्ट्र) एक नए क़िलेका निर्माण किया। अब अलीके राज्यकी सीमाएँ दूर दूर तक फैली हुई थीं। कृष्णा और तुंगभद्रा नदियोंके संपन्न प्रदश बीजापूरके राज्यमें सम्मीलित हुए। समुद्रतटका काफी प्रदेश भी राज्यमें आ गया। शक १४९५ में अलीने तोरगल क़िला हस्तगत कर लिया और बंकापूर क़िलेको १५ महिनेके महासिरेके पश्चात् अपने वशमें कर लिया। फ़िरिश्ताके वर्णनके अनुसार, क़िलेके अंदरका एक भव्य मंदिर गिरा दिया गया। यह मन्दिर अभी तक मौजूद है। उसी मन्दिरके पत्थरोंसे उसी पायापर एक मस्जिद बनाई जिसका पहला पत्थर अलीने अपने हाथोंसे रखा। लेकिन पश्चात्कालमें इस मस्जिदकी पायापर नया मन्दिर बनाया गया। प्रो. ग. ह. खरे, पूनाके अनुसार यह मन्दिर आज भी मौजूद है। शक १५०२ में अली आदिलशाहका एक कंचुकीके ख़ंजरसे वध हुआ। हिन्दीके लिए अभिमानकी बात यह है कि तालीकोटके युद्धपर हसन शौक़ी नामी कविकी एक रचना ज़फ़रनामए-निज़ामशाह (लेखन शक १५४८ के पूर्व) प्राप्त है।

अली आदिलशाहका समय ऐसा है कि उसमें दक्खिनी हिन्दीकी रचनाएँ आरम्भ हो चुकी थीं। बीजापूर नगर हिन्दीके विकासका जबरदस्त केन्द्र रहा है। यह रचनाएँ शककी सतरहवीं शतीमें भी होती रहीं। इस राजधानीमें सबसे प्रथम कवि, जिसकी रचनाएँ हमतक पहुँची हैं, शाह मीरांजी है। उसको शम्सुलउश्शाक़ (साधकोंका सूर्य) की उपाधि थी। खुशनामा आदि उसकी कई रचनाएँ प्राप्त हैं, लेकिन वह अभी हिन्दीमें अप्रकाशित हैं। उसका देहान्त शक १४८४ (हिजरी ९७०) के पश्चात् हुआ। उसका पुत्र बुर्हानूद्दीन जानम भी बीजापूर ही में रहता था। पिताके समान उसकी भी कई रचनाएँ प्राप्त हैं। दोनों पितापुत्र सूफ़ी थे, उनकी रचनाएँ भक्तिमार्गपरक हैं। जानमका देहान्त शक १५२१ (हिजरी १००७) में होना पाया जाता है। यह दोनों कवि प्रथम अली आदिलशाहके शासनकालमें जीवित थे।

### राज्यारोहण

शक १५०२ में गद्दी मिलते समय द्वितीय इब्राहीम आदिलशाहकी आयु केवल ९ वर्ष की थी। वह स्वयं राज्य चलानेके लिए असमर्थ था, तो सहजतया राज्यकी सब बागडोर मुख्य मंत्रीके हाथमें चली गयी। वही राजाका पालक होता था। बाल राजाकी सुरक्षा और नियंत्रणा भी उसीके हाथमें रहा करती थीं। दरबारमें विदेशी अर्थात् ईरानी वा तुर्की नवागत मुसलमानोंका एक गुट था। दूसरा गुट भारतमें पुराने ज़मानेसे रहे हुए मुसलमानोंका था जिनको साधारणतया दकनी कहा जाता था। इन दकनी मुसलमानोंमें

बहुधा हबश अर्थात् अॅबिसिनियाके मुसलमान हबशियोंका भी समावेश था। यह दो पक्ष दक्षिणावर्तके मुसलमानोंमें साधारणत: डेढ़ शतीसे अधिक पूर्वसे चलते आ रहे थे। उन पक्षोंका जन्म बहमनी राज्यकालही में हो गया था। यह गुटबन्दी समयके अनुसार ज़बरदस्त बन जाती थी। एक दक्खिनी वा विदेशी श्रेष्ठतम अधिकारी हो जाता तो वह विदेशी वा दखनी सरदारोंकी जागीर या इनाम निकाल लेता। कइयोंको क्षुद्र कारणपर नोकरीसे निकाल भी देता। इसी द्वंद्वमय वायुमण्डल में इब्राहीम गद्दीका स्वामी बना।

## बीजापूरके आदिलशाही नरेशोंका वंशवृक्ष

- १. यूसुफ़ आदिलखान (राज्यकाल शक १४१२–१४३२)
  - मसीती (अहमदशाह बहमनीकी पत्नी)
  - खदीजा (अलाउद्दीन इमादशाहकी पत्नी)
  - २. इस्माईल आदिलखान (शक १४३२–५६)
    - अल्लू
    - ३. मल्लूशाह (७ मास)
    - ४. प्रथम इब्राहीम (शक १४५६–८०)
      - तहमास्प
      - ५. प्रथम अली (शक १४८०–१५०२)
      - हुदीया (मुर्तज़ा निज़ामशाहकी पत्नी)
      - (तहमास्प की संतान)
        - खदीजा (मीरां हुसेन निज़ामशाहकी पत्नी)
        - ६. द्वितीय इब्राहीम (शक १५०२–४९)
          - सुल्तान बेगम
          - फ़ातिमा
          - पुत्र
          - ७. मुहम्मद (शक १५४९–७८)
            - ८. द्वितीय अली (शक १५७८–९४)
              - शहरबानू (औरंगजेब पुत्र मुअज़्ज़मकी पत्नी)
              - ९. सिकंदर (शक १५९४–१६०८ पदच्युत)
          - पुत्री (मुहम्मद कुतुबशाहकी पत्नी)
          - सुलेमान
          - दर्वेश
        - इस्माईल
    - अब्दुल्ला
  - मरीयम बुर्हान (निज़ामशाहकी पत्नी)

इब्राहीमके राज्यशासनके प्रथम दस वर्ष राजपालकोंके अनुशासनमें बीत गए। शक १५०२ में कामिलख़ान नामी दक्खनी सेनानी राज्यका कर्ताधर्ता बना। शासन हाथमें लेतेही वह सर्वाधिकारी बनना चाहता था। अली आदिलशाहकी पत्नी और इब्राहीमकी काकी इतिहासप्रसिद्ध चांदबीबी या चांद सुल्तानासे कामिलखानकी अनबन हो गयी। एक सेनानी किश्वरखानकी सहायतासे चांदबीबीने कामिलखानको गिराना चाहा। अपना अधःपात समीप देखते हुए कामिलखान राज्यके कोशके साथ भाग जाना चाहता था। लेकिन आदिलशाहीके इतिहास तज़्किरतुल–मलुकके लेखक रफ़ीऊद्दीन शीराज़ीके, जो उस समय कोशागारका श्रेष्ठतम अधिकारी था, प्रयत्नोंसे कामिलख़ानकी इच्छा पूरी न हो सकी। बढ़ती हुई तनातनी देख कर वह राजधानीसे भाग गया। पश्चात् किश्वरखानके मुकाबलेमें वह मारा गया। दोही मासमें उसका मामला पूरा हुआ।

अब किश्वरखान मुख्य अधिकारी बना; वह भी पूरी तरहसे सर्वाधिकारी बनना चाहता था। यहाँपर भी स्वाभिमानी और कुशल राजकारणी चांदबीबी आडे आई। अपने प्रतिद्वंद्वी मुस्तफ़ाख़ानका बंकापूरमें किश्वरने वध कराया; इस बहानेसे कि चांदबीबीने अपने भाई अहमदनगरके नरेश मुर्तज़ा निज़ामशाहको बीजापूरपर आक्रमण करनेके लिए प्रोत्साहित किया। रानी चांदबीबीको साताराके क़िलेमें स्थानबद्ध कर रखा गया (शक १५०२), तो बीजापूर नगर और साधारण जनता उसके विरुद्ध बन गयी। अन्तमें उसको अहमदनगरको भाग जाना पडा। यह घटना इब्राहीमके गद्दीपर आनेसे सात मासके अन्दरही बनी।

अब इख़्लासख़ान नामी हबशी सर्वसत्ताधारी बना; चांदबीबीको तुरन्त मुक्त किया गया। उसने चांद सुल्तानासे बडी समझदारीसे बर्ताव किया। परन्तु इख़्लासको सीमित रखने और राज्यमें संतुलन रखनेके लिए चांदबीबीने अफ़ज़लख़ान शीराज़ी नामी विदेशी सरदारको राज्यका पेशवा नियुक्त किया। परन्तु अफ़ज़लख़ानको राज्यविद्रोही ठहराकर इख़्लासख़ानने उसका वध कराया। विदेशियों और दक्खनियोंमें राजधानी और बाहरमें झडपें हुईं। कुछ दिनोंतक शाह अबूलहसनने शांति रखी। परन्तु दिलावरखान हबशीने, जो एक बहादुर और कुशल सेनानी था, इख्लासख़ानको क़ैद कर लिया; अबूलहसनको भी कारावद्ध कर लिया गया। कुछ दिनोंमें उसको आंधा कर, उसका वध किया गया। दिलावरखानने धोखाबाज़ी के बावजूद राज्यमें शान्ति रखी। एक बडी सेना दक्षिण भेज कर नायकोंका पारिपत्य किया। अहमदनगर और गोवलकुंडा के नरेशोंसे मित्रता रखी। मित्रताको दृढ करनेके लिए इब्राहीमकी बहन ख़दीजाका विवाह मुर्तज़ा निज़ामशाहके पुत्र हुसेनसे कराया गया और गोवलकुण्डा नरेशकी बहनसे इब्राहीमका विवाह कराया गया। चांदबीबीका वर्चस्व अब बीजापूरमें कम होता गया और वह नवविवाहित बीजापूरी वधूके साथ अहमदनगर चली गयी।

### इब्राहीमका सत्ताग्रहण

शक १५११ में मुग़लों और असन्तुष्ट सेनानियोंकी सहायतासे ईस्माईल निज़ामशाह अहमदनगरका राजा बना। बीजापूरियोंको यह घटना पसन्द न आई। ईस्माईलने समझोता करना चाहा। परन्तु दिलावरखानने इब्राहीम आदिलशाहको युद्ध करनेको उद्युक्त किया। इब्राहीमके साथ, दिलावरखान बडी सेनाके साथ धाराशीव (साम्प्रतका उस्मानाबाद, महाराष्ट्र) पहुँचा। प्रचंड निज़ामशाही सेनाके साथ धाराशीवमें घुमसान

युद्धकाण्ड बना। आदिलशाही सेना परास्त हुई। तारीखे-इब्राहीमीके लेखक फ़िरिश्ताने इस युद्धका बडा रोचक वर्णन किया है, क्योंकि वह स्वयं इस युद्धमें सहयोगी था और ज़खमी बन गया था। आदिलशाही सेना रातके समय शाहदुर्ग अर्थात नलदुर्ग (महाराष्ट्र) के क़िलेमें पहुँच गयी। निज़ामशाही सेना अहमदनगरकी ओर निकल गयी।

इस युद्धमें दिलावर खानपर यह आक्षेप लगाया गया कि उसने अंत:स्‍ तया निजामशाहकी सहायता की। इसके अतिरिक्त दिलावरखान अनुरोध करता रहा कि इब्राहीम आदिलशाह आगे बढ़कर शत्रुका मुकाबला करे। अब इब्राहीमने अपनी आयुके १९ वर्ष पूरे किए थे और राज्यशासनके सब काम अब वह अच्छी तरहसे समझ रहा था। दिलावरखानका बर्ताव उसको मनसा नहीं जचता था। वह अवसर ढूंढही रहा था कि इस युद्धके वायुमण्डलसे उसको वह मिल गया। मन्त्रणाकी बैठकें गरम बनीं, निश्चित हुआ कि अैनुलमुल्क नामी विश्वासपात्र और प्रतिष्ठावान् सेनानीको राजाकी नाराज़ी मालूम कराई जाए। अैनुलमुल्क और उसके दो विश्वासपात्र आलिम अली और अंकुशखानने राजाकी इच्छाको मान लिया और स्वामीनिष्ठाका आश्वासन किया। निश्चित हुआ कि इब्राहीम आदिलशाह जो वास्तवमें दिलावरखानके कडे पहरमें एक कँपमें रखा गया था, रातके समय अैनुलमुल्कके पडावको चला जाय। निश्चयके अनुसार शक १५१२ के वैशाख मासमें नलदुर्ग क़िलेसे निकल कर इब्राहीम आदिलशाह घोडेपर सवार हो अैनुलमुल्कके डेरेपर चला गया। ४०० स्वामिनिष्ठ घोडेस्वार उसके साथ हो लिए। उस रात दिलावरखान स्त्रैणताका शिकार बना हुआ था। प्रात: वार्ता पातेही वह अैनुलमुल्कके डेरेको पहुँच गया। अैनुलमुल्कने तटस्थताका आश्वासन दिया था। दिलावरखानने राजाके रातके समय निकल जानेके राजाके अयोग्य वर्तनका उल्लेख किया। उसपर इब्राहीमने कहा कि क्या इस स्वामिद्रोहीका पारिपत्य कोई नहीं करेगा? एक मामली सरदारने दिलावर खानको ख़ंजिर से ज़ख्मी किया। वह अपनी सेना लेकर अहमदनगरकी निज़ामशाहीकी ओर भाग चला गया। अब इब्राहीमने अपने राज्यशासनकी बागडोर अपने हाथमें ले ली।

सत्ताग्रहण करतेही नलदुर्गमें एक बड़ी मज़ेकी घटना बनी। दिलावरख़ान मुसलमान पंथोंमें सुन्नी प्रवृत्तिका था। इस कारण सब मस्जिदोंमें सुन्नी पद्धतिसे नमाज़ पढ़ी जाती थी। इब्राहीमका बाप शिया पंथी था। राजधानीके सरदारोंने अंदाजा लगाया कि इब्राहीम भी उसी पंथका होगा। दूसरे दिनसे शिया पंथकी पद्धतिके अनुसार बड़े ज़ोर ज़ोरसे नगरमें प्रार्थनाकी आवाज़ें आनी लगीं। इब्राहीमने उसका कारण मालम किया। और उन राजकीय शियापंथीयोंकी निंदा की। उसने मुसलमानोंसे घोषित किया कि वह अपनी प्रवृत्तीके अनुसार किसी पंथका ग्रहण करे। प्रत्येक पंथ अपनी रुचिके अनुसार धर्मपालन कर सकता था। इस राजवंशके निर्माता यूसुफ़ आदिलखानने यही धोरण स्वीकृत कर लिया था। अहमदनगरकी ओरसे गड़बड़ी बन्द हो गयी तो इब्राहीम राजधानीको लौट गया। थोडे ही महीनोंमें उसने ऐसी न्यायप्रियता, कुशलता, क्षमाशीलता और राज्यशासनमें संतुलन प्रकट किया कि राज्यमें शांति बनी रही; गुटबन्दियोंके झमेले कम होते गए। प्रजा और सरदारों में विश्वास पैदा होते गया।

शक १५१४ में नए राजा बुर्हान निज़ामशाहने दिलावरखानके उकसानेपर आदिलशाही प्रदेशपर आक्रमण करना चाहा। वह फौजके साथ मंगलवेढा (महाराष्ट्र) पहुँच गया।

परन्तु इब्राहीमने प्रतिकारकी कोई हलचल नहीं की। इसपर दोनों राज्यके सरदारोंमें आश्चर्यका प्रदर्शन किया गया। परन्तु सुयोग्य अवसर पातेही इब्राहीमने दिलावरखानको संदेशा भजा कि वह फिर अपने पास आ जाए। दिलावरखानने आश्वासन चाहा कि उसके प्राण और वित्तको सुरक्षित रखा जाएगा। इब्राहीमने यह आश्वासन दे दिया। इसके पश्चात् दिलावरखान आदिलशाहकी ओर बीजापूर लौट आया। निजामशाही सेना निराश हो कर वापिस चली गयी। इब्राहीम आदिलशाहके इशारेपर, दिलावरखानके ओरके कई सरदारोंको सज़ा दी गयी। आँखे निकाल देनेकी सज़ाही दिलावरखानको देना निश्चित हुआ। दिलावरखानने विनंति की, कि उसको आश्वासन मिला है कि उसकी रक्षा होगी। इब्राहीमने कहा कि उसको आश्वासन है कि उसका प्राण और वित्त सुरक्षित रहेंगे। इस दग्डमें आश्वासित दोनों बातें सुरक्षित रह जाती हैं। राजाज्ञासे उसको अंधा बनाया गया। उसको साताराके क़िलेमें काराबद्ध रखा गया। उसी क़िलेमें उसका देहान्त हुआ। उसकी आयु अस्सी वर्षसे अधिक थी।

उपरोक्त घटनासे इब्राहीम आदिलशाहके स्वभावके कई पहलू प्रकट होते हैं। उसने राजद्रोहियोंसे कभी समझोता नहीं किया। स्वामिद्रोहीको दण्डित करनेमें उसने कमज़ोरी नहीं बतलायी। न्यायप्रदानमें उसका दृष्टिकोनभी इस घटनासे सामने आ जाता है। इसकी यह सज़ा आश्वासनका भंग किए बिना दी गयी थी। वीस-एकीस वर्षकी आयुमें यह निर्णय कुछ अनोखा लगता है।

छत्रपति शिवाजीके चरित्रमें भी इसी घटनाके समान एक प्रसंगका वर्णन मिलता है। शिवाजी चरित्रके साधनोंमें जेधे करीना (लेखनकाल शक १६११) नामी कुछ प्राप्त मराठी पत्रोंको विशेष महत्त्व और विश्वसनीयता प्राप्त है। जेधे-करीनामें यह घटना वर्णन की गयी है कि शिवाजीके एक सरदार खंडोजी खोपडेने शिवाजीका स्वामिद्रोह कर अफ़ज़लखानको शिवाजीके विरुद्ध सहायता की थी (शक १५८१)। शिवाजीने अपना स्वकीय होनेके बावजूद उसको कडी सज़ा दी। जेधे-करीनाका उद्धरण नीचे दिया जाता है।

“ (अफ़ज़लखानके वधके पश्चात्) खंडोजी खोपडे भाग कर जंगलमें छिपा रहा...... इसके उपरान्त कान्होजी नामे (जेधे) क़िले पर पहुँचा। एकान्तमें बैठ कर खंडोजी खोपडेका वृत्तान्त (शिवाजीसे) निवेदित किया और विनंति की कि उसको अभय दिया जाए। उसपर राजश्री स्वामीने कहा कि वह हरामख़ोर उसके वतनका ठिकाना भी न था। उसकी वतनपर स्थापना की, आधा वतन, सिक्का दिया। केदारजी खोपडे उसी कारण आदिलशाहीमें चला गया। इतना होनेपर भी उसने बेईमानी की, उसने अफ़ज़लख़ानकी ओर जा कर झूठापन किया और हथियार धारण किया। वह हरामख़ोर उसके चार धड (शरीर) चार मार्गोंपर डाल दें। उसकी सिफारिश तुम न करें उसको कौल नहीं देता इस प्रकार बोले। सिफारिश नहीं मानते थे। तब कान्होजी नाम खड़ा रह कर बोला कि खंडोजीका गुन्हा हमको दिया जाए और उसकी जान बचाई जाए, वतन चलाया जाए। इस प्रकार अतीव आग्रहपूर्वक सिफारिश की। उसपर राजश्री स्वामीने कहा कि तुमने आग्रह चलाया, उसको उपायन हीं, तुम्हारे आग्रहके लिए मान लेता हूँ। उसको भेज देना। तब खंडोजी खोपडेको ला कर मुजरा कराया।

राजश्री　　स्वामी कुछ बोले नहीं......राजश्री　　के चित्तमें क्रोध था। एक दिन आज्ञा दे कर खंडोजी का दायां हाथ और बायां पैर कटवा दिया और उसको शास्ती की। यह कान्होजीको ज्ञात हुआ। उसने खंडोजीको जंगलसे बुला लाया, उसके हाथपांव तल दिए और वह राजश्री　　स्वामीके दर्शनके लिए गडपर पहुँचा, और रूठ जानेकी बातें कीं, कि खंडोजीको अभय दे कर शास्ती की तो हमारी इज्जतही क्या रही। उसपर राजश्री　　स्वामीने कान्होजीको समाधानकी बातें समझाईं कि तुम्हारी भीड (आग्रह) के लिए खंडोजीको जानसे नहीं मारा। जिस हाथसे उसने तलवार धारण की वह हाथ काट दिया और जिस पैरसे उसने आक्रमण किया वह पैर काटा। आपकी भीडके लिए उसका वतनभी चलाइंगे। ऐसी बातें कर, उसका समाधान किया।"

घरके दुश्मन दिलावर खानका काम पूरा करनेके पश्चात् इब्राहीमने बुर्हान निज़ामशाहको मार भगानेकी सोची। एक बड़ी मराठा सेना उसने करमालाकी ओर भेज दी। इस सेनाने अच्छा काम किया। बुर्हानकी सेनाको परास्त और निराश होना पड़ा। भीमा नदीकी बाढ़से भी शत्रु तंग आ गया। शत्रुसेनामें रोगोंका प्रादुर्भाव हुआ। बुर्हानके असंतुष्ट सरदारोंने उसके वधका रचा हुआ षडयंत्रभी उसके सामने आया। बुर्हान निज़ामशाह आ़दिलशाहसे समझोता करना चाहता था। इसके बिना विद्रोहकी आग बुझ नहीं सकती थी। बुर्हानने अपने दूत इब्राहीम आ़दिलशाहके पास भेज दिए। लेकिन एक मास तक इब्राहीमने एक न सुनी और अंत में यह शर्त लगाई कि जो क़िला भीमा नदीके तटपर बुर्हानने आ़दिलशाही सीमामें अवैध रीतिसे बनवाया था उसको बुर्हान स्वयं ढा दें। बुर्हानको यह माननेके सिवा कोई और मार्ग था नहीं। बुर्हानने स्वयं उस क़िलेका पहला पत्थर निकाल कर फेंक दिया और अनंतर उसकी सेनाने पूरा क़िला गिरा दिया। बुर्हान अहमदनगरकी ओर चला गया। इस घटनासे इब्राहीमके स्वभावकी विशेषता प्रकाशमें आ जाती है। यह घटना शक १५१४ की है। (देखिए फ़िरिश्ता, ब्रिग्ज खण्ड ३, पृष्ठ १७४).

### इस्माईलका विद्रोह

राजपुत्र तहमास्पके दो बेटे थे, एक इब्राहीम आ़दिलशाह और दूसरा राजपुत्र इस्माईल। इस्माईलका पालनपोषण इब्राहीमके साथही राजप्रासादमें हुआ था। लेकिन इब्राहीमको गद्दीपर बिठानेपर दिलावरखानने ईस्माईलको बेलगाँवके क़िलेमें रखा था। इब्राहीमने दिलावरखानके हाथमें से सत्ता अपने हाथमें लेनेके पश्चात् अपने भाईको शुभ संदेश भेजा कि गो उसका दिल भाईकी ओर लगा हुआ है, लेकिन राज्यसुरक्षाकी दृष्टीसे उसको मुक्त करना कठीन है। उसने इस्माईलको क़िलेमें पूरी आज़ादी प्रदान की। उसकी सुविधाके लिए उसका वेतन बढ़ाकर एक हजार होन कर दिया। कुछ दिनोंतक इस्माईल संतुष्ट रहा, लेकिन एकदम उसने इब्राहीमके विरुद्ध विद्रोह करना निश्चित कर लिया। यह वार्ता पहुँचनेपर इब्राहीमने एक साधु शाह नूर आ़लमको इस्माईलको समझानेके लिए भेजा। इस्माईलने साधुको कारावद्ध कर दिया और अपना विद्रोह जारी रखा। इस्माईलके पत्रपर बुर्हान निज़ामशाहने बीजापूरपर आक्रमण करनेका निश्चय कर लिया। इस्माईलने राज्यके महामंत्री अैनुलमुल्कको भी अंत:स्थतया अपने साथ कर लिया। उसने इस्माईलकी सहायता

करनी चाही। इब्राहीम आदिलशाहको उसके स्वामिद्रोहकी वार्ता थी। लेकिन राज्यके एक पुराने और कारगुज़ार सेवकको संशयके आधार भलाबुरा करना इब्राहीमको ठीक नहीं लगा। अैनुलमुल्क इस्माईलके पारिपत्यके लिए बेलगाँव गया हुआ था। इब्राहीम आदिलशाहने एक विशेष महत्त्वपूर्ण मंत्रणाके बहानेसे उसको बीजापूर बुला भेजा। अैनुलमुल्क बात समझ गया, किन्तु अभी खुले विद्रोहकी अवस्था नहीं आई थी, इस लिए उसने यही ठीक समझा कि राजासे जा मिले। इब्राहीमने खुले दरबारमें अैनुलमुल्कका बडा सम्मान किया। उसको एक बड़ी मेज़वानी दी, एक मूल्यवान पोशाक, एक रत्नजडित खंजर और कई उत्तमोत्तम घोडे भेंटमें दिए। इन तमाम बातों का प्रयोजन यह था कि अैनुलमुल्क दुष्टता और विद्रोहको अपने अंत:करणसे निकाल दें। बडे सद्भावसे वह राजधानीसे निकल गया, परन्तु बेलगाँवकी ओर जा कर फिर उसने इस्माईलके पक्षको आगे बढानेकी चेष्टाएँ चालू रखीं। मिरजमें भी विद्रोहका झंडा उठाया गया। अब अैनुलमुल्कने राजपुत्र इस्माईलको बेलगाँवके क़िलेके बाहर निकाला। इब्राहीम आदिलशाहने हमीद खान नामी स्वामिनिष्ठ और शूर सेनानीको विद्रोहियोंके पारिपत्यके लिए रवाना किया। प्रथमत: हमीद खानने अैनुलमुल्कको अंत:स्थतया आश्वासन किया कि वहभी इब्राहीमका विरोधी है और वह अैनुलमुल्ककी सहायताही के लिए आ रहा है। इसपर अैनुलमुल्क और उसकी पूरी सेना असावध रही। परन्तु समीप पहुँचतेही हमीद खानने ज़बरदस्त हल्ला कर दिया। शत्रुसेना उध्वस्त हो गयी। राजपुत्र इस्माईलको पकडा गया। अैनुलमुल्कका शिर काट कर हमीद खानने राजाके पास भेज दिया। इब्राहीम आदिलशाहने अैनुलमुल्कका शिर एक ऊँचे भालेपर लगाकर प्रासादके मुख्य द्वारपर रखा कि राजनिष्ठ लोक उसको देख सकें। अैनुलमुल्कका शिर एक तोपके मुखमें रखा कर उड़ा दिया गया। इस्माईलका भी शिरच्छेद किया गया। यह घटना शक १५१५ के वैशाख मासमें बनी। (फ़िरिश्ता—ब्रिग्ज खण्ड ३, पृष्ठ १८२)।

### इब्राहीमचरित्रके साधन

द्वितीय इब्राहीम आदिलशाहने दीर्घकालतक राज्य चलाया (शक १५०२ से शक १५४९) उसका जन्म शक १४९३ में हुआ था। नौ सालकी आयुमें वह गद्दीपर बैठा। १९ वर्षकी आयुमें उसने सचमुच राज्यसूत्र हाथमें लिए और ५६ वर्षकी आयुमें देहान्त किया। वह ४६ वर्षोंतक राज्यका स्वामी रहा।

उसके चरित्रके समसामयिक साधन ग्रन्थ थोड़ेही हैं जैसा कि उपर कहा गया है। विश्वसनीय ग्रन्थ फ़िरिश्ताका है, लेकिन वह शक १५२६ तक ही लिखा गया प्राप्त है। इब्राहीमके उत्तराधिकारी मुहम्मद आदिलशाहके कालमें जो इतिहास ग्रन्थ लिखे गए उनमें कुछ जानकारी इब्राहीमके इतिहाससम्बन्धी मिलती है। रफ़ीउद्दीन शीराज़ीने। तज़्किरतुल्मुलूक इतिहास इब्राहीमही के कालमें (शक १५३३ हिजरी १०२०) लिखा। परन्तु उसमें केवल शक १५३३ तकही की घटनाएँ मिलती हैं। फ़िरिश्ता और शीराज़ी दोही उसके समसामयिक लेखक हैं। मुहम्मद आदिलशाहके कालमें ज़हूर बिन ज़हूरीने मुहम्मदनामा ग्रन्थ शक १५७२ (हिजरी १०६०) में लिखा, लेकिन उसने अपना इतिहास केवल मुहम्मदशाहके समयसे (शक १५५० – हिजरी १०३७) आरम्भ किया है। इस ग्रन्थमें इब्राहीमके कालका कोई इतिहास प्राप्त नहीं है।

इब्राहीमके उत्तरकालके लिए फ़ुज़ूनी अस्तराबादीका लिखा हुआ (शक १५६६–हिजरी १०५४) इतिहास फ़ुतूहाते-आदिलशाही ही केवल साधनग्रन्थ है। लेकिन विद्वानोंके मतोंसे इसकी भाषा अतिरंजित, अतिशयोक्त और दूरान्वयी है। फ़ुज़ूनीने अपने ग्रन्थके पूर्वार्धमें कामिल खान और किश्वर खान इन दोनों राजपालकोंके दुष्कर्मोंकी चर्चा की है। इस भागका भाषांतर के. के. बसूने बिहार और उडिसा संशोधन सभाकी पत्रिकाके खण्ड २४ शक १८६० के पृष्ठ १८९ से २०४ पर प्रकाशित किया है। यह भाग विशेष उपयुक्त नहीं है। फ़ुज़ूनीके इतिहासके अंतिम भागका भाषांतर जदुनाथ सरकारने शक १८५५ के भारतीय ऐतिहासिक त्रैमासिक, कलकत्ता के खण्ड ९ में (पृष्ठ ६२९–६४४) छापा है। इस फार्सी मूलके महत्त्वपूर्ण भागके अंग्रेजी अनुवादका मराठी अनुवाद पूनाके प्रो. ग. ह. खरेने शिवचरित्र वृत्तसंग्रहके तृतीय खण्डमें शक १८६३ में प्रकाशित किया है। इसके अतिरिक्त छत्रपति शिवाजीके संस्कृत चरित्रकार कवीन्द्र परमानन्दने अपने इतिहास शिवभारतमें इब्राहीमके सम्बन्धमें कुछ उल्लेख किए हैं। इसका उपयोग इस प्रास्ताविकमें अन्यत्र किया गया है। डॉ. पी. एम्. जोशी, भूतपूर्व संचालक, पुराभिलेख विभाग, महाराष्ट्रने अपना डाक्टरेट 'बीजापूरकी आदिलशाही' पर किया हैं। लेकिन वह प्रबन्ध अभीतक अप्रकाशित है। दूसरा महत्त्वपूर्ण संशोधन इस विषयमें डॉ. भगवत दयाल वर्मा, पूनाका है। उसमें दक्षिण-पश्चिम भारतमें पाए गए मुसलमानोंके शिलालेखोंका अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। यह प्रबन्ध मम्बई विद्यापीठमें है, परन्तु अभीतक अप्रकाशित है। अहवाले (वक़ाए)-असद-बेग यह छोटाही परन्तु महत्त्वपूर्ण इतिहास ग्रन्थ आदिलशाहीकी सांस्कृतिक पृष्ठभूमि और इब्राहीमके कुछ इतिहासके लिए उपयुक्त है। उपरोक्त और अन्य साहित्य साधनोंके केवल संक्षिप्त अनुवाद, मराठी, हिन्दी वा अंग्रेजीमें हुए हैं जो केवल राजकीय घटनाओंके उल्लेख देते हैं। दुर्दैवसे सांस्कृतिक इतिहासकी सामग्री पूरी तरहसे अनुवादित नहीं हुई। इसके अतिरिक्त अकबरनामा और तूज़्के-जहांगीरी यह दोनों ग्रन्थभी आदिल-शाही इतिहासके समझनेमें सहायभूत होते हैं। क्योंकि निजामशाहीका मुगलोंसे शक १५१५ से १५५८ तक जो संघर्ष रहा उसमें इब्राहीम और उसके उत्तराधिकारीका सक्रिय सहयोग रहा था।

इब्राहीमके चरित्रके साधन ग्रन्थोंको देखनेसे मालूम होता है, कि इब्राहीम राजकीय दृष्टिसे स्वभावतः आक्रमणशील नहीं था। उसने अपने राज्यकी सीमाएँ बढानेकी अधिक चेष्टा नहीं की। उसके पूर्वाधिकारी अलीके कालमें, विजयनगर साम्राज्यको ज़बरदस्त धक्का देनेके बाद, उत्तर कर्नाटकके मलनाड, बिदनूर आदि भागोंपर आदिलशाहीका वर्चस्व स्थापित हो चुका था। दक्षिणमें उसकी राज्यसीमा बढानेका कोई प्रयत्न इब्राहीमके कालमें नहीं हुआ। यह सीमा दक्षिणमें बढानेका काम इब्राहीमके उत्तराधिकारी मुहम्मदके हाथों बना। इस राज्यविस्तारका इतिहास मुहम्मदनामेसे ज्ञात होता है जो समकालीन इतिहाससाधन है।

इब्राहीमका समसामयिक हैदराबादमें मुहम्मद क़ुली कुतुबशाह था। गोवलकुण्ड और बीजापूरकी मुस्लिम सत्ताओंका अधिकतम इतिहास अनेक पहलूओंसे समान और समान्तर है। इब्राहीम आदिलशाह और मुहम्मद क़ुली एकही वर्ष गद्दीपर आए (शक १५०२ हिजरी ९८८)। आदिलशाह शक १५५० (हिजरी १०३७) तक राज्य चलाता रहा। उस समयतक गोवलकुण्डाका दूसरा अधिकारी सुल्तान मुहम्मद मर चुका था (शक

१५४८ हिजरी १०३५)। अब गोवलकुण्डाकी गद्दीपर अब्दुल्ला कुतुबशाह आया जो शक १५९४ तक (हिजरी १०८३) जीवित रहा। इस कालमें आदिलशाहीके दो और नरेश हो गुज़रे। मुहम्मद आदिलशाहने शक १५७९ (हिजरी १०६७) में देहान्त किया और उसके पुत्र द्वितीय अलीने शक १५९४ (हिजरी १०८३) में। दोनों राज्य शक १६०८ के लगभग नष्ट हो गए।

इब्राहीम आदिलशहा और मुहम्मद क़ुली कुतुबशाह इन दोनोंके जीवनमें भी काफ़ी साम्य पाया जाता है। दोनों राजकीय आक्रमणशीलताकी दृष्टिसे विशेष सचेत नहीं थे। दोनोंने अपना पूर्वार्जित राज्य सम्भाल रखा, परन्तु राज्योंकी सीमाएँ बढानेमें दोनों विशेष प्रयत्नशील नहीं थे। धार्मिक दृष्टिसे दोनों सहिष्णु थे। मुहम्मद क़ुली अपने पूर्वायुष्यमें विजयनगरके राज्यमें राजकीय आश्रितके नाते रह चुका था। इब्राहीम और क़ुली दोनों दक्खिनीके बडे आश्रयदाता और स्वयं भी कवि थे। इब्राहीमका नौरस ग्रन्थ और क़ुलीका काव्यसंग्रह अब उर्दूमें प्रकाशित हो चुके हैं। क़ुलीकी सहिष्णुताका वर्णन कुछ तेलगु कवियोंने भी किया पाया जाता है। दोनोंके लिए राज्यमें शांति प्रस्थापित थी। कुलीने हैदराबाद नगर बसाया और अनेक वास्तुएं वहाँपर बनाईं। परन्तु इस क्षेत्रमें इब्राहीमकी विशेष चेष्ट नहीं दिखाई पड़ती। इसका वर्णन अन्यत्र आएगा।

### आदिलशाही–निजामशाही संम्बन्ध

मुग़ल सम्राट अकबरने अपने उत्तर कालमें पूरा दक्षिण जीत लेनेकी महत्त्वाकांक्षा रखी थी। इस मैदानमें उसने काफ़ी हलचल की। इस पदक्षेपकी पहली चोट अहमदनगरकी निजामशाहीपर पड़ती थी। मुग़ल सम्राट अकबरने अचलपूरकी इमादशाही और खानदेशकी फ़ारूक़ी सत्ताको कभीसे नष्ट कर रखा था (शक १४९९)। दोनों सत्ताएँ एकही वर्ष नष्ट नहीं हुई। फ़ारूक़ी सत्ताका अस्तित्व शक १५२२ तक था।

शक १५०७ से अहमदनगर जीतनेका अकबरका प्रयत्न होता रहा था। परन्तु दक्षिणके सूबेदारोंमें पाए गए वैमनस्य और अन्य कारणोंसे उसको यश न मिल सका। शक १५१० में अकबरने एक निजामशाही विद्रोही राजपुत्र बुर्हानको आश्रय दिया। और उसकी सहायतासे अहमदनगरपर आक्रमण करनेकी मनमें ठानी। आगले वर्ष अकबरने बुर्हानुद्दीन नामी योद्धाको निजामशाहीपर आक्रमण करनेके लिए रवाना किया, लेकिन निजामशाहीने इसको परास्त किया और मुगल सेनाको वापिस लौटना पड़ा। शक १५१५ में अकबरने युवराज मुरादको बडी सेना और अब्दुर्रहीम खाने-ख़ानानको साथ देकर उस कामके लिए भेज दिया। मुगल सेनामें वैमनस्य फैला हुआ था। मुराद और खाने-ख़ानान अपनी अपनी चलाना चाहते थे। शक १५२० में मुरादकी सेना अमहमदनगरके समीप पहुँच गई।

इस समय अहमदनगरके राज्य व्यवहारमें चांदबीबीने अपना सिक्का जमाया था। वह बीजापूरके दिवंगत बादशाह प्रथम अली आदिलशाहकी विधवा और अहमदनगरके भूतपूर्व नरेश, विजयनगर साम्राज्यके विजेता हुसेन निजामशाहकी भगिनी थी। इब्राहीमकी युवावस्थामें उसने बीजापूरका कारोबारभी सम्भाला था। अब उसने निजामशाहीको मुग़लोंकी अतिक्रमणासे बचानेका पक्का निश्चय कर लिया था। चांदबीबीने इब्राहीम

आदिलशाहसे अतीव आग्रहसे सहायता की याचना की। इब्राहीमने तुरन्तही अपने विशेष सेनानी सुहैलखानके नेतृत्वमें २५ हज़ार घोडस्वारसे युक्त सेना नलदुर्ग (शाहदुर्ग)के मार्गसे रवाना की। सुहैलखानको निजामशाही सेनापति मियां मंझभी आ मिला। गोवलकुण्डाके नरेशने महदी क़ुली सुल्तानके नेतृत्वमें १० हज़ार घोडस्वार और २० हज़ारकी सेना रवाना की। मुरादकी सेनानें अहमदनगरके क़िलेको पाँच सुरंग लगाए थे। वह चाहता था कि आदिलशाही और कुतुबशाही सेना आ पहुँचनेके पूर्व क़िला हस्तगत हो जाए। पाँचोंमें से केवल एकही सुरंग उड सका और क़िलेके तटमें बडा खिंडर हो गया। लेकिन चांदबीबीने वह खिंडर और तटकी दीवाल अपनी विशेष निगरानीमें बडी शूरता दिखालाकर रातही रातमें खडी कर ली। इसी शूरताके कारण मुग़ल सेनाने भी उसको चांद सुलताना कहा। फाल्गुन शक १५१८ में चांदबीबी और मुरादमें समझोता और संधि बनी।

चांदबीबीने बनाई संधि अहमदनगरके कुछ बलवान सेनानियोंको सम्मत न हो पाई। मुराद और उसकी सेना वऱ्हाडको निकल न पाई थी कि निजामशाहीकी कुछ सेनाने उनकी छेड़छाड़ आरम्भ की। मुगलोंको फिरसे युद्ध करना कठिन था। मुराद और खाने-ख़ानान मेहकर (ज़िला अकोला) से हो कर एलिचपूर (ज़िला अमरावती, महाराष्ट्र) पहुँचे। वऱ्हाडमें भी निजामशाही सेनाके हल्ले होते रहे। उसने वहाँपर भी मुगलोंका पीछा न छोडा। पाथ्री (ज़िला परभणी) में निजामशाही सेनाका मुग़ल सेनाने कडा पराभव किया। सुहैलखान और महदी क़ुली सुल्तानकी ७० हज़ार सेनाके साथ वऱ्हाडमें स्थित मग़ल सेनाका मुक़ाबला रहा।

इस रणकंदनमें दक्षिणी मुसलमानी राज्योंमें से केवल खानदेशके फ़ारूक़ी सुल्तानने मुग़लोंकी सहायता की। शेष सत्ताओंने मुगलोंका कडा मुक़ाबला किया। खानदेशका राजा अली खान इसी रणकंदनमें पाथ्रीकी युद्धभूमिपर मारा गया। यह हत्या मुग़ल सेनाकी ओरसे हुई क्योंकि मुग़लोंको राजा अलीकी विश्वसनीयतापर संदेह था। इस घटनासे फ़ारूक़ी भी मुगलोंके विरोधी बने। खाने-ख़ानानकी सेनाने सुहैलखान और कुतुबशाही सेनाको परास्त किया। यह दोनों दल अपनी-अपनी दक्षिणी राजधानियोंको भाग निकल पड़े

इसके पश्चात् ख़ाने-ख़ानान और मुरादको वापिस बुलाया गया। उन्होंने जल्दबाज़ी और अव्यवहार्यतासे काम लिया, इस प्रकारकी भावना मंत्रणाकुशलोंमें पैदा हो गई थी। इसके पश्चात् अबूल-फ़ज़लको दक्षिणकी सवारीपर रवाना किया गया। और मुरादके बदले दानियालको दक्षिणकी सूबेदारी दी गई। अब निजामशाहीको नष्ट करने और अहमदनगरको हस्तगत कर लेनेके मुग़लोंके इरादे थे। इधर निजामशाहीकी अंतर्गत स्थिति बिलकुलही बिगड़ी हुई थी। सरदारोंमें वैमनस्य और परस्पर अविश्वास परिसीमाको पहुँचा हुआ था। वैशाख शक १५२२ में मुग़ल सेना अहमदनगरके क़िलेको जा पहुँची और मुहासिरा आरम्भ हुआ। चांदबीबी बडी शूरतासे राजधानीका परिरक्षण कर रही थी। मुग़लोंने ईडीचोटीका ज़ोर लगाकर क़िलेमें प्रवेश करनेकी ठान लिई थी। सैनिकी अवस्था को नाज़ुक पाते हुए चांद सुल्तानाने दानियालसे संधि कर लेनेकी बातें छेड़ी थीं। लेकिन चांदबीबीके विरोधी घटकोंने यह पसन्द न किया और शक १५२२ के आषाढ मासमें चांद सुल्तानाका दिनदहाडे वध किया गया। निजामशाही सेनानियोंने शत्रुका मुक़ाबला कुछही दिनोंतक किया। परन्तु नगरका क़िला श्रावण मासमें दानियाल के

हाथ आया। जब इस प्रकारसे अहमदनगरकी निजामशाहीका विनाश हुआ तो आदिलशाही में घबराहट पैदा हो गई कि मुग़ल आक्रमकोंकी वार आदिलशाहीपर पडेगी। मालूम होता है कि शक १५२६ में इब्राहीमने दक्षिणके चंद्रगिरीके हिन्दु राजाके पास अपना वकील रवाना किया और मुग़लोंके मुक़ाबलेमें सहायताकी माँग की। मुग़लोंके पारिपत्यके लिए इब्राहीमने छोटेमोटे हिन्दु सत्ताधारियोंसे भी संधि करना आवश्यक समझा। इब्राहीमका यही धोरण भविष्यके कुछ वर्षोंमें दिखाई देता है। उसने इसी भावनासे मलिक अंबरकी सहायता की थी।

चांदबीबीपर किए गए दूसरे आक्रमणके अवसरपर बीजापूरने निजामशाही और चांदबीबीकी सहायता करनेका पता नहीं चलता। इब्राहीम आदिलशाह अकबरको पत्र भेजता रहता। और उसने ऊपरी निष्ठाका प्रदर्शन किया था। अकबरने इन बातोंपर कुछ हदतक विश्वासभी किया था। इसलिए अकबरने अपने एक विश्वासपात्र सरदार मीर जमालूद्दीन हुसेनको इब्राहीम आदिलशाहके पास एक मित्रताका फर्मान देकर भेजा। उसको यह भी आदेश था कि वह बीजापूरकी राजकीय परिस्थितीका अवलोकन करते हुए आदिलशाहको सम्राटका वर्चस्व मान लेने के लिए तैयार करें और इसकी कसौटीके तौरपर इब्राहीम आदिलशाह अपनी पुत्रीका विवाह दानियालसे करा दे। मीर जमालूद्दीनने बीजापूरमें पहुँचकर यहाँकी शान और वैभव देखा तो वह यहीं लुब्ध हो गया। इब्राहीमने हुसेनकी बहुतही अच्छी आवभगत की, उसकी उत्तम व्यवस्था रखी गई। उसके लिए मासिक वेतन निश्चित किया गया। दावतें होती रहीं। प्रसंगके अनुसार नज़रभेंट दी जाती जिसमें दक्षिणके बाज़ारोंमें मिलनेवाली अनोखी और अमूल्य वस्तुएँ हुआ करती थीं। और यह सब इब्राहीम आदिलशाहके इशारेसे हुआ और होता रहा। बादशाह और हुसेनकी ओरसे मीठी मीठी बातोंके पत्र अकबरकी सेवामें पहुँच जाते। उसमें हुसेनके सोंपे हुए कामोंकी पूर्तिका आश्वासन अवश्य हुआ करता था। कुछ दिनोंके बाद अकबर सब मामला समझ गया। बीजापूरकी मेहमान नगरीमें जमालूद्दीन इस प्रकार पूरे चार साल रहा और ख़ासा मालदारभी बन गया। इसलिए अन्तमें अकबरने असद बेगको, बीजापूरको, इस विशेष आज्ञाके साथ रवाना किया कि बीजापूर पहुँचतेही वह जमालूद्दीनको साथ लेकर बीजापूरसे निकलें और हुसेनके साथ भेजे हुए सुझाव इब्राहीमसे सम्राटको लावें। वक़ाए-असद बेगसे यह सुस्पष्ट है कि इस कामको बेगने अच्छी तरहसे पूरा किया। अब इब्राहीम आदिलशाहके लिए यह असंभव हुआ कि वह बातोंको टालता रहे। जब यह सम्भावना न रही तो अकबरका सार्वभौमत्व मान लेनेका उसने तय कर दिया और अपने इस सद्भावके प्रतीकरूप अपनी पुत्रीके दानियालसे विवाहको सम्मति दे दी। कन्याको बडे लावलश्कर और संपत्तिके साथ दानियालके पास रवाना किया गया। रास्तेमें अहमदनगरमें इस अवसरपर बड़ी दावतें रहीं। इस राजकन्याका विवाह दानियालके साथ गोदावरी नदीके तटपर पैठण (प्रतिष्ठान) में बड़ी धूमधामसे सम्पन्न हुआ। परन्तु दानियाल दुर्व्यसनोंका अतीव शिकार बन चुका था। उसका आरोग्य उसको छोड़कर चल बसा था। कुछही सप्ताहोंके अन्दर दानियालका बुर्हानपूरमें देहान्त हो गया (शक १५२६)।

इसी कालमें निजामशाही राज्यका सूत्र मलिक अम्बरके हाथमें आया था। उसने चाहा था कि उस राजवंशके अली नामी दूरान्वित वंशजको गद्दीपर बिठाया जाए।

लेकिन अलीके वृद्ध पिता शाहअलीका अम्बरपर विश्वास नहीं होता था। इस काममें अम्बरने इब्राहीम आदिलशाहकी सहायता माँगी। इब्राहीमने भी यह सुझाव मान लिया। शाहअली परण्डामें इब्राहीमही के राज्यमें रहता था। मलिक अम्बरने विश्वास पैदा करनेके लिए अपनी कन्याका विवाह युवराज अलीसे कर दिया। परण्डा (ज़िला उस्मानाबाद, महाराष्ट्र) ही में उसको रखा गया। उसका नाम इतिहासमें द्वितीय मुर्तज़ा निज़ामशाहसे ज्ञात है। इस नए राजासे लोगोंमें इस राज्यके लिए विश्वास निर्माण हुआ और मलिक अम्बरकी राजकीय दृढता बढ़ानेके प्रयत्नोंमें सुविधा पैदा हो गई।

## मुग़ल सत्तासंम्बन्धी नीति

निजामशाही राज्य बीजापूरी आदिलशाहीके उत्तरमें फैला हुआ था। जब मुग़लोंके दक्षिणविजयके प्रयत्न आरम्भ हो जाते उसका प्रथम प्रभाव निजामशाहीपर पडता था। आदिलशाहने इस बातको अच्छी तरहसे समझ लिया था कि मुग़ल आक्रमणको अगर रोकना हो तो निजामशाहीको जीवित रखना चाहिए था। इस लिए जब कभी इब्राहीम आदिलशाहसे, मुग़ल संकटके मुक़ाबलेके लिए सहायताकी याचना मलिक अम्बरने की तो उसने अपना मित्रताका हाथ आगे बढाया। शक १५३१ में मुग़ल सम्राट जहांगीरने दक्षिणको अपने राज्यमें सम्मीलित कर लेनेके लिए अब्दुर्रहीम ख़ाने-ख़ानानकी नियुक्ति की। मलिक अम्बरपर ही इस आक्रमणकी मार पड़नेवाली थी। अभी अम्बरके विरोधक राजूका काफ़ी भय उसको लगा हुआ था। इस नाजुक अवस्थामें मलिक अम्वरने इब्राहीम आदिलशाहसे मित्रता चाही और इस संकटके मुक़ाबलेके लिए मदद माँगी। आदिलशाही पर मुग़लोंका दबाव पहलेसे आता था। लेकिन आदिलशाहने अकबरसे मित्रता बनाए रखनेकी चेष्टा की थी। इब्राहीम आदिलशाहने अकबरके आग्रहपर अपनी बेटी युवराज दानियालको ब्याहनेका निश्चय कर, वधूको पैठण भेजा था कि दानियालका देहान्त हुआ और प्रकरण मिट गया। अब ख़ाने-ख़ानानकी सहायताका प्रश्न आया। और इब्राहीम आदिलशाह और कुतुबशाहने मलिक अम्बरकी सहायता करना पसन्द किया।

इब्राहीमके इस पदक्षेपमें उसकी मुग़ल साम्राज्यके सम्बन्धमें निर्धारित नीतिका दर्शन होता है। इस नीतिमें आदिलशाह और कुतुबशाह हमेशाही एकमत रहे हैं। इब्राहीम आदिलशाहके अन्तिम २५ वर्षोंके कालमें यह प्रश्न हमेशाही उठता रहा है। लेकिन आरम्भ आरम्भमें इब्राहीमके मनमें कोई द्विधा वत्ति नहीं थी। उसने मलिक अम्बरको हमेशा सहायता की। कुतुबशाहने भी यथाशक्ति अम्बरकी मदद की। इस अवसर पर मलिक अम्बरने कंधारका क़िला अपने स्वाधीन करनेकी इब्राहीमसे प्रार्थना की। कंधारका क़िला (ज़िला नांदेड, महाराष्ट्र) कुछ वर्षोंसे आदिलशाहके राज्यमें समाविष्ट था। इब्राहीमने अम्बरकी इस माँगको मान लिया। अम्बरको पूरी सहायता प्रदान करने और मित्रताके सम्बन्ध दृढ करनेके लिए अपने श्रेष्ठ श्रेणीके हबशी सरदार याक़ूत ख़ानकी पुत्रीका विवाह मलिक अम्बरके पुत्र फ़तह ख़ानसे करा दिया। इब्राहीमने बड़ी धूमधामसे यह शादी करा दी। समारोह ४० दिनोंतक चलता रहा। बादशाहने बीस हज़ार होन आतिशबाज़ी पर उडा दिए। इब्राहीमने ख़ाने-ख़ानानसे युद्ध करनेके लिए १० हज़ार घोडेस्वारकी सेनाभी सहायार्थ भेज दी। आदिलशाहकी इस प्रकार सहायता मिलनेसे मलिक अम्बर बडे आत्मविश्वाससे आगे बढ़ा। उसने पैठण हस्तगत कर लिया। बालाघाटका प्रसिद्ध अंतूरगडभी अपने वशमें कर लिया।

ख़ाने-ख़ानानके इस प्रकार दक्षिणमें परास्त होनेपर उसको जहाँगिरने वापिस बुला लिया और ख़ानजहां लोदीको सेनापति बना कर दक्षिण भेजा गया। परन्तु मलिक अम्बरकी सैनिकी शक्तिके आगे उसको भी हार खानी पड़ी। उसको वापिस बुला कर फिर शक १५३४ में ख़ाने-ख़ानानको दक्षिणकी सवारीपर फिरसे नियुक्त किया गया। इस अवसरपर मलिक अम्बरने आदिलशाहसे सहायता चाही। इब्राहीमने मुल्ला मुहम्मद लारीके नेतृत्वमें २० हज़ारकी सेना रवाना की। गोवलकुण्डाके मुहम्मद क़ुली कुतुबशाहने भी मीर मूसाकी कमानमें ५ हज़ार सेना सहायार्थ भेजी। दक्षिणकी इन दोनों सत्ताओंको मुग़ल सम्राटका आक्रमण निष्फल बनानेके लिए मलिक अम्बर जैसा अद्वितीय कुशल सेनानी मिल गया था। दोनों नरेश अम्बरकी सहायता करते दिखाई देते हैं। दक्षिणकी इन मुसलमानी सत्ताओंका धोरण साफ़ दिखाई देता है कि वह इस साधारण संकट का मिलकर मुक़ाबला करते थे। इस नीतिका मुख्य सूत्रचालक इब्राहीम आदिलशाहही था।

ख़ाने-ख़ानान और उसके पुत्र शाहनवाज़ ख़ानके इस युद्धमें मलिक अम्बरको पैंठण के समीप हार खानी पड़ी (शक १५३८) और अपना बहुत कुछ प्रदेश छोड़ कर जुन्नर की ओर पीछे हट जाना पड़ा। अम्बरके कुछ सरदार आपसी फूटके शिकार होकर उससे बिछड गए थे। इब्राहीम आदिलशाहके प्रयत्नसे अम्बरने आदम ख़ान, लखोजी जाधवराव, उदाराम ब्राह्मण—जो माहूरका जागीरदार था, आदिको अपने साथ कर लिया और फिर खोए हुए प्रदेशपर क़बज़ा जमाया। शक १५४१ में जहांगीरने अपने बेटे ख़ुर्रमको दक्षिणकी सूबेदारीपर नियुक्त किया। उसने पूरी शक्तिसे मलिक अम्बरका अस्तित्व मिटानेकी ठान ली। ख़ुर्रमका बेटा मांडूमें था कि उसने इब्राहीम आदिलशाह और कुतुबशाहके पास अपने वकील भेजे कि यह राजा मुग़लोंकी सहायता करे। ख़ुर्रम चाहता था कि मलिक अम्बरका नाश कर दे। इब्राहीम आदिलशाहका अब धैर्य टूट गया। और उसने मुग़लोंका आश्रित होना मान लिया। ख़ुर्रमकी ओरसे उसको फर्ज़ंदकी (पुत्र) उपाधि प्रदान की गई। गोवलकुण्डाके उस समयके नरेश सुल्तान मुहम्मदने भी बहती गंगामें हाथ धो लेना योग्य समझा। उसने भी मुग़लोंका आश्रित होना मान लिया।

अब मलिक अम्बरकी अवस्था दयनीय बनी। आज तक आदिलशाह और कुतुबशाहने उसकी संकट कालमें सहायता की थी। अब उन्होंने मुग़लोंका वर्चस्व मान लिया। इतनाही नहीं इब्राहीम आदिलशाह मलिक अम्बरको समझाता रहा कि इस नाज़ुक अवस्थामें उसे भी चाहिए कि वह मुग़लोंका स्वामित्व मान लें। परन्तु यह मलिक अम्बरने पसन्द नहीं किया। मुग़लोंके साथ उसने एक समझोता कर, जीता हुआ प्रदेश और भारी खण्डनी दे दी। वह अवसर देखता रहा। ख़ुर्रम उत्तरके काममें चला गया। दक्षिणमें हमेशाके अनुसार मुग़ल सरदारोंमें आपसी वैमनस्यके झगड़े उपस्थित हुए। इसका फाइदा उठा कर मलिक अम्बरने खोया हुआ प्रदेश फिरसे जीत लेनेकी चेष्टा आरम्भ की। मराठा सरदार और मराठा सेना मलिक अम्बरका सारसर्वस्व था। उसने ६० हज़ार मराठोंकी नई सेना खड़ी कर दी। उसने अपना खोया हुआ प्रदेश अपने वशमें लिया, इतनाही नही बल्कि उसने बुर्हानपूरपर हल्ला कर दिया। इस अवस्थामें मलिक अम्बरने चाहा कि आदिलशाही और कुतुबशाही राज्याओंकी उसको सहायता प्राप्त हो। बीजापूर और गोवलकुण्डा नरेशोंने मलिक अम्बरको मज़बूत करना सुयोग्य समझा और उससे मित्रता कर ली।

इसी कालमें जहांगीरके बड़े पुत्र युवराज ख़ुर्रम शाहजहानने जहांगीरके विरुद्ध विद्रोहका झंडा उचाया। लेकिन साम्राज्यकी सेनासे वह मुक़ाबला न कर सका। एक स्थानसे दूसरे स्थानको उसको भागते रहना पड़ा। जिसने मलिक अम्बरके विरुद्ध अपनी जानकी बाज़ी लगाकर युद्ध किया था, उसी मलिक अम्बरके पास उसको आश्रयकी याचना करनेकी नौबत आई। लेकिन अम्बर बड़ा अनुभवी, दूरदृष्टि था। उसने यह पीड़ा मोल लेनेसे इन्कार किया। उसन विद्रोही युवराजकी कोई सहायता नहीं की। शाहजहानने अपने वकील अफ़जलख़ानको इब्राहीम आदिलशाहके पास सहायार्थ भेजा, लेकिन उसने भी युवराजको कोई सहारा नहीं दिया। यह घटनाएँ शक १५४५ की हैं।

इस समय अम्बरभी बड़े आपसी झगडोंमें फँसा हुआ था। मराठा सरदारोंमें बड़ा झगड़ा हुआ। खण्डागले नामी सरदारके हाथीपर से पैदा हुए झंजटमें लखोजी जाधवरावका बड़ा पुत्र दत्ताजी और शहाजी भोसलेके चचेरे भाई संभाजीका देहान्त हुआ। लखोजी जाधव जैसा अनुभवी योद्धा उसका राज्य तज कर मुगलोंकी सेवामें चला गया। यह घटनाएँ कवींद्र परमानंदकृत संस्कृत इतिहासग्रंथ **शिवभारत**में सविस्तर वर्णित हैं। जाधवरावके साथ अनेक मराठा सरदार, जो मलिक अम्बरकी सेनामें पृष्ठवंशका स्थान रखते थे, चला जानसे निजामशाहीमें निर्बलता आई।

अब इब्राहीम आदिलशाहके निजामशाहीके साथ बने हुए मित्रताके सम्बन्धमें कटुता पैदा होती गई। फ़ुतूहाते-आदिलशाहीके लेखक फ़ुजूनीने लिखा है कि इब्राहीम आदिलशाह मलिक अम्बरके दुर्वर्तन, उसका अतीव गर्व और उद्दामताके कारण उससे नाराज़ बन गया था।

मलिक अम्बरसे नाराज़ बने फ़र्हाद खान आदि कुछ सरदार आदिलशाहीकी सेवामें पहुँच गए थे। उन्होंने भी उस जलती हुई आगमें घी डालनेकी चेष्टा की। इब्राहीम आदिलशाहने मुगलोंसे मित्रता बनाए रखी। मलिक अम्बरके पारिपत्यके लिए अब जहाँगीरने महाबतखान और युवराज पर्वीज़को दक्षिणमें रवाना किया। इब्राहीम आदिलशाहने महाबत ख़ानकी सहायताके लिए अपना अनुभवी योद्धा मुल्ला मुहम्मद लारीको बड़ी सेना और द्रव्यसहायके साथ रवाना किया। मलिक अम्बरने फिरसे इब्राहीमसे दोस्तीकी याचना की। और मुहम्मद लारीको वापिस बुलानेकी माँग की। परन्तु इब्राहीमने अम्बरपर विश्वास करना पसन्द न किया। मुहम्मद लारी बीजापूरी सेनाके साथ मुग़लोंकी सहायताके लिए बुर्हानपूर पहुँच गया।

अब मलिक अम्बरके लिए बड़ा कठिन समय था। लेकिन वह उमंडते हुए संकटोंसे डगमगाया नहीं। उसने एक नया रास्ता निकाल लिया। लारीकी सेना पडोसमें आ जानेके बावजूद, उसने बड़ी सेना साथ लेकर कंधारकी ओर कूच किया। निजामशाही ख़ानदान और नरेशको दौलताबादके मजबूत क़िलेमें सुरक्षित रखा गया। कंधारसे हो कर वह आगे गोवलकुण्डाकी ओर बढ़ा। उसका हेतु था कि कुतुबशाहसे शेष खण्डनी वसूल कर ले और कुतुबशाहको आनेवाले संग्राममें अपने साथ कर लें। इस मुहिममें उसके दोनों हेतु साध्य हो गए। मलिक अम्बरने गोवलकुण्डाके नरेश सुल्तान मुहम्मदके साथ आनेवाले युद्धमें सहायता देनेकी संधि कर ली। अबतक का अनुभव था कि कुतुबशाह हमेशासे

ऐसे मामलोंमें आदिलशाहके साथ रहा करता था। लेकिन मलिक अम्बरकी इस योजनासे उसने अलग मार्ग स्वीकार कर लिया।

यह समझोता कर लेनेके बाद अम्बरने बीदरपर आक्रमण किया। बरीदका प्रदेश शक १५४१ से इब्राहीम आदिलशाहके राज्यमें समाविष्ट हो चुका था। अम्बरने आदिलशाही पडावोंपर अचानक हल्ले किए तो बीजापुरी दल परेशान हो गए। उसने बीजापूरी सेनाका निःपात कर, वह नलदुर्ग होते हुए बीजापूरकी ओर बढ़ा। इब्राहीम आदिलशाहने बीजापूरके समीपमें नौरसपूर बसाया था। मलिक अम्बरने यह नया शहर नौरसपूर लट लिया। उसने यह काम इतनी त्वरासे किया कि उसका आमनेसामने मैदानमें मुक़ाबला करनेकी तैयारी इब्राहीम आदिलशाहसे न होने पाई। वह सुरक्षितताके लिए बीजापूरके क़िलेमें जा बैठा। अम्बरने क़िलेका मुहासिरा किया और पूरी रसदें बन्द कर दीं। इब्राहीम आदिलशाहने मजबर हो कर मुल्ला मुहम्मद लारीको बुर्हानपूरसे वापिस बुला लिया और मुग़ल सरदार सरबुलंदरायसे सहायकी याचना की। मुग़ल सरदारने मुहम्मद लारीको वापिस जानेकी अनुज्ञा इस शर्तसे दी कि वह तीन लाख होन मुग़लोंको दे दें और महाबत ख़ानकी उसके लिए सम्मति हो। इतना होनेपर लारी वापिस हो सका। आदिलशाहने मुग़लोंको यह भी आश्वासन दे दिया कि दक्षिणके मुग़ल प्रदेशोंपर कोई आपत्ति न आवें। इस प्रकार मामला तय होनेपर, कुछ मुग़ल साथ लेकर मुल्ला मुहम्मद लारी बीजापूरकी ओर निकला। लारी और मुग़लोंकी इस गुटबन्दीसे मलिक अम्बरने घबरा कर मुग़लोंको अलग रहनेकी याचना की। परन्तु उसका कोई फल उसको न मिल सका। मजबूर हो कर मलिक अम्बरको बीजापूर छोड़ना पड़ा। उसने उत्तरकी दिशामें अपनी सेनाएँ बढ़ाईं। भीमा नदी पार करके वह अहमदनगरके आसमन्तमें भातवडी नामी एक गाँवको पहुँच गया। यह स्थान अहमदनगरसे १० मीलकी दूरीपर है। इस भातवडीके मैदानमें एक ओर मुग़ल और आदिलशाही सेनाएँ कटिबद्ध हुईं और दूसरी ओर मलिक अम्बर अपने मराठा सरदार और हबशी सेनानी लेकर युद्धकी तैयारी करता रहा। यह युद्ध जेधे शकावलीके अनुसार कार्तिक शक १५४६ में हुआ।

इस भातवडीके युद्धमें मुग़ल और आदिलशाहीको कड़ा पराभव मोल लेना पड़ा। मलिक अम्बरकी जय हुई। मुग़ल और आदिलशाह दोनों चाहते थे कि अम्बरकी बढ़ती हुई शक्तिको नष्ट किया जाएं। परन्तु इसका परिणाम केवल विरुद्ध सिद्ध हुआ। इस युद्धमें यशःप्राप्ति होनेसे मलिक अम्बरने निजामशाही राज्यको विनाशसे बचाया। मलिक अम्बरकी दिगन्त कीर्ति हो गई। मुग़लोंको उसकी धाक बैठ गई और उनका गर्वहरण हो गया। आदिलशाहकी कीर्तिमें भी बड़ा कलंक आ गया। इस युद्धसे मलिक अम्बरके सैनिकी बलका दुनियाको दर्शन हो गया। कुछ इतिहास लेखकोंने मलिक अम्बरके इस युद्धकी तुलना महाराणा प्रतापके हलदी घाटके युद्ध वा शेरशाह सूरीके सूरजगढके युद्धसे की ह। इस युद्धसे मग़ल सेनानी महाबत ख़ानकी युद्ध निपुणता का भांडा भी फट गया।

इस प्रकार जब मलिक अम्बर यशोमन्दिरके शिखरपर आरूढ था, शाहजहान बंगालसे भटकता हुआ दक्षिणमें आया और मलिक अम्बरसे आश्रय और सहायताकी याचना की। अम्बरने यह मान लिया। अम्बरके इशारेपर शाहजहानने बुर्हानपूरपर हल्ला किया, किन्तु वह कामयाब न बन सका।

भातवडीका युद्ध और एक दृष्टिसे भी महत्त्वपूर्ण है। इस युद्धके साल डेढ़ सालके अन्दर, ज्येष्ठ शक १५४८ में मलिक अम्बरका देहान्त हुआ। इस युद्धके एक वर्षही अन्दर गोवलकुण्डाके नरेश सुल्तान मुहम्मदका देहान्त हुआ और कुछ दो सालके अन्दर इब्राहीम आदिलशाहभी अपनी आयुके ५६ वर्ष बिताकर, शक १५४९ (हिजरी १०३७) में इस दुनियासे चल बसा।

मलिक अम्बरके २० वर्षोंके जीवन कालमें मराठोंके इतिहासकी दृष्टिसे एक विशेष प्रभाव पैदा हुआ। वह यह कि मलिक अम्बरने महाराष्ट्रके हिन्दु सरदारोंको अपनाया जिनमें विशेषकर मराठा सेनानी प्रमुख थे। लखोजी जाधवराव और मालोजी भोसले पहलेसे निजामशाहीही में बढ़े थे। परन्तु मलिक अम्बर च्यूं कि हबशी था उसने दखनी मुसलमान, हबशी सरदार और मराठा सरदारोंको बढ़ावा दिया। इसी कारणसे शहाजी भोसले जैसा चतुर सेनानी पैदा हो सका और महाराष्ट्रमें शिवाजीके लिए एक प्रकारसे अनुकूल वायुमण्डल निर्माण होता रहा। भातवडीके युद्धमें यश प्राप्त करनेमें मराठोंका विशेष भाग होनेका वर्णन **शिवभारत**के रचियिता कवीन्द्र परमानन्दने किया है। यूं देखा जाए तो मराठा सरदार आरम्भही से मुसलमानोंकी सेवामें हुआ करते थे। इब्राहीम आदिलशाहकी सेवामें कई सरदार होनेका वर्णन परमानन्दने भी किया है।

**अंकुशश्चेति यवना अन्येप्यतुलविक्रमाः।**
**इभरामस्य बहवः सुहृदश्चानुजीविनः। ४.३०।**
**द्विजन्मा ढुण्ढिनामा च तज्जातिश्चापि रुस्तुमः।**
**घाण्टिकाद्याश्च बहवो महाराष्ट्रा महीभुजः। ४.३१।**

भातवडीके युद्धमें शहाजी बलवान और मलिक अम्बरका सीधा हाथ होनेका पता **शिवभारत**में मिलता है। शहाजी भोसलेको साथ लेकर इस युद्धमें विजय पानेपर मलिक अम्बरने निजामशाहका दर्शन किया।

**दिल्लीन्द्रस्य प्रतापाद्भुतविभवभृतः सैन्यमन्यैरजय्यं।**
**सद्यस्तद्येदिलस्याप्यतुलबलमथोज्जासयित्वा जवेन ।।**
**बन्दीकृत्योरुदर्पानपि च युधि चमूनायकानुग्रकर्मा।**
**सेनानीरम्बरोऽसौ भृशबलसहितस्तं निजामं ननाम। ४·६८।**

जब निजामशाही राजवंशके एक छोटे बालकको शहाजीने गद्दीपर बिठाकर अपना स्वतंत्र राज्य चलाना आरम्भ किया और मुग़ल और आदिलशाह दोनों उसके विरोधक बने तो शहाजी भोसलेने अपने पास अनेकानेक छोटे बड़े महाराष्ट्रीय-मराठा वीरोंको जमा किया। परमानन्दने कहा है।

**शक्रप्रस्थस्य शक्रेण विरुद्धोऽयमभूद्यदा।**
**महाराजममुं भेजुर्महाराष्ट्रनृपास्तदा। ९.५**
**घांटिकाः कांटिकास्तद्वद्कोकपाटाश्च कांकटाः।**
**तोमराश्चाहुबाणाश्च महिताश्च महाद्रिकाः।९.६।**
**खराटाः पांडरास्तद्वद् व्याघ्रघोरफटादयः।**
**तदा शाहनरेन्द्रेण पृतनापतयः कृताः। ९.७।**

जब शहाजी दिल्लीके बादशाहके विरुद्ध बना तो उसने घाटगे, कांटे, गायकवाड, कांकडे, ठोमरे, चव्हाण, मोहिते, महाडिक, खराटे, पांढरे, वाघ, घोरपडे आदि महाराष्ट्रीय सरदारोंको सेनापति बनाया।

**उसका वास्तुनिर्माण**

इब्राहीमके पितृव्य अली आदिलशाहने बीजापूरकी उत्तमोत्तम वास्तुएँ निर्माण कीं। उसीका ही बनाया हुआ गोल गुबन्द है। इब्राहीमने भी अपने दीर्घ राज्यकालमें कई वास्तुएँ निर्माण की हैं। अब उनकी ओर हम पाठकका ध्यान आकर्षित करते हैं। इस विषयमें हमने एपिग्राफिका इण्डो-मोस्लेमिकाका उपयोग किया है। उसका संक्षेप "एइंमो" से किया जाएगा। उसी प्रकार डॉ. भगवद् दयाल वर्माके अप्रकाशित डॉक्टरेट प्रबन्ध, मुम्बई विद्यापीठ शक १८८६ का भी उपयोग किया गया है। उसका ग्रन्थ है 'मुस्लिम एपिग्राफी ऑफ् द साउथ वेस्ट इंडिया' उसका संक्षेप 'वर्मा मुशिनैभा' (मुस्लिम शिलालेख नैर्ऋत्य भारत) किया है। यह सब शिलालेख फार्सी भाषामें लिखे गए हैं।

१. इब्राहीम आदिलशाह शक १५०२ में (हिजरी ९८८) गद्दीपर बैठा। उस समय उसकी आयु केवल नौ वर्षोंकी थी। गुलबर्गामें (अहसनाबाद) प्राप्त एक शिलालेखसे ज्ञात होता है कि उसने अपनी माँके साथ वहाँ के प्रसिद्ध सूफ़ी साधू बन्दे नवाज़की दर्गाहकी यात्रा की। उसके साथ उसकी माँ मख़्दूमए-जहाँभी थी जिसने दर्गाहकी समीप एक बावली और एक उद्यान बनवाया। यह यात्रा शक १५०३ (हिजरी ९८९) में रही और बावली और उद्यानका काम शक १५०८ में (हिजरी ९९५) पूरा हुआ।

इस शिलालेखमें इब्राहीमको, वैध रीतिसे बादशाह होनेके बावज़ूद, नवाबकी उपाधि लगाई गई है जो राजाके नामके साथ उस कालमें प्रयुक्त नहीं होती थी। इसका कारण यह मालूम होता है कि वास्तवमें सत्ता दूसरे एक सरदारके हाथ थी और राजा उसके हाथकी कठपुतली था। उस समयमें कौनसे मंत्री थे इसका उल्लेख इब्राहीमके चरित्रमें किया गया है। यहाँ पर पुनरुच्चार आवश्यक नहीं। मेजर टी. डब्ल्यू. हेगने मख़्दूमए-जहाँको चांदबीबीसे संयुक्त किया है जो दुरुस्त नहीं है। यहाँपर शब्द वालिदा प्रयुक्त है और चांदबीबी इब्राहीमकी पितृव्या काकी थी। मेजर हेग अगर प्राप्त घटनाओं को बारीकीसे देखते तो उससे यह भूल न होती। शिलालेखकी संहिता इस प्रकार है।

"**हज़रत नवाब कामयाब गर्दूं इक़्तिदार हुमायून अफ़्रा अक़्द्स आला इब्राहीम आदिलशाह ख़ल्दुल्ला मुल्कहू व सुल्तानहू तवज्जुह ब-ज़ियारत क़ुतबुलअक़्ताब शहबाज़ सर अफ़राज़-मख़्दूम सैयद मुहम्मद हुसैनी गैसू दराज़ क़ुदस सर्रह फ़र्मूदा मिन सालिस शहर मुहर्र-मुल्हराम सन ९८९ हि मय असाकिर मुज़फ़्फ़र व मन्सूर दरीं बुक़्ए-मंज़िल फ़र्मूदन्द व हज़रत अलिया ज़मान मख़्दूमए-जहां वालिदए नव्वाब फ़लक-इक़्तिदार वुसअतशिआर व हिदायत-आसार नज़र फ़र्मूदन्द चश्मए आब व बाग़ ब-अश्जार अस्मार बिना फ़र्मूदन्द फी तारीख़ अज़ शहर मुहर्रमुल्हराम मश्हूर सन ९९४ मिनु-हिजरत।**" (एइंमो १९०७–०८ पृष्ठ ५)

२. दूसरा एक शिलालेख गुलबर्गामें एक उद्यानकी गिरी हुई दीवारमें लगाया गया पाया जाता है। इस लेखमें इब्राहीम आदिलशाह एक उद्यानमें आदिलाबाद (आदिल भवन) के नामसे एक प्रासाद बनवाया था। इस शिलालेखका वर्णन क्रमांक १४ है। इस लेखमें एक बाबाजी नामी बादशाहके कलबर्गी पर नियुक्त अधिकारीका वर्णन है। उसको ज़ाबित ख़ानकी उपाधि प्राप्त है। ज़ाबित ख़ान शब्दका अर्थ है व्यवस्था रखनेवाला।

शायद बाबाजीके गुणोंपर उसको यह उपाधि प्राप्त हो। वह हिन्दु होनेमें कोई सन्देह नहीं। यह प्रासाद शक १५०८ में (हिजरी ९९४) बनवाया गया। इस बाबाजीका इसी उपाधिके साथ क्रमांक ६, ७ और ८ के लेखोंमें भी उल्लेख आया है। यह तीनों अंतिम लेख इब्राहीमके पितृव्य नरेश अली आदिलशाहके कालके हैं। क्रमांक ६ का लेख शक १४९५ (हिजरी ९८१) का है। इससे मालूम होता है कि बाबाजी गुलबर्गेका कमसे कम १३ वर्षोंतक नाईबे-ग़यबत अथवा सूबेदार था। लेखकी संहिता इस प्रकार है—

**"बिना नमूद बैत आ़दिलाबाद यक ख़ाना दाख़िल बाग़ दर पायीन...... दर अहद सुल्तान इब्राहीम आ़दिलशाह ग़ाज़ी ब-मौजिब अमर ख़िदमतगारी नमूद बाबाजी अल्मुख़ातिब ब-ज़ाबितख़ान नायबे-ग़यबत शहर अहसनाबाद मश्हूर सन अरबअ़ व तिसअ़ैन व तिसअ़्मायो हिजरिया।"** (एइंमो सन १६०७–०८, पृष्ठ ६)

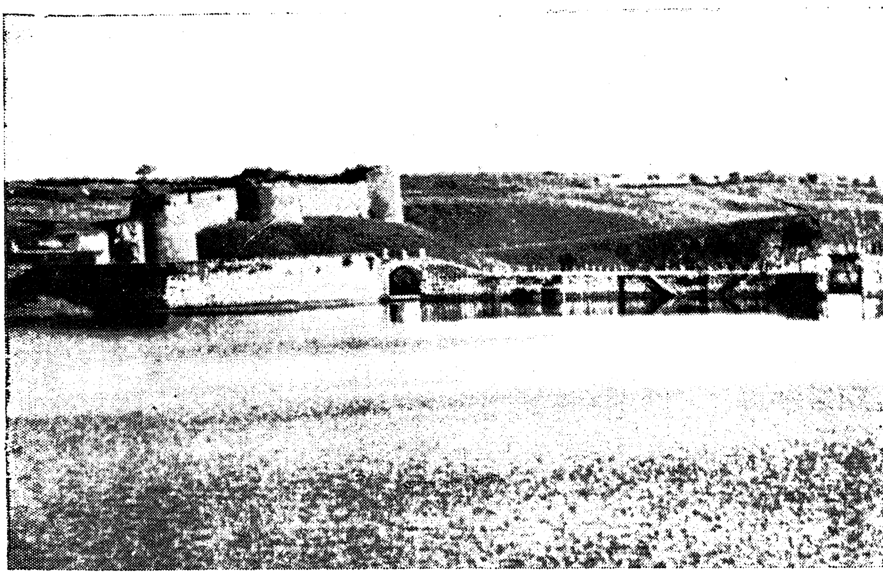
३. गुलबर्गा क़िलेके फ़तहबुर्ज नामी बुर्ज (अथवा हुलमुख) में लगाए गए एक पत्थरपर निम्न लेख खुदा हुआ है जिसपर कोई शक नहीं दिया गया है, परंतु नरेशका नाम प्राप्त है। संहिता यह है—

**"दर अहदे-सल्तनते-पादशाह आ़लीजाह आ़लम-पनाह मिहर-सिपिहर सर-अफ़राज़ी ताजुद्दुनिया व द्दीन अबूल्मुज़फ़्फ़ार इब्राहीम आ़दिलशाह ग़ाज़ी ख़ुल्दुल्ला मुल्कहू व सुल्तानहू व अफ़ाक़ बंदए-दर्गाह मुहम्मद हैदर ईं बुर्ज ब-दौलत तमाम नमूद।"** (एइंमो सन १९०७–०८, पृष्ठ ६)

४. एक पत्थरपर खुदा हुआ लेख प्राप्त है कि शक १५५५ (हिजरी १०३३) में एक बुर्ज़ तोप बारागज़ीके नामसे बनाया गया। शायद इसी बुर्जपर तोप बारागज़ी रखी गई हो। इमारत बनानेवाला अधिकारी मलिक संदल नामी हबशी (श्यामानन) है। संहिता यूं है—

**"ईं बुर्ज तोप दवाज़्दह गज़ी दर अहदे-अबूल्मुज़फ़्फ़र इब्राहीम आ़दिलशाह ख़ुल्द मुल्कहू अबदन इमारत कर्द ब-रहे मलिक संदल सन १०३३।"** (एइंमो सन १९०७–०८, पृष्ठ ७)

५. नलदुर्ग, जिला धाराशीव (उस्मानाबाद) महाराष्ट्रमें अब एक छोटासा गाँव है जो राष्ट्रमार्ग मुम्बई-सिकंदराबादपर शोलापूरसे २८ मीलकी दूरीपर स्थित है। भारत शासनकी ओरसे की गई पुलीस क़ारवाई (शक १८७०) में यहाँपर हैदराबादी रज़ाकारोंकी ओरसे भारतीय सेनाका कुछ मुक़ाबला किया गया था। यह नलदुर्गका क़िला पहाडी प्रदेशमें बसा हुआ है। क़िलेके तटके बीचसे एक छोटी नदी बोरी वा बोरणा बहती है। यह स्थान गुज़श्ता ४–५ शतियोंसे इतिहास प्रसिद्ध बना हुआ है। इसका कुछ नमूना भारतीय स्वातंत्र्य संग्राममें भी मिल जाता है। एक अंग्रेज अधिकारी मेडोज टेलरने शक १७७९ के भारतीय विद्रोहसे पूर्व ३–४ वर्ष यहाँपर कई वर्षोंतक कंपनीके अधिकारीके नाते वास्तव्य किया था। इस क़िलेका वर्णन टेलरने अपने आत्मचरित्रमें सुचारु रीतिसे प्रस्तुत किया है। नलदुर्ग अपनी भौगोलिक स्थितिके



पानीमहल, नलदुर्ग (महाराष्ट्र)

कारण झगडेकी बुनयाद रहते आया है। बहमनी सत्ताके अंतपर यह आदिलशाही राज्यमें सम्मीलित रहा। शक १४७० में इब्राहीमके पितृव्य अली नरेशने उसकी व्यवस्थामें काफ़ी वृद्धिकी और क़िलेको दृढ बनाया। अली आदिलशाहने उसका नाम बदल कर शाहदुर्ग रखा। लेकिन भारतीय परम्पराके कारण वह नाम सुस्थिर न बन सका और जनता उसको नलदुर्गही कहते रही। इतिहास लेखक फिरिश्ताने शाहदुर्ग नामका ही हर जगह प्रयोग किया। ब्रिग्जको नलदुर्गका नाम मालूम न होनेसे उसने शाहदुर्गके अक्षांशरेखांश नहीं दिए हैं। यह १७° ४९′ उत्तर और ७६° २९′ पूर्व हैं। इस स्थानका यह नाम पडनेका कारण, लोक परम्पराके अनुसार, यह है कि किसी नल राजाने उसका पाया रखा। फिरिश्ताने भी इसका उल्लेख अपने ग्रन्थमें किया है कि मालवाके नरेश नलने उसको बनाया। नलने बीदरके राजा भीमकी पुत्री दमयन्तीसे विवाह किया था। लेकिन यह केवल दन्तकथा है। फिरिश्ताने इसको बड़ा सूबा वर्णन किया है। उसने इस सूबे का आयकर सव्वा दस लाख रुपया बतलाया है। इस क़िलेकी बाज़ूसे बहनेवाली बोरी नदीमें एक दीवार बना कर पानीका संचय किया गया था। यह दीवार पुलका भी काम देती थी। अब तो वह टूट गई है पर उसके खंडहर अब भी शेष हैं। फिरिश्ताने बतलाया है कि यह बान्ध शक १५२४ (हिजरी १०११) में बनाया गया था। अब उसको दुरुस्त किया गया ह।

इसी नलदुर्ग किलेमें शक १५०७ में (हिजरी ९९५) इब्राहीम आदिलशाहका विवाह मुहम्मद क़ुली क़ुतुबशाहकी भगिनी, मलिका-जहांसे बडी शान से संपन्न हुआ था। दोनों पडोसी राज्योंमें दोस्ती बनाए रखनेके लिए यह राजकीय विवाह रचाया गया था। शक १६०७ में यह क़िला औरंगजेबके हाथ लगा।

यहाँपर इब्राहीम आदिलशाहके बनाए गए पानी-महलका शिलालेख वर्ण्य है। यह पानी-महल शक १५३५ में (हिजरी १०२२) बनाया गया। यह पानी-महल क़िलेकी उत्तर पश्चिम दिशामें नदीके प्रवाहमें बना है। नलदुर्ग पहाडी प्रदेश होनेके कारण यहाँपर पानीकी दुष्प्राप्यता अबभी पाई जाती है। फौज आदिके लिए पानीकी व्यवस्था आवश्यक थी। लेकिन इस कामके लिए नदी प्रवाहमें बनाए गए बंड-दीवारमें एक महल-प्रासादके निर्माणकी कल्पनाही काव्यमय और एक अभिरुचिपूर्ण व्यक्तिमत्त्वकी परिचायक है। इब्राहीमके व्यक्तिमत्त्वमें इस घटनासे और एक पहलू दिखाई देता है।

इस बंड या दीवारकी ऊँचाई प्रवाहभूमिसे ६३ फूट है। इसी विशाल दीवारमें महलका निर्माण किया गया है। उसमें कुल चार कोठरियाँ और सज्जे बने हुए हैं। बंडकी लम्बाई ५७२ फूट और चौड़ाई कहीं कम, कहीं अधिक, ८ से लेकर ४७ फूट तक है। महलका मुख्य दीवानख़ाना २३ फूट, २१ फूट है। सज्जा २६½ और ३½ फूट है।

इस मुख्य बान्धको तीन जलद्वार हैं। नदीमें जलाशय बनानेके बाद, धूपकालेमें पानीके जाने किए लिए निम्नत: एक द्वार है। यह छोटा है। वर्षा काल में जब जलप्रवाह बढ़ जाता है तो और थोडी ऊँचाई पर दूसरा जलद्वार है। जब बाढ़ आती है तो उसके लिए बड़ा और अधिक ऊँचाई पर तीसरा जलद्वार है। जब बाढ़ बहुत अधिक हो तो पानी बंडकी दीवारपर से भी बह सकता है, बहता भी है। अब मिट्टीके जम जानेसे नदीका पात्र भर आया है और निम्नतम द्वार बन्द हो गया है। अन्य दोनों द्वार चालू हैं। पानीमहल देखनेके लिए अब भी वर्षाकालमें रसिक नगरवासी और देहाती आया करते हैं।

साडेतीन सौ वर्ष पूर्वकालीन भारतीय वास्तुशास्त्रका यह छोटासा प्रतीक रूप है जिसमें वास्तुशास्त्रकी दृष्टिसे बड़ी कल्पकता दिखाई देती है। वास्तु अभी सुरक्षित है। शिलालेखका पत्थर पानी-महलकी दीवारमें बिठाया हुआ और १ फूट ९ इंच और १ फूट ५ इंच है। वास्तुनिर्माताका नाम मीर मुहम्मद इमादीन है जो लेखमें प्राप्त है। संहिता निम्न प्रकार है—

**अज हज़रत शाह दीन-पनाह मन्सूर**
**शुद मीर मुहम्मद इमादीन मामूर।**
**दर बस्तने ईं सद्द व ब-तौफ़ीक़े-अल्ला**
**सद्दी शुदह चूं सद्दे-सिकंदर मश्हूर।**
**अज दीदने ईं चश्मे-मुहब्बान रोशन**
**मी-गर्दद व चश्मे-दुश्मनान् गर्दद कूर।**
**अज दिल कर्दम सवाल तारीख़-श गुफ़्त**
**'काई सद्द ब-लुत्फ़े-शाह मानद मअमूर'।**

अबजद पद्धतिसे अंतिम पंक्तिके सब अक्षरोंके मूल्य मिला देनेसे इस वास्तुके निर्माणकी तिथि प्राप्त होती है। इन अक्षरोंका मूल्य १०२३ प्राप्त होता है। लेकिन स्व. यज़्दानीने जो छबी दी है और जो लेखकी संहिता दी है, इसमें इस तिथिके वाक्यके नीचे हिजरी १०२२ के शब्द मुद्रित संहितामें दिए हैं। परन्तु जो छबी मुद्रित है उसमें हिजरी १०२२ के शब्द नहीं पाए जाते। इससे कुछ संदेहसा पैदा होता है; क्योंकि सब अक्षरोंका मूल्य १०२३ आता है इसलिए यह संदेह कायम रहता है। यह इस प्रकार दूर हो सकता है कि "शाह" शब्दके स्थानपर "शह" शब्द हो। इससे अर्थमें कोई बाधा नहीं आती और मूल्य संख्याभी १०२२ आती है। यह हो सकता है कि लेखकने "शह" शब्दही प्रयुक्त किया हो लेकिन टंकलेखकने इस शब्दका पाठ ग़लत तौरपर "शाह" बनाया। लेकिन स्व. यज़्दानीने इस भूलको देखा नहीं। (देखिए एइंमो सन १६१७–१८, पृष्ठ ३)

कंधारमें (ज़िला नांदेड, महाराष्ट्र) एक मस्जिद इब्राहीम आदिलशाहके कालमें बनाई जानेका पता चलता है। एक पत्थरपर यह लेख अरबी और फ़ार्सी भाषामें पाया जाता है। अरबी लेखांशके अंतमें 'शहर सन १५' लिखा हुआ है। स्व. यज़्दानीने उसको हिजरी १०१५ मान लिया है जो दुरुस्त लगता है। यह शक १५२८ होता है। शक १५३१ में मलिक अम्बरको इब्राहीमने मुगलोंके आक्रमणके समय बड़ी सहायता की और कंधारका क़िलाभी मलिक अम्बरके हवाले कर दिया। इन घटनाओंका उल्लेख पहले हो चुका है। इससे मालूम होता है कि शक १५२८ में इब्राहीमने मस्जिद बनानेकी घटना काल सुसंगतही प्रतीत होती है। संहिता इस प्रकार है—

**"शहर सन १५**
**शुद बिना दर वक़्ते इब्राहीम आदिल बादशाह**
**मस्जिद पुर अज सफ़ा वस्फ़-श रसिदह ता...**
**अजबरीं ख़्वान्दन क़ुरआन नमाज व जिक्रे-हक़**
**कर्द फ़र्मायिश ब-ऊ अब्दुलअज़ीज नेक-ख़्वाह"**

(देखिए एइंमो, सन १९१९–२०, पृष्ठ २४)

## नौरसपूर निर्माण

अब्दुलने अपने ग्रंथमें नौ-रस-पुर नगरके निर्माणका कोई उल्लेख नहीं किया है। परन्तु ज्ञात है कि इस काव्यलेखनके समय नौरसपूर नगरका निर्माण हो चुका था। इब्राहीम आदिलशाहने स्वयं अपने एक गीत (क्रमांक ४३) में इस नगरका उल्लेख किया है।

**बिरहिनी जपा-कुसुम अरे रुख पाखई पतर नकर**

**अन्तरा**

**पवन थें पावक अधिक भए मेरो कहियो सांच मान सीतल न होय कर**

**अभोग**

**छा रया ही खोर चंदन तन ता पर अंगार कहूं कहूं बुझ रहे**
**कोयले मानो मधुकर**

**इब्राहीम आखइं यो कवीत नवरस नवरसपूर गुन नगर**

कहा जाता है कि हिजरी संवत् १००८ (शक १५२२) के लगभग इब्राहीमने अपने गीत इकठ्ठा किए थे। यह घटना सत्य प्रतीत होती है। नौरसपूर नगरकी बुनयाद रखनेकी घटना इसी साल बनी थी। जिसका उल्लेख नज़ीर अहमदने तज़्किरतुल्-मुलूक नामक इतिहास ग्रंथके लेखक रफ़ीउद्दीनके आधारसे किया है। (पृष्ठ १०, प्रस्तावना)।

मुहम्मद इब्राहीम जुबैरीने अपने इतिहास ग्रंथ, बसातीनुस्सलातीन नामकमें भी इस नगरके निर्माणका वर्णन काफ़ी तफ़सीलके साथ किया है। (यह ग्रंथ हैदराबादसे कई वर्ष पहले छप चुका है)। यह ग्रन्थ बहुतही उत्तरकालीन (हिजरी १२३३–शक १७४०) है जब कि अंग्रेजी हुकूमत बीजापूरमें कायम हो चुकी थी। जुबैरी स्वयं बीजापूरनिवासी है। उसने कहा है कि यह नगर ("दर शुहूर साल यक हज़ार हश्त हिजरी ब-फ़ासिलए-यक फर्सख़ अज़ बीजापूर सिम्ते-क़िबला") हिजरी संवत् १००८ में बनाया गया। जुबैरीने अपने पूर्वकालीन फार्सी इतिहासग्रंथोंका अध्ययन कर यह जानकारी दी है। इसलिए उसका यह वर्णन साधार मालूम होता है। यह काम शाहनवाज़ खानके सुपूर्द किया गया था। उसने बुद्धिमान शिल्पज्ञों और वास्तुकोविदोंको एकत्र कर नगरके नक्शे तैयार किए थे। दूर दूरसे उत्तमोत्तम संग-तराशोंको (गवंडियोंको) बुलाया गया था। उसमें महल, गल्लियाँ, कुशादा रास्ते, बाज़ार, दीवान, दुकानें आदिकी व्यवस्था की गई थी। इस कामपर चाकर, मजदूरों और उनके सहायक आदिकी संख्या साधारणतया आठ हज़ार थी। इस उपनगरमें चमन और गुल्शनोंकी व्यवस्था कर दी गई थी। यह नगर बादशाहने विशेष रुचि लेकर निर्माण किया। उस समय वह नौजवान भी था। इसी लिए उसका नाम नौरसपूर रखा गया था। (देखिए पृष्ठ २४६)।

## इब्राहीम रोज़ा

इब्राहीमने अपने गीतोंमें अपनी पत्नी चांद सुल्तानाका उल्लेख किया है। परंतु इब्राहीम रोज़ामें दफ़नाई हुई उसकी पत्नीका नाम ताज सुल्ताना लिखा गया है। न मालूम यह दोनों एक हैं या अलग। लेकिन इसमें कोई आशंका नहीं कि मुस्लिम परंपराके अनुसार इस

बादशाहही ने अपने अन्त्यसंस्कारके लिए एक रोज़ेका निर्माण किया था। यह इमारत हिजरी संवत् १०३५–शक १५४८ में बनी हुई थी। क्योंकि इस वर्ष ताज सुल्तानाका देहान्त हुआ और इस रानीको इसी रोज़ेमें दफ़नाया गया। उसके मृत्यु लेखमें वास्तुनिर्माणका वर्ष और लगाए गए वित्तका भी अंदाजा किया गया है।

**बिना फ़र्मूदह रोज़ए-ताजे-सुल्तान**
**कि खुल्द अन्दर सिफ़ात-श मान्दह हैरान्**
**नमूदह ख़र्चे-आन् यक-नीम लक होन**
**वले नुह सद दिगर ज़म गश्तह बा आन्**
**ब-हुस्ने-इहतिमाम ईं कारे-रोज़ह**
**मलिक सन्दल रसानीद ब-पायान्**
**साले-तारीख़ ज़ुहरह सुल्तान् रा**
**अक़्क्सिह ख़िरद याफ़्त अज़ "यक दाग़"**

"ताज सुल्तानाके इस रोज़ेकी नीव रखी कि स्वर्ग उसके गुण देखकर हैरान रह गया। इस कामपर ढेढ़ लाख और नौ सौ होनका ख़र्च किया गया। यह काम मलिक संदलकी व्यवस्थामें पूरा हुआ। ज़ुहरा-सी सुन्दर इस रानीकी मृत्युका वर्ष, सारांश रूपसे बुद्धिने बतलाया कि यक-दाग़ अर्थात् १०३५ है।"

इसके तुरन्तही दो साल बाद इब्राहीम आदिलशाहका देहान्त हुआ। उसको भी इसी रोज़ेमें दफ़न किया गया। उसकी मृत्युके सम्बन्धमें यह माद्दए–तारीख़ उस रोज़ेमें अभीतक मौजूद है।

**चूँ साले-रिहलत-श अज़ पीरे-अक़्ले-जुनम गुफ़्त**
**"बुवद ब-गुल्शने-फ़िर्दोस जाए-इब्राहीम"**

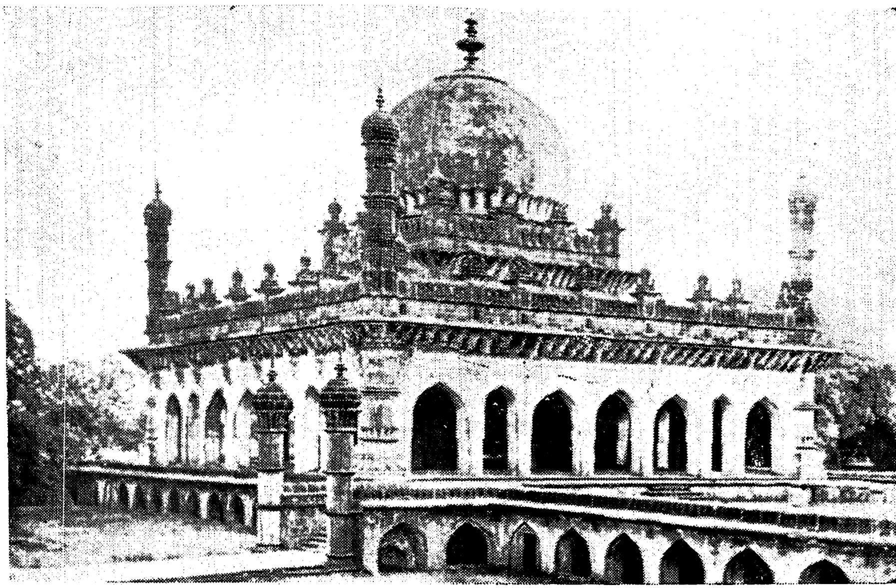
कबरकी बुद्धिके स्वामीने उसके निर्माणका वर्ष इस प्रकार बतलाया। इब्राहीमका स्थान स्वर्गके उद्यानमें रहे।" द्वितीय पंक्तिके अक्षरोंका, अबजद पद्धतिसे, मूल्य १०३७ होता है। यह हिजरी कालगणनाका वर्ष है। उसकी मृत्युका और एक माद्दए-तारीख़ प्राप्त है। वह है

**बि-गुफ़्त "अज़ मा सल्वात बर इब्राहीम"**

किसीने कहा "हमारी ओरसे इब्राहीमके लिए नमाज़"। कोष्ठकमें दिए शब्दोंके अक्षर मूल्योंकी जमा १०३७ होती है जो हिजरी संवत् है।

### अन्य वास्तु

पन्हाला क़िला आरम्भही से आदिलशाहोंके क़ब्जे में था। वहाँपर इन बादशाहोंने क़िलेको दुरुस्त किया, तटबंदी करा ली, कई बुर्ज बनाए और दरवाज़े भी बनाए। इनके कई प्रत्नलेख ईरानी भाषा में लिखे मिलते हैं। इब्राहीम आदिलशाहने गड़पर एक महल बनवाया। उसकी चौड़ाई एक नौरस और ऊंचाई दो नौरस बताई गई है। इस महलको आजकल सज्जा कोठी कहा जाता है। इस महलका निर्माण शुहूर संवत् 'अलफ़ व समान' अर्थात् १००८ में हुआ था, इसका समान शक संवत् १५२९ होता है। गोया यह महल इब्राहीमके आरम्भ कालकी वास्तु है।



इब्राहीम रोज़ा, बीजापूर

पन्हाला गड़पर एक मस्जिद बनी हुई थी। उस मस्जिदके समीपही एक बड़ा हौज़ बनाया गया। यह एक छोटासा तालाब है। उसके निर्माणके लिए मक़्सूद आक़ा नामी एक अधिकारी नियुक्त था। इस कामको "अहदी अशर व अलफ" अर्थात् १०११ में पूरा किया गया। यह हिजरी गणना है जो शक १५२५ होता है। लेख लिखनेवालेका नाम है मुल्ला रज्जब।

पन्हाला गड़के एक दरवाज़ेके निर्माणका भी एक प्रस्तरलेख ईरानी भाषामें प्राप्त है। वह भी इब्राहीम आदिलशाहके कालका है। उसके निर्माणका काल अरबी पद्धतिके अनुसार दिया गया है। उसका वर्ष ९९४ है। यह हिजरी कालगणना होनी चाहिए। इसका शक संवत् १५०८ है। इब्राहीम गद्दीपर तो था किन्तु वह बच्चा था और राज्यकी सत्ता उसके मंत्रीही चलाते थे। यह आरम्भकालीन लेख है। इस कामको पूरा करनेवाले अधिकारीका नाम मुल्ला जाफ़रान बतलाया गया है। इन तमाम लेखोंका संपादन पूनाके विद्वान्, ईरानी भाषाके पंडित श्री भगवद्दयाल वर्माजीने, अपने अप्रकाशित प्रबन्ध—मुस्लिम एपिग्राफी इन साउथ वेस्टर्न इण्डिया, शक १८८६ फिरसे किया है। इसके पूर्व इनमें से कुछ प्रस्तरलेख डॉ. नाज़िम द्वारा एपिग्राफिया इण्डो-मोस्लिमिकामें प्रकाशित हो चुके थे। डॉ. वर्माने कई ग़लतिओंका निराकरण किया है।

इब्राहीमके राज्यकालमें वास्तु निर्माणका उल्लेख बसातीनुस्सलातीनके लेखकने निम्नप्रकार किया है। सातखनी प्रासादका निर्माण शक १५०५ (हि. ९९१) में पूरा हुआ। हैदर बुरूज, जिसको स्थानिक जनता उपली बुरूजके नामसे याद करती है, शक १५०६ (हि. ९९२) में बनाया गया। मलिकए-जहान नामकी इब्राहीमकी पत्नीके नामसे संबद्ध मस्जिद शक १५१० (हि. ९९६) में बनाई गई। आनन्दमहल प्रासादका निर्माण शक १५१४ (हि. ९९८) में हुआ। नवरसपूर नगरकी बुनियाद शक १५२२ (हि. १००८) में रखी गई थी। पाँच छह सालोंके बाद उसका निर्माण पूरा हुआ। नवरस महल नामी प्रासाद शक १५२३ में (हि. १००९) बनाया गया। शक १५४६ में भातवडीका घनघोर संग्राम अहमदनगरके समीप हुआ। उसमें मलिक अंबरने इब्राहीम आदिलशाह और मुग़ल सेनाओंके संयुक्त दलको परास्त किया। इसी साल अंबरकी सेनाने नवरसपूर शहरको लूटकर उसकी ख़राबी की।

**इब्राहीमकी विद्याभिरुचि**

इतिहास साधनोंसे ज्ञात होता है कि इब्राहीम आदिलशाहको श्रेष्ठ विद्याभिरुचि प्राप्त थी। वह तुर्की वंशका था लेकिन उसके संपूर्ण सांस्कृतिक संस्कार ईरानी थे। जैसे कि भारतीय नरेशोंमें ग्रंथलेखनकी परम्परा थी, उसी प्रकार ईरानके नरेशभी साहित्यिक हुआ करते थे। यह ईरानकी अरबपूर्व प्राचीन परम्परा है। सासानी आर्य ईरानी वंशमें यह परम्परा पाई जाती थी। भारतमें भर्तृहरी, हर्षवर्धन और दक्षिणमें कल्याणीके चालुक्यवंशीय राजा, अभिलषितचिंतामणिके रचयिता सोमेश्वरके उदाहरण सर्वविश्रुत हैं। यही परम्परा बीजापूरके मुसलमान नरेशोंमें भी बद्धमूल थी। इब्राहीमको विद्या और विद्वानोंका प्रेम था। उसकी आस्थानीमें अनेक कवि और विद्वान् उपस्थित थे। गुल्शने-इब्राहीमी अर्थात् तारीख़े फ़िरिश्ताका लेखक मुहम्मद क़ासिम बिन हिंदूशाह अहमदनगरके राज्यसे यहीं आकर बस गया था। और उसने अपना इतिहास ग्रंथ यहीं पूरा किया। रफ़ीऊद्दीन शीराज़ीने अपना इतिहास "तज़्किरतुल्मुलूक"—राजाओंकी वार्ताएँ—यहीं लिखा। इसके अतिरिक्त ज़ुहूरी, मलिक क़ुम्मी,

हैदर ज़हनी, बाक़र काशी, संजर काशी आदि फार्सीके साहित्यिक इब्राहीमकी आस्थानीकी शोभा थे। इस नरेशने खडीबोलीको बड़ाही आश्रय दिया था। प्रस्तुत ग्रंथका रचयिता इस नरेशके निमंत्रणपर दिल्लीसे आकर यहीं बसा था।

स्वयं इब्राहीमभी ऊंचे दर्जेका कवि और गायक था। उसे गायनशास्त्रसे गहरी दिलचस्पी थी, यहाँ तक कि वह स्वयं समय समयपर गीत रचा करता था। उसके गीतों और दोहोंका संग्रह इब्राहीमही के राज्यकालमें, शक १५२२ (हिजरी १००८) के पूर्व, ग्रंथरूप बन गया था। इस गीतसंग्रहका नाम नौ-रस है। यह वही भारतीय साहित्यके नौ रस है। इस नौरस ग्रंथमें ५९ गीत और १७ दोहे संगृहीत हैं। दुर्दैव है कि ग्रंथ केवल खडीबोलीका होनेपर भी अभीतक नागरी लिपिमें नहीं आ सका। उसका उर्दू संपादन डॉ. नज़ीर अहमदने शक १८७७ में लखनौसे प्रकाशित किया है। उसके टीकात्मक संस्करणकी नितान्त आवश्यकता है। उसके गीतोंके एक दो नमूने सादर हैं।

**एक नार देख्या खडी सामने**
**पुनम रातकी मकर चांदनी**
**या झमके मेघ रुत सौदामिनी ।।**
**बैन**
**बहु रूप खेले खेल कामिनी**
**हो ना जानूं तुरकिनी बरहामिनी।**
**आपीं नर रूप, आपीं रूप सुहागिनी**
**दस रूप ईस्वर की ल्याई निशानी।**
**अभोग**
**चितारी चितर निस के हुवे मानी**
**ज्यूं मौज पर मौज आवे पानी।**
**बोले बातां शीरीन ज़ुबानी**
**इब्राहीम मिलतें चरन धरूं पेशानी।** (गीत १६)

भारतीय देवदेवताका इब्राहीमने वैसाही अत्यंत आदर वर्णन किया है जैसा कि सूरदास अथवा तुलसीदासने किया है। देखिए यह विद्यादायिनी सरस्वतीकी स्तुति—

**नौरस सूर जुग जगजोती आ नुड सर्वगुनी**
**यो सतत सरसुती माता इबराहीम परसाद भई दूनी** (गीत १)

जटामुकुटधारी गंगाधरका वर्णन देखिए—

**भैरव करपूर गौरा भाल तिलक चंद्रा**
**त्रिनेत्रा जटामुकुट गंगाधरा**
**बैन**
**एक हस्त रुंड नरा त्रिसूल जुगुल करा**
**बाहन बलीवर्द सेत जात गुसाईं ईश्वरा**
**कास कुरुत कुंजर प्रिश्ठ चरम व्याग्रा** (गीत ५)

अब विनायकका दर्शन कीजिए—

**गनपती तुम रूप की तनक जोत मानो सूर जगमगे रितु बसन्त**

**अन्तरा**

**सो दिश्ट सादिश्ट भई विनायक मनोहर सन्मुख**
**देखन कठिन सावक नैन पंत।**

**अभोग**

**चिंता छाई चंदरमुख कलंक अस्तूती तेरी सुने कन्त**
**इबराहीम आखइं नौरस गनेसपद गावत चोंप सेवक कलावंत**
**विद्यापंथ सूजत नहीं या कारन सरसती गनपती रबि ससि भए प्रकास**

(गीत ३८)

इब्राहीम वही कविसंकेत प्रयुक्त करता है जैसे कोई संस्कृत पंडित करेगा—

**तेरी उपमान सुधांशु लच्छन चाहे अम्रित दिखाई**
**मू चख चकोर परिचित अपनी आविह सगाई।**
**इबराहिम मुर्छन भए यो रीझे सुन्दरताई**
**अधराम्रित चखा भवर जिलाई।** (गीत २)

इब्राहीमका कल्पनाविलास भी उच्च कोटिका प्रतीत होता है—

**जग सुख नित अनन्द भए, हूं सदा जनम खोई बिरहे काज**
**अए अए बिरही मो बिचित्तर मो मन लागे पल पल कुट कूट राज।**
**अरे पवन न जा उन पर जिन बिरही कठिन अगिन भाग**
**हूं जलूं कुच डर नहीं, मुंज डर जग जल जाए उस आग।** (गीत ३१)

यह संस्कृत समासोंका नमूना तो देखिए (दोहरा)

**कृशांगी कुटिलकेस पांडुगाल चमर सेत वस्तर**
**चंदनरस पूर संचमाना निविश्टा कुमुदपतर गौरी हिमकर।**
**कल्यानी रमनी पीवरकुचा तनूदरी म्रिगनैनी बाहां तन्वी**
**स्यामकेस बदन हिमकर।**
**कांतांकम दिसंती बाली लज्जा डर द्रुशा पशन्ती रोमावली**
**नीली कंचुकी चितर वस्तर।** (गीत ५५)

इब्राहीमने अपनी पत्नी राज्ञी चांद सुलतानाका, जो गोवलकुण्डाके कुतुबशाही नरेश अब्दुल्ला कुतुबशाहकी भगिनी थी, वर्णन इस प्रकार एक गीतमें किया है—

**धनी बीबी चांद सुलतान मलकी जहान**
**उत्तम सुन्दर नारी ऐसी है भी कहां।**

**रोम रोम चातुर सब भेद संपूर अति महा गुन**
**साऱ्यां लाज थक्यां नाऱ्यां ऐसी तव कीरत सुन।**

**अम्रित बचन, बुधवन्त, निर्मल मन, एक चित्त, एक भावुं**
**इब्राहीम रीझा पल पल लोचन पग कर चलतें आवुं।** (गीत २२)

इब्राहीमकी वाणी केवल आर्यभारतीय और फार्सीसे बिल्कुल कम प्रभावित है। फार्सी शब्द बहुतही कम और वहभी सारूप्यीकृत रूपमें प्रयुक्त हैं। इस कारण कुछ उर्दूके अभिमानी तथाकथित विद्वानोंने उसकी भाषाको दक्खिनी कहनेसे इन्कार कर दिया है जो भाषाशास्त्रीय दृष्टीकोनसे नादानीसे कम नहीं है। इब्राहीमके दिलमें हिंदू देवदेवताओंके लिए अतीव आदर है—

**नौरस सूर जुग जगजोती आ नूड सर्वगुनी**
**यो सत सरसुती माता इब्राहीम परसाद भई दूनी।** (गीत १)

उसकी भाषामें तद्भव शब्दोंका प्रयोग पर्याप्त मात्रामें मिलता है—

**लोअन बीच परछाई पीव की मूरत अचरित चमत्कार**
**इबराहीम महा सुन्दर यूसुफ़ पवितर भया कूप दीजे डार।** (दोहा ७)

इब्राहीम आदिलशहको फार्सी भाषामें भी अच्छा ज्ञान था। उसकी कविताके दो बैत प्राप्त हैं जो कलामुल्मुलूकमें प्रकाशित हो गए हैं। इतिहास साधनोंसे यहभी मालूम हुआ है कि, यह मराठी भाषाभी भली भाँति बोल सकता था। असद बेगने अपनी वार्तामें यह लिखा है कि उसने इब्राहीम आदिलशाहको मराठी भाषा में अपने दरबारी विद्वान अंतू पंडितसे बातचीत करते देखा था। (देखिए डॉ. पी. एम्. जोशी पृ. १९२, पोतदार स्मारक ग्रंथ।)

इब्राहीमको गायनमें बडी रुचि थी। वह गायकोंका बडा आश्रयदाता था। उसके दरबारमें श्रेष्ठ गवय्योंका बडा हुजूम था। उनकी संख्या कई हज़ार बतलाई जाती है। इब्राहीमने बीजापूर नगरका एक उपनगर नौरसपूरके नामसे बसाया था। इस उपनगरमें गवय्योंके लिये घर बनवाए थे। उनकी श्रेणियाँभी बनाई गई थीं। कनिष्ठ श्रेणीके गवय्योंको गुणिजन और श्रेष्ठ श्रेणीवालोंको अताई कहा जाता था। उसको नौरस शब्दसे विशेष लगाव था। गोया उस शब्दने राजापर जादूसा कर दिया था। उसने अपनी प्रिय वस्तूओंको नौरस नाम प्रदान किए थे। उसके दो कवि नौरसी थे। शराब, गीत, झंडा, शासनध्वज, मंत्रालय, त्यौहार, एक प्रासाद, और एक महल, एक मुद्रा (९ होनोंकी), फिरिश्ताके इतिहासका दूसरा नाम तारीख़े-नौरसी, हाथी, गवय्या आदियोंके नाम नौरस रखे गए थे)।

इब्राहीमका गायनका प्रेम, हिंदु कवि-गायकोंमें उसका नित्य मीलित रहना और हिंदुओंसे प्रेम और सहिष्णुताके उसके आचारने कुछ ग़लतफ़हमी कर देनेका उल्लेख इब्राहीम ज़ुबेरीने अपने इतिहास ग्रंथमें किया है। यहां उसने कहा है कि जनसाधारणमें अफ़वाएँ (अर्थात् मुसलमान मुल्ला, मौलवियोंमें) उडी हुई थीं। ज़ुबेरीका वाक्यखंड है— "**दर अफ़वाह अवाम**

**उफ़्ताद कि इब्राहीम हमचूं अकबर इन्हराफ अज़ राहे—मुस्तक़ीमे-दीने-इस्लाम नमूद, हाल आँ कि ऊ मौहिद, पाक-इअतिक़ाद व मुबर्रा अज़ाँ तर्के ख़लल व फ़साद बूद** " अर्थ होता है—जनसाधारणमें किंवदन्ती फैल गई कि अकबरके समानही इब्राहीमभी इस्लाम धर्मके सीधे मार्गसे पतित हो गया है। वस्तुस्थिति यह थी कि वह एकही ईश्वरपर निष्ठा धरता था। उसकी श्रद्धा पवित्र थी। और वह बरबादी और फ़िसादके मार्गसे मुक्त था।

**कवींद्र परमानन्दकृत इब्राहीमके उल्लेख**

छत्रपति शिवाजीका संस्कृत भाषामें कवीन्द्र परमानन्दने शिवभारतके नामसे एक चरित्र लिखा है जिसके ३१ अध्याय प्राप्त हैं। ३१ वाँ अध्याय अपूर्ण है। ग्रंथके कुल २२६२ श्लोक प्राप्त हैं। यह चरित्र मालोजी और शहाजीके चरित्रोंका भी उल्लेख करता है। शक १५४६ के भातवडीके युद्धमें शहाजी भोसला मलिक अम्बरका दक्षिणहस्त था। उसके कुछ दिनों बाद मलिक अंबरका देहान्त हुआ और शहाजी भोसले इब्राहीम आदिलशाहकी सेवामें आ गया था। कवीन्द्र परमानन्दने कहा है—

**येदिलस्तमथोद्वीक्ष्य भेदयोग्यमनेहसम् ।**
**अमुं शाहं महाबाहुं महोत्साहं महाशयम् ।** ५.११
**साहाय्यार्थं समानाय्य महाभृत्यैर्महामतिः ।**
**स्पर्धी निजामशाहस्य स्वं दुर्धर्षममन्यत ।** ५.१२
**ततस्तेनेभरामेण तस्मै विध्वस्तविद्विषे ।**
**मन्ये सन्तुष्य शाहाय निजमर्धपदं ददे ।** ५.१६

शहाजीके शौर्य और पराक्रमसे इब्राहीम परिचित था। वह उसके साथ हो जानेसे इब्राहीम खुदको अजिक्य मानने लगा। अंतिम श्लोकमें शहाजीको बडी जागीर, गोया अपना आधा राज्य देनेका उल्लेख आया है।

कवीन्द्र परमानन्दने इब्राहीमके मृत्युका उल्लेख, दक्षिणके राजकारणमें उसको महत्त्वपूर्ण मान कर, विशेष रूपसे किया है। इससे यहभी मालूम होता है कि उसकी मृत्यु नैसर्गिक थी। परमानन्दन इब्राहीमको अनुभाविन्-द्रष्टाका विशेषण प्रयुक्त किया है।

**दिवंगते दैवयोगादिभरामेऽनुभाविनि ।** ८.६

परमानन्दने मुहम्मद आदिलशाहके मुखसे यह कहलवाया है कि इसी शहाजी भोसलेकी सहाय्यतासे उसके पिता इब्राहीमने अपना राज्य निष्कंटक बनाया था। मुहम्मदने शहाजीका अवमान किया और वह उस राज्यको त्याग कर चला गया।

**पूर्वमस्यैवावलम्बादिभरामः पिता मम**
**विध्वस्तारातिरध्यास्त निर्विशंकः स्वमानसम् ।** ९.२६
**महामानी महाबाहुरसौ शाहमहीपतिः**
**कृत्वा मदधिकं स्नेहमिभरामेण वर्धितः ।** ९.२८

जब शक १५७० में मुहम्मद आदिलशाहने मुस्तफाख़ान और बाजी घोरपडे द्वारा शहाजी भोसलेको कारावद्ध कराया तो कवीन्द्र परमानन्दने इब्राहीम आदिलशाहके दूरदर्शित्वकी याद दिलाई है।

**अनेनोपकृतः पूर्वमिभरामः पदे पदे**
**निवेशितोऽयं सन्तुष्य तेनाप्यत्युन्नते पदे ।** १५.११

इस प्रकार हम देखते है कि मराठोंके इतिहास लेखकने भी इब्राहीमके संबंधमें कोई अनुदारताके उद्गार नहीं लिखे है।

### जगद्गुरुकी उपाधि

पूनाके भारत इतिहास संशोधन मंडलमें महाराष्ट्रके इतिहास और संस्कृतिके संबंधमें मराठी, फार्सी आदि लेखपत्नोंका बडा संग्रह इतिहासाचार्य राजवाडे आदिके प्रयत्नोंसे किया गया है। उनमेंसे कई लेखपत्न प्रकाशित हुए है। स्वर्गीय राजवाडेने ऐसे पत्नोंके कई खंड प्रकाशित किए हैं। राजवाडेके १५ वें खंडमें इब्राहीम आदिलशाहका उल्लेख एक मजहरमें जगद्गुरूकी उपाधिके साथ किया गया है। मसूर, जि. साताराके पटेलगीका झगडा था। उसका निर्णय करने लिए जगद्गुरु इब्राहीम आदिलशाहने वादियोंकी याचनापर उनका झगडा प्रतिष्ठान, पैठण (जि. औरंगाबाद, महाराष्ट्र) के धर्मपीठके पास भेज दिया। यह मजहर शक १५३२ का है। इसके शब्द इस प्रकार हैं। "हुजूर ही पातशाहा जगद्गुरू यांनी मनास आणून फर्मान करून दिल्हा।" बादशाह जगद्गुरूकी उपाधि धारण करता था। यह उपाधि केवल दरबारियोंतक सीमित नहीं थी, परंतु महाराष्ट्रकी आम जनतामें भी वह उपाधि पहुँच गई थी। उसकी हिंदु प्रजाभी उसके नामके साथ जगद्गुरूकी उपाधि प्रयुक्त करती थी। इस मजहरसे पैठण-प्रतिष्ठानके, एक धार्मिक पीठके नातेसे, महत्त्वका दर्शन होता है। इस स्थलके संबंधमें निम्न उल्लेख है। "प्रतिष्ठान थोर जागा आहे. हमेषा निवाडे होत आहेत. न्यायनीति बरी होते." इसमें विशेष बात यह है कि आदिलशाही राज्यके झगडे और विवादभी पैठणको भेजे जाते थे। स्वयं बादशाह उन विवादोंको भेजा करता था।

(राजवाडे खंड १५, पृष्ठ २२)

शक १५३९ के लगभगके एक पत्नमें इब्राहीमके नामके साथ जगद्गुरूकी उपाधि लगाई गई है। उसमें राजाका शासनकाल दिया गया है जो असत्य है।

### दक्खिनी हिंदीमें

दक्खिनीके कई लेखकोंने इब्राहीमके नामके साथ जगद्गुरूकी उपाधि लगाई है। शायद अब्दुलका इस प्रस्तुत काव्यमें किया हुआ उल्लेख इस भाषामें सर्वप्रथम है। अब्दुलने इस काव्यमें बैत ७१, ८०, ९१, ९८ और ५२३ में जगद्गुरु वा जगद्गुरूकी उपाधि प्रयुक्त की है। अंतिम उल्लेख इस प्रकार है—

**दखिन देस में शह जगत्गुरु है नावुं**
**बिध्यापुर नगर उस रहन है जो ठावूं। ५२३**

मुल्ला नुस्रतीने इस उपाधिका बार बार उल्लेख गुल्शने-इश्क़ काव्यमें (शक १५८०—हि. १०६८) किया है। वह कहता है—

**तेरे जद कों आलम जगत गुरु कहे**
**पिदर सें सो तेरे बहादुर कहे। ७.७**

और अंतिम अध्यायमें—

**जगत गुर बिराहीम शाहे-जमन**
**गया था जो कर बाग मुल्के-दखन।** ४३.३

इसी प्रकारके उल्लेख ८.३४ और ४३.१७ में पाए जाते हैं। नुस्रतीने अलीनामामें जगद्गुरु वा उसका अनुवाद शब्द प्रयुक्त किया है। बादशाहने एक सुवर्णमुद्रा मुहर-होन जारी की थी जिसपर फार्सी लिपीमें जगद्गुरु दादे-इलाही और नौरसनामक नानकपर आदिलशाहीके शब्द लिखे हुए थे। असद बेगने अपनी वार्तामें इसका उल्लेख किया है। (देखिए—टिप्पणियाँ जगद्गुरु बैत ७१)

**इब्राहीमका सांस्कृतिक व्यक्तिमत्त्व**

एक इस्लाम धर्मानुयायी होनेके बावजूद, इब्राहीम आदिलशाहका सांस्कृतिक और धार्मिक दृष्टिसे व्यक्तिमत्त्व देखने योग्य है। जो कोई उसके व्यक्तिमत्त्वको गहराईसे देखनेकी चेष्टा करेगा, उसको वह अधिकाधिक आकर्षक और विलोभनीय प्रतीत होता है। इस दृष्टिसे इब्राहीमके चरित्र साधनोंसे निम्नलिखित बातें सामने आ जाती हैं। सांस्कृतिक दृष्टिसे 'वक़ाए असदबेग' एक महत्त्वपूर्ण ग्रंथ है। मूल ग्रंथ हमको देखने नहीं मिला। लेकिन डॉ. पी. एम्. जोशीने उसका जो सारांश पोतदार स्मारक ग्रंथमें पेश किया है उसका यहाँपर उपयोग किया जाता है। इब्राहीम आदिलशाहने जो वस्तुएं अकबरको भेंटमें भेजी थीं, उनमें से कुछ वस्तुओंका श्री जोशीने उल्लेख किया है। उनमें यह विशेषता है कि हर प्रकारकी वस्तु नौकी संख्यामें दी गई थी। उसमें एक नौरस होन था। उसकी संख्या एकही थी। परंतु यह इसलिए था, लगता है, कि उस होनका मूल्य नौ होनोंके समान था। (२) नौ साधारण होन थे। (३) नौ-इब्राहीमीका एक सिक्का था। शायद उसका कारण भी उपरोक्तही हो। (४) नौ खण, जिसकी चोलियाँ बनाते हैं, इस भेटमें समाविष्ट थे। (५) नौ नारियल थे। (६) नौ लारी थे। इब्राहीमके जीवनमें नौ शब्दका विशेष महत्त्व है। इन भेंट दिई हुई वस्तुओंसे भी यह प्रचीति हो जाती है। खण, नारिएल आदि हिंदु धार्मिक संस्कारोंके प्रतीक नहीं हैं, ऐसा कहना तो जरा कठिन है। जो नौरस सिक्का भेजा गया था, उसपर फार्सी लिपिमें लिखा हुआ था। "नौ-रस मुहर आदिलशाही, जगद् गुरू दाद इलाही" जगतगुरुकी उपाधि ही स्वयं इब्राहीमके धार्मिक और सांस्कृतिक दृष्टिकोनका वाहक प्रतीत होती है। दाद इलाहीका अर्थ केवल सीधा साधा है ईश्वरदत्त। स्वयं बादशाहको इसमें और क्या अभिप्रेत था, ज्ञात नहीं।

इस ग्रंथमें दिई गई शश्त-मुरीदीकी घटनाभी लक्षणीय है। शायद इस प्रकारकी कोई वस्तु गुरूदक्षिणाके रूपमें देना सूफ़ी साधूओंमें भी हो या न हो, लेकिन, आर्य हिंदुओंमें अवश्य ही प्रयुक्त होती है। जब इब्राहीमने उस शश्तमुरीदीको असद बेग की पगडीसे लटकती हुई देखा तो उसकी पूछताछ करके तुरन्तही उसको निकाल अपने पास ले लिया। वह बेगसे आग्रहपूर्वक माँगता रहा कि वह उसको प्राप्त हो। उसने बेगको गुरुभाई कहना आरंभ किया और उसके चले जानेतक उसको उसी शब्दसे याद करता रहा। एक दो रोज शश्तमुरीदी न मिलनेसे, बेगको वहीं रहना पडा। अन्तमें इब्राहीमने अपने लिए एक शश्तमुरीदी भिजवा देनेकी याचना की। इस घटनासे मालूम होता है कि वह उस वस्तुको श्रद्धापूर्वक माँग रहा था। इब्राहीमके उत्तराधिकारी मुहम्मद आदिलशाह वा औरंगजेबके हाथों वा

ज़बानी यह सब घटनाएँ केवल विसंगत लगींगीं। इनसे इब्राहीमका कुछ अलगसा व्यक्तिमत्त्व सामने आ जाता है। असद बेगको इब्राहीमन कई बार गुरुभाईके नातेसे याद किया है। उससे अकबरके दीन-इलाही और अकबरके आध्यात्मिक व्यक्तिमत्त्वके बारेमें उसका सहानुभूतिपूर्ण दृष्टिकोन सामने आ जाता है।

इब्राहीम आदिलशाह धर्मसे मुस्लिम था ही। उसके गुलबर्गाके ख़्वाजा बंदे नवाज़ गेसू दराज़ (सय्यद मुहम्मद हुसेनी) का नाम बडे आदरभाव और श्रद्धासे बार बार अपने गीतोंमें उच्चारित किया है। परंतु उसने मुहम्मद पैगंबर वा अल्लाका नाम कभी विशेष आस्थासे नहीं लिया। इसके विरुद्ध गणपति, सरस्वती, महादेव इत्यादी हिंदु देवताओंको वह भावपूर्ण श्रद्धासे याद करता है। इससे इब्राहीमकी धार्मिक निष्ठाओंकी ओर निश्चित रूपसे संकेत होता है।

इब्राहीमका एकपत्नीत्वके संबंधमें भी एक अनोखा और अमुस्लिम दृष्टिकोन है। मुसलमानोंमें चार पत्नी धर्मसम्मत हैं। परंतु उसने स्त्रैणताकी निंदा और एकपत्नीत्वकी स्तुती की है, वह कहता है—

**झूटी पीरत कुलच्छन या ही है फिरे घडी घडी घर घर गगन**
**इब्राहीम वू सुखधाम द्वारपंथ सीस धर मन एक ठौर ज्यूं**
**ध्रमण्डल उड़गन ।**

(गीत ४)

इससे उसकी एकपत्नीनिष्ठा दिखाई देती है जो अमुस्लिम है।

इब्राहीमका भाषिक दृष्टिकोन, कमसे कम हिंदीके संबंधमें, उसके उपरोक्त नवरस गीतोंके उद्धरणोंसे पाठकोंके सामने आ चुका है। वक़ाए असद बेगसे मालूम होता है कि इब्राहीम फ़ार्सी भाषासे परिचित था। लेकिन वह सुचारु रीतिसे उसमें बातचीत नहीं करता था। उसकी यह भाषा टूटीफूटी दिखाई पडती थी। असद बेगने यहभी लिखा है कि एक समय उसने अन्तू पंडितसे मराठी भाषामें एक प्रश्न पूछा और अन्तू पंडितने मराठीमें ही उसका उत्तर दिया। इससे निश्चित होता है कि वह मराठी भाषा अच्छी तरहसे जानता था। उसके नवरसके गीतोंसे मालूम होता है कि उसको संस्कृत भाषान्तर्गत समासोंकी अच्छी जानकारी थी। इन सब बातोंसे उसका भाषिक व्यक्तिमत्त्व सामने आ जाता है। यह उसके सांस्कृतिक मनोभूमिका महत्त्वपूर्ण अंग जरूर है।

इब्राहीम नवरस नामपर बडा लुब्ध था। उसने अपनी कई प्रिय वस्तुओंका नामकरण नवरस शब्दसे संबंधित किया था। यह नवरस वही भारतीय साहित्यशास्त्रके प्रसिद्ध रस हैं। नवरस शब्दका फार्सी वा अरबी साहित्य संकेतोंसे कोई संबंध नहीं है। यह नवरस कल्पना उसके सांस्कृतिक व्यक्तिमत्त्वकी संकेतदर्शी है। इसी प्रकार उसकी जगद्गुरूकी उपाधि। इस उपाधिको वह अत्यादर और अभिमानके साथ धारण करता देखा जाता है। यह उपाधि उसके सिक्केपर टंकलिखितभी हुई है। मुस्लिमेतर अन्य जनतामें यह उपाधि उसके नामके साथ प्रयुक्त होती थी। उपरोक्त मराठी पत्रोंके उद्धरणोंसे यह स्पष्ट हो जाता है कि लोकभी उसको जगद्गुरू कहते थे। पैठण दक्षिणमें कमसे कम महाराष्ट्रमें

हिंदु संस्कृति, धर्म और विद्याका केन्द्र माना जाता था। उस नगरकी यह प्राचीन परम्परा इस मुसलमानी कालमें भी क़ायम थी। उसमें विशेष बात यह कि इब्राहीम आदिलशाह क़ानूनके विशेष जटिल प्रश्न और विवाद पैठणके पंडितोंके पास भेजा करता था और यह प्रश्न हिंदू और मुसलमानोंके परस्पर अधिकारके प्रश्न होते थे। इस सत्यको हम इब्राहीमका सांस्कृतिक व्यक्तिमत्त्व निश्चित करनेमें ध्यानमें रख सकते हैं। जैसा कि हमने ऊपर कहा है इन बातोंसे इब्राहीमका व्यक्तिमत्त्व, परधर्मके संबंधमें सहिष्णु, हिंदुओंकी देवदेवताओंके लिए सद्भावपूर्ण, हिंदी मराठी भाषाओंके लिए मित्रभावपूर्ण और हिंदुओंके धर्मपीठोंके संबंधमें आदरपूर्ण, दिखाई देता है। इब्राहीमका यह चित्र पश्चात्क मुस्लिम नरेशों और उनके अधिकारियोंसे बिल्कुल अलगसा लगता है।

### इब्राहीमपर धर्मत्यागका आरोप

बसातीनुस्सलातीन ग्रंथके कर्ताने इब्राहीमपर उसके इस्लामधर्म छोड देनेकी किंवदन्तीकी चर्चा प्रस्तुत की है। यह इस प्रकार है "सम्भावित और बडोंसे सुना है कि इब्राहीम आदिलशाह बडा विद्वान् था। मुसलमानोंके धर्माचार और मुसलमानोंके मार्गमें सुन्नी धर्मपंथके निष्ठाओंपर बादशाहने मज़बूत क़दम रखा था। लेकिन इब्राहीम आदिलशाहको गायनकलामें बडी रुचि थी। सुस्वर गायनपर वह बहुतही लुब्ध था। इसलिए वह हिंदु लोगोंके सहवासमें रह कर गवय्योंसे मित्रता बनाए रखे हुए था। क्योंकि हिंदुओंकी निष्ठा होती है कि सरस्वतीकी पूजा और सेवा करें। हिंदुओंमें सेवा करनेके लिए अनेक देवताओंमें से सरस्वतीभी एक देवता है। उनकी निष्ठा होती है कि यह देवता सुस्वर गायन और उत्तम आवाज़ प्रदान करती है। उसकी सेवासे गायनकला वृद्धिगत होती है। इसलिए हिंदु जातिके गवय्ये और अन्य लोक जब गायनविद्या सीखते हैं तो सरस्वतीकी पूजा और उसकी सेवा करते हैं। इब्राहीम आदिलशाह गायनसे बहुत प्रेम करता था, वह गायनपर लुब्ध था। इसलिए हिंदुओंकी रीतिरिवाजोंके अनुसार इब्राहीमभी सरस्वतीकी पूजा करने लगा। लोगोंमें अफवाएँ उड़ गईं कि अकबरके समान इब्राहीम आदिलशाहने भी इस्लाम धर्मके सीधे मार्गको छोड दिया है। वस्तुस्थिती यह थी कि वह एक ईश्वरपर निष्ठा रखता था, उसकी श्रद्धा पवित्र थी और वह बरबादी और फ़िसादके मार्गसे मुक्त था। अंतिमका वाक्य इस प्रकार है—"दर अवाम अफ़वाह उफ़्ताद कि इब्राहीम हमचू अकबर इन्हराफ अज़-राहे मुस्तक़ीमे-दीने इस्लाम नमूद। हाल आँ कि ऊ मौहिद, पाक-इअ़तिक़ाद व मुबर्रा अज़ाँ तर्के ख़लल व फ़साद बूद।"

## २. मस्नवीका इतिहास

### फार्सी मस्नवीकी पार्श्वभूमि

दक्खिनी हिन्दी और उसकी परिवर्ती उर्दू भाषामें मस्नवी नामी काव्यप्रकारको अतीव महत्त्व प्राप्त है। दक्खिनी हिन्दीका विकास सर्वथैव मुसलमान कविसाहित्यिकोंके हाथों सम्पन्न हुआ है। दक्खिनी हिन्दी अरबी-फार्सी लिपिमें लिखी गई। भारतीय भाषिक और सांस्कृतिक महान् स्रोतमें फार्सी निर्झरोंका सम्मीलित होनाभी दक्खिनीमें पाया जाता है। फार्सी और, फ़ार्सीके माध्यमसे कुल कुछ अरबी शब्दोंके प्रयोगके साथ साथ कुछ फार्सी साहित्य परम्पराओंका पदार्पणभी दक्खिनीमें हुआ है। जहाँतक बाह्यरूपका सम्बध रहा है फ़ार्सी के बाह्यरूप का प्रभाव दक्खिनीमें पर्याप्त सर्वांगव्यापी दिखाई देता है।

ग़ज़ल, क़सीदा, मर्सिया, रुबाओ़ी, मस्नवी आदि दक्खिनीमें फार्सीकी परम्परामें ढली हुई हैं। फार्सीही ऐसी भाषा थी जिसमें से भारतीय मुसलमान कविसाहित्यिकोंने प्रेरणा प्राप्त की है। दक्खिनी हिन्दी और उर्दू में मस्नवी काव्यप्रकार फार्सी भाषासे ही लिया गया है।

मस्नवी और ग़ज़ल यह दोनों काव्यप्रकार केवल ईरानी बुद्धि और साहित्यिक परम्पराकी उपज हैं। अरबी भाषामें दोनों प्रकार अप्राप्य हैं। अगर आधुनिक अ़रबी साहित्यमें ग़ज़ल पाई जाती है तो वह ईरानियोंके अनुसरणसे उस साहित्यमें प्रविष्ट है। अरबीमें मस्नवी काव्य प्रकारका सर्वस्वतया केवल अभाव है और फार्सी भाषामें सेकड़ों कवियोंकी मस्नवियाँ, हर कालमें लिखी गई, उपलब्ध हैं।

भारतीय भाषिक परम्पराके अनुसार मस्नवी केवल आख्यानक काव्य है। आख्यानविषय प्रेम, युद्ध, चरित्र आदि सम्बन्धी कोईभी हो सकता है। युद्धविषयक आख्यानको रज़्मिय्या मस्नवी कहा जाता है। मस्नवीका वृत्त कोईभी प्रयुक्त किया जा सकता है, लेकिन, 'फ़ऊलुन् फ़ऊलुन् फ़ऊलुन् फ़ऊल्' यह वृत्त, जो भारतीय भुजंगीवृत्त है, आ़म तौरसे प्रयुक्त होता आया है। फ़िर्दौसीके शाहनामा और दक्खिनी हिन्दीके नुस्रती विरचित अलीनामा इन दो प्रसिद्धतम वीररसप्रधान मस्नवियोंका यही भुजंगी वृत्त है। अन्यवृत्तप्रयुक्त मस्नवियाँ भी अनेक हैं।

### ईरान–अरब सम्पर्क

अरब और ईरानका सम्बन्ध बहुत प्राचीन है। इ. स. पूर्व ६०० से ईरानमें हख़ामनशी राजवंशका साम्राज्य स्थापन हुआ। हख़ामनशी राजवंश आर्य था, उनकी भाषा वर्तमान फार्सीका पूर्वरूप थी। इस वंशका उत्तर अरबस्थानपर राज्य जारी था। हख़ामनशियोंके बादके ईरानी साम्राज्योंमें भी अरबस्थानका कुछ न कुछ भाग अवश्य सम्मीलित रहा है। ईरानके अन्तिम आर्यवंशीय ज़रतुष्ट्रधर्मी सासानी राजवंशने साधारणतया चार सौ वर्षोंतक साम्राज्य चलाया।

मुहम्मद पैगम्बरने अपने इस्लाम धर्मका प्रसार प्रचार शककी छटी शतीके मध्यमें शुरू किया था। उसकी मृत्यू शक ५५४ में हुई। पहले चार ख़लीफ़ाओंका राज्य मदीना नगरसे चलता था। चौथा ख़लीफ़ा अ़ली शक ५८३ में तलवारका शिकार हुआ और राज्य मुहम्मदके शत्रुओंके हाथमें चला गया। पहिले चार ख़लीफ़ाओंके राज्यका वर्णन धार्मिक राज्यसत्ताके नामसे किया जाता है। नए उमय्य राजाने राजधानी मदीनासे दमश्कको हटाई। उमय्य राजवंशका राज्यकाल शक ५८३ से ६७२ तक, ८८ वर्षोंका रहा। इस राज्यमें ईरानका इस्लामीकरण पूरा हो गया। इस राज्यकालको विद्वान् अरब साम्राज्यवादके नामसे याद करते हैं। सर्वत्र अरबोंका बोलबाला था, ईरानी लोक पददलित थे। दरबारमें उनका कोई आदर नहीं था। इसलिए ईरानी मुसलमानोंने मुहम्मदके दामाद और चौथे ख़लीफ़ा अ़लीके वंशजोंको ख़लीफ़ाका पद और राज्यसत्ता प्राप्त करनेका प्रयत्न करनेवाले शिया पंथका स्वीकार किया। इन ईरानी शियाओंने ईरानमें अशांति और विप्लव पैदा कर रखीं। अन्तमें उमय्य राजवंश शक ६७१ में नष्ट किया गया और नया अ़रब ख़लीफ़ाओंका अ़ब्बासी राजवंश राज्यका स्वामी बना। राजधानी सीरियास्थित दमश्कसे ईराक़के बगदाद नगरमें लाई गई। अ़ब्बासी

दरबारमें अरबोंका वर्चस्व कम हो गया। इनके स्थान ईरानी मुसलमानोंने ग्रहण कर लिए। अब्बासी ख़लीफ़ाओंकी यह सर्वमान्य नीति थी कि राज्यके सूत्र ईरानी नेताओंके—विशेष कर दूरस्थ खुरासानियोंके हाथोंमें रखे जाते थे। अब्बासी वंशके कुल ३७ ख़लीफ़ा रहे। उनकी सत्ता शक ११८० में तातार आक्रमकोंके सेनानी चंगीज़ख़ानके वंशज हुलागूके हाथों नष्ट हो गई। अब्बासी ख़लीफ़ाओंका राज्यकाल ईरानी वर्चस्वका काल समझा जाता है। इस कालके भी दो विभाग बनते हैं। अब्बासियोंके राज्यकालकी प्रथम शती मध्यवर्ती सत्ताकी थी। किन्तु शक ७७२ में ईरानमें तीन-चार अलग अलग राज्य स्थापन हो गए। ख़लीफ़ाकी सत्ता नामधारी बनी रही। खुद बगदादही में ख़लीफ़ाके शिरपर बुवय खानदानकी सत्ता शक ८५४ में स्थापन हुई। एक बुवयको अमीरूल उमराकी उपाधि प्राप्त हुई। इस सालसे ख़लीफ़ाकी गद्दी नाममात्र और केवल नामधारी रही। पूरी सत्ता बुवय, ज़ियार, सामानी और हसनवया इन चार राजवंशोंमें बटी हुई थी जो केवल ईरानी वंशके सत्ताधारी थे। बगदादही में ख़लीफ़ा नाममात्र थे। बगदादके ख़लीफ़ाओंकी वही स्थिती थी जो कि दक्षिण भारतमें महामंत्री महमूद गावानकी हत्याके बाद (शक १४०४) बहमनी नरेशोंकी बीदर राजधानीमें और मुग़ल सम्राट औरंगजेबकी मत्यु (शक १६२९) के बाद दिल्लीमें नामधारी मुग़ल सम्राटोंकी थी।

उमय्या ख़लीफ़ाओंके राज्यकालमें अरबोंका वर्चस्व था। इस कालमें अरबीमें कुछ साहित्य निर्माण हुआ, लेकिन राज्यकी सीमाएँ बढ़ाने और राज्ययंत्र चलानेपर ही अरबोंका अधिकतर ध्यान केन्द्रित था। इस कालमें फार्सी भाषामें क्वचितही होई साहित्य निर्माण हुआ हो। परन्तु अब्बासी ख़लीफ़ाओंके कालमें यह परिस्थिति संपूर्णतया बदल गई। बगदादके इन ख़लीफ़ाओंकी राजधानीमें ईरानी वर्चस्व सर्वंकष बनता गया। इस ईरानी प्रभुत्वसे इस नए वायुमण्डलमें संस्कृति, सहिष्णुता और शास्त्रीय अनुसन्धानका एक नया मैदान खुल गया। पुरानी मौखिक परम्पराको बदल कर उसके स्थानपर साहित्य निर्माणकी नई परम्परा अधिक ज़ोरोंसे कार्यान्वित होने लगी। इस प्रवृत्तिको पौर्वात्य विद्वत्तासे और बढ़ावा मिला। इन प्रवृत्तियोंके संवर्धनमें बरमक नामी ख़लीफ़ाके महामंत्रीका काफ़ी प्रभाव रहा है। यह बरमक अफगानिस्तानके बल्ख़ (बॅक्ट्रिया) में स्थापित नौबिहार (नव विहार) नामी बौद्ध विहारका प्रमुख उपाध्याय था। बरमक शब्द संस्कृत शब्द प्रमुखसे बना हुआ है। बरमक और उसके पुत्रपौत्रोंने ५०–६० वर्षोंतक ख़लीफ़ाओंका महामंत्रिपद (वज़ीर) विभूषित किया। इसी कालमें ईरानी वर्चस्व, ईरानी संस्कृति, फार्सी भाषा और संस्कृत ग्रंथोंके फार्सी अनुवादका प्रवर्तन किया गया। बरमकने तुरन्तही इस्लाम धर्मका स्वीकार किया था। इतिहासको ज्ञात है कि इसी बरमकके कहनेपर खुस्रौ अनुशीरवानका प्रासाद जमीनदोस्त होनेसे बच गया था। इसी कालमें ईरानियोंका प्राचीन नौरोज़ का त्यौहार–वसन्तोत्सव हर साल चैत्र मासमें मनाया जाने लगा। यह बात सब विद्वानोंकी मानी हुई है कि ईरानी लोक हर दृष्टिसे अरबोंसे अधिक सुसंस्कृत थे। इसी कालमें ईरानी भूमिमें अरबोंने कई नई नई बातें सीख लीं। गोया अरब जेताओंको जित ईरानियोंने सुसंस्कृत बना दिया। ईरानियोंने यही अनुभव बादमें आए हुए तुर्क और तातार आक्रमकोंके बारेमें भी प्रतीत करा दिया। मौलाना शिबली नुअमानीने अपने शिअ़रुल्अ़जम अथवा ईरानी काव्य नामी ग्रंथमें कहा है कि सासानी राजवंश और पश्चात् बगदादके ख़लीफ़ाओंकी राज्यव्यवस्था

परम्परा, शिष्टाचार, रीतिरिवाज और सांस्कृतिक विशेषताएँ अन्य तमाम मुस्लिम दरबारोंमें रूढ़ हो गईं। गोया सब अरब और अन्य मुस्लिम देश सांस्कृतिक क्षेत्रमें ईरानी परम्परा के पथानुयायी हैं। प्राध्यापक डॉ. मुहम्मद इक़बालने "सासानी राज्यकालमें ईरान" नामी ख्रिस्टन सेनविरचित फ्रेंच ग्रंथके उर्दू अनुवादमें (शक १८६३) लिखा है कि, "और बावजूद इसके कि नस्ल (वंश) और ज़बान और मज़हब (धर्म) का तफ़ावत (भेद) दर्मियानमें था सासानी तमद्दुन (संस्कृति) ने अरबोंपर गहरा असर (प्रभाव) डाला। ख़लीफ़ा हज़रत उमरही के ज़मानेसे हुकूमतके महकमे (विभाग) ईरानी नमूनेपर ढलने शुरू हो गए और अब्बासियोंने तो सिरसे पाँवतक सासानी शिआर, (रीति, ढंग) को इख्तियार (स्वीकृत) किया। वही आईने-दरबार (आस्थानीके नियम), वही अहदे (अधिकार, पद), वही तर्जे-हुकूमत (राज्यप्रकार), वही रस्मो-रिवाज, वही रिवायात (परम्पराएँ), हता (किंबहुना) कि हम यह कहनेमें हक़ ब-जानिब (सत्यमार्गस्थित) हैं कि सासानी ख़ानदान दो बारा ज़िंदा हो कर अब्बासी ख़ानदान कहलाया। चूंकि दरबारे-ख़िलाफ़त (ख़लीफ़ाका दरबार) दूसरे मुसलमान बादशाहोंके लिए हर लिहाज़ (दृष्टी) से एक क़ाबिले-तक़लीद (अनुकरणयोग्य) नमूना था इसलिए वही रिवायात बगदादसे निकल कर तमाम आलमे-इस्लाम (मुसलमानी जगत्) में सरायत (प्रभावित) कर गई। यह कहना ग़लत नहीं कि "अकबर और शाहजहानका दरबार अनुशीरवान् और खुस्रौ पर्वीज़का दरबार था"।

### फार्सी मस्नवीका प्रारम्भ

अब्बासी ख़लीफ़ाओंके राज्यकालकी पहली शतीमें फार्सी भाषामें साहित्यनिर्माणका आरम्भ हो चुका था। ख़ुरासानमें सामानी राजवंशकी स्थापना शक ७९६ में हुई और यह ख़ानदान सव्वा सौ वर्षोंतक राज्य चलाता रहा। इस वंशका उच्छेद शक ९२१ में होना पाया जाता है। इसी सामानी राजवंशके दरबार में रौदकी वा रूदकी नामी कवि था, उसका देहान्त शक ८६२ में होना अब अनुसन्धानकोंने निश्चित किया है। रूदकी फार्सी काव्यका जन्मदाता माना जाता है। उसके काव्यमें प्रसाद और ओज पाया जाता है। उसने ग़ज़लेंभी लिखी हैं। भारतीयोंके लिए रूदकीका आकर्षण विशेष कर इस लिए अधिक है कि इसी कविने सर्वप्रथम फार्सी भाषामें संस्कृत पंचतंत्रके इब्न मुक़फ़्फ़ाकृत अरबी अनुवादका फार्सी अनुवाद कलीला व दमनाके नामसे फार्सीभाषियोंके लिए सादर किया। सासानी राजवंशके सुप्रसिद्ध सम्राट् ख़ुस्रौ अनुशीरवान्के राजवैद्य बुर्ज़ोय वा बुज़ुर्ज़मिहरने भारतकी यात्रा की और अपने साथ पंचतंत्रका ग्रंथ और बुद्धिबलका खेल वह ईरान ले गया। उसने पंचतंत्रका अनुवाद शक ४९२ के लगभग पहलवी (फार्सीकी पूर्ववर्ती भाषा) में किया था। इसी पहलवी अनुवादसे इब्न मुक़फ़्फ़ा नामी ईरानी महापंडितने उसका अरबी भाषामें अनुवाद शक ६७२ में किया था। रूदकी का पूरा नाम अबू अब्दिल्ला जाफ़र बिन मुहम्मद था। सामानी महामंत्री अबूलफ़ज़्ल बलअमी कहा करता था कि अरबों वा ईरानियोंमें रूदकीके समान कोई कवि नहीं है।

विशेष बात यह है कि रूदकीही फार्सी भाषाकी पहली मस्नवी-कथाख्यानक काव्यका लेखक है और वह मस्नवी कलीला व दमना है जो पंचतंत्रका अनुवाद है। अब यह मस्नवी उपलब्ध नहीं है, लेकिन जर्मन महापंडित इथेने रूदकीकी सब कविताओं और श्लोकोंका संग्रह किया है। उसके कुल २४२ श्लोक वा कविताएँ उपलब्ध हैं।

फार्सीकी दूसरी मस्नवीका लेखक अबू मन्सूर मुहम्मद बिन अहमद दक़ीक़ी है। यह ईरानी वंशका कवि नैशापूरके समीपवर्ती तूसका निवासी था। इसके नामसे वह अरबवंशीय मालूम होता है। लेकिन यह वास्तवता नहीं है। वह केवल पार्सी था। इतनाही नहीं, जर्मन पंडित इथे, नोल्डेके, पॉल हार्न आदियोंने उसको ज़रतुष्ट्र धर्मानुयायी बतलाया है। इसका कारण यह है कि दक़ीक़ीने ज़रतुष्ट्रके चिरसहवासकी अपनी आकांक्षा ज़ाहीर की है। फार्सी साहित्यमें दक़ीक़ीको अमर बनानेका सब श्रेय फार्सी साहित्यके महामुनि व्यास मान गए शाहनामाके लेखक फ़िर्दौसीको है। फ़िर्दौसीने अपने महाकाव्य शाहनामामें दक़ीक़ीका आदरपूर्वक उल्लेख कर यह बतलाया है कि दक़ीक़ीने शाहनामा ग्रंथके १००० बैत, जोड वा द्विपंक्तियाँ लिखी थीं ; जिनको उसने अपने काव्यमें समाविष्ट कर लिया है। दक़ीक़ीने ईरानके प्राचीन इतिहासपर महाकाव्य लिखना आरम्भ किया था और उसके १००० जोड पूर्ण किए थे कि उसके तुर्की ग़ुलामने उसका वध किया। इसी अधोरे कार्यको फ़िर्दौसीने परिपूर्ण किया। दक़ीक़ीके लिखे हुए क़सीदोंके कई टुकडे विद्वानोंको प्राप्त हुए हैं। विद्वानोंकी खोजके कारण अब यह बात निश्चित है कि दक़ीक़ी शक ८९८ और शक ९१९ में जीवित था।

फ़िर्दौसी महाकाव्यकार अर्थात् मस्नवी लेखक भी है। उसका जन्मस्थानभी तूस ही है जहाँ पर दक़ीक़ी, उमर ख़य्याम जैसे कवि और गणितज्ञ पैदा हुए थे। फ़िर्दौसीने शाहनामाकी अद्वितीय देन दुनियाको प्रदान की है जो इतिहास और संस्कृतिकी एक मूल्यवान् और विशाल खदान है। इसके सिवा उसने यूसुफ़ ज़ुलैख़ा नामी एक आख्यानक काव्य-मस्नवी लिखी है। फ़िर्दौसी नैशापूरके समीप तूसमें शक ८५० में पैदा हुआ था। उसने अपना महाकाव्य शाहनामा शक ९३२ में पूरा किया था। यह वर्ष उसने अपने महाकाव्यमें दिया है। इस महाकाव्यकी पूर्तिके दो वर्ष पश्चात् उसने यूसुफ़ ज़ुलैख़ा मस्नवी लिखी (शक ९३४)। फ़िर्दौसीके सम्बन्धमें पर्याप्त खोजकार्य हुआ है। उसमें जर्मन, फ्रेंच, रशियन और अंग्रेज विद्वानोंका सहयोग रहा है। फ़िर्दौसीकी अनेक विशेषताओंमें यह बात उल्लेखनीय है कि वह ईरानी इतिहास और ईरानी संस्कृतिका बड़ा भारी अभिमानी था। अपने ग्रंथमें उसने प्राचीन ईरानी परम्पराका एक महान् भाण्डार खोल रखा है। उसने फार्सी भाषाको भी परिपूत किया है। उसने अपने महाकाव्योंमें जहाँतक हो सके अरबी शब्दोंको टाल दिया है। पुराने पहलवी शब्दोंको उसने पुनरुज्जीवित कर उनमें नई जान फूंक दी है। पाश्चात्य विद्वानोंको उसकी इस विशेषताने ख़ास कर आकर्षित किया है। फ़िर्दौसीका गज़नाके गुलाम बादशाह महमूदके दरबारमें रहना सर्वप्रसिद्ध घटना है। महमूदके दरबारमें पहुँचनेके पूर्वही उसने शाहनामालेखनका काम आरम्भ कर दिया था। वह काम उसने तीस वर्षोंमें पूरा किया। उसके साठ हज़ार बैत–द्विपंक्तियाँ हैं। महमूदके हाथों फ़िर्दोसीको अपेक्षित धनप्राप्ति नहीं हुई। वह दरबारसे नाराज़ होकर चल बसा। महमूद स्वभावसे अत्यंत धनलोभी और कंजूश था। फ़िर्दौसीने महमूदकी कड़ी निंदा की है। उसके यह निंदाके बैत फार्सी साहित्यमें बहुतही प्रसिद्ध और सबोंके होंटोंपर होते हैं।

मस्नवीके इतिहासमें फ़िर्दौसीके बाद नासिरे ख़ुस्रौको याद किया जाता है। उसकी मस्नवी रोशनाई नामा शक ९७० (हिजरी ४४०) में लिखी गई है। उसके और भी दो तीन ग्रंथ उपलब्ध हैं। एक तो उसका दीवाने ग़ज़ल और क़सीदा आदिका काव्यसंग्रह है।

उसका प्रवासवर्णन सफरनामा सादा और आकर्षक शैलीमें लिखा गया है। अपने ग्रन्थ ज़ादुल्मुसाफ़रीन (यात्रिकोंका पाथेय) में उसने अपने धार्मिक सिद्धांतोंका विवरण प्रस्तुत किया। रोशनाई नामा मस्नवीमें केवल ५७९ बैत हैं। उसकी और एक छोटीशी मस्नवी सआदत नामा व्यावहारिक नीतिपर लिखी गई है जिसके २८७ बैत हैं। केवल दुनियाई व्यवहारोंका वर्णन करनेवाले कवियोंकी उसने निंदा की है और कहा है कि वह रूपयोंके लिए काव्यनिर्माण करते है।

सनाई एक मस्नवी लेखकके नातेसे फार्सी साहित्यमें विशेषतया याद किया जाता है। उसकी मस्नवी हदीक़तुल्हक़ीक़त (सत्यका उद्यान) ग्यारह हज़ार बैतोंका बृहत्काव्य है जो नीतितत्त्वों और तत्त्वज्ञानपर लिखा गया है। नीतिपरक यह सबसे पहली मस्नवी है। सनाईने यह मस्नवी शक १०५३ में पूरी की थी। लेकिन मालूम होता है कि वह शक १०७२ तक जीवित था। उसने कुल सात मस्नवियाँ लिखनेका पता चलता है। परन्तु केवल हदीक़ा ही उपलब्ध और प्रकाशित है। सनाईके अतिरिक्त शेख फ़रीदूद्दीन अत्तार भी तत्त्वप्रधान मस्नवी लेखकोंमें अग्रगण्य है। इस प्रकारकी मस्नवीका जलालूद्दीन रूमी कविशिरोमणि है। रूमीने इस क्षेत्रमें अत्तार को आत्मा और सनाईको इस कलाकी दो आँखे बतलाई हैं। इस आख्यानके अलावा सनाईका दीवानभी प्राप्त और प्रकाशित है।

हदीक़तुल्हक़ीक़तकी विशेषता यह है कि फार्सी मस्नवीकी पश्चात्कालीन देवतावन्दनकी विशेषता यहाँपर मिलती है। सनाईने प्रथमतः ईशस्तुति, और द्वितीयतः पैंगम्बर मुहम्मदकी स्तुति प्रस्तुत की हैं। उसके बाद बुद्धि, ज्ञान, निश्चिन्तता, स्वर्ग और नक्षत्र, तत्त्वज्ञान, प्रेम, स्वयं कविकी अवस्था और परिस्थिति और अंतमें गज़नाके नरेश बहरामशाहकी प्रशस्ति प्रस्तुत की है। यही फार्सी मस्नवीकी विशेषता फार्सीके तदुत्तरकालीन कवियोंमें नियमतः मिलती है। इस प्रथाको ई. जी. ब्राउनने अपने चतुःखण्डीय फार्सी साहित्येतिहासमें डॉक्सॉलोजी (Doxology) के नामसे याद किया है। यह प्रथा प्रथम सनाईही में पाई जाती है। फार्सीकी इस प्रथाका अनुकरण दक्खिनी हिन्दी और उसके उत्तरकालीन रूप उर्दूमें भी किया गया है। इस लिहाज़से सनाईको महत्त्व प्राप्त है।

ख़ाक़ानीकी मस्नवी तुहफ़तुल इराकैन (दो इराकों-कूफा और बसरा नगरों-की देन) शक ११०७ (हिजरी ५८२) में लिखी गई। फार्सी भाषाके प्रसिद्ध साहित्यिक और कवि साधारणतया पूर्व ईरानके, विशेष कर ख़ुरासानके निवासी थे। कई ताश्कंद, समरकंद आदि तुर्कस्थानी शहरोंके रहनेवाले थे। लेकिन ख़ाक़ानी वायव्य ईरानके प्रसिद्ध नगर गंजाका रहनेवाला था। यह गंजा (गंजह) अब रशियन आज़रबैजानमें समाविष्ट है और उसका आधुनिक नाम एलिझाबेथपूल वा एलिझाबतपोल है। प्रसिद्ध मस्नवी लेखक और महाकाव्यलेखक निज़ामी गंजवी भी इसी शहरका रहनेवाला था। ख़ाक़ानी शक १०२८ में पैदा हुआ था। ख़ाक़ानीका एक क़सीदा ईरानके प्रसिद्ध नगर इस्पहानपर लिखा हुआ है। ख़ाक़ानीने अपनी इस मस्नवी तुहफ़तुल इराक़ैनमें अपनी मक्का यात्राका और कई नगरोंका वर्णन किया है। इस काव्यके ५ सर्ग हैं। पहले सर्गमें देवतास्तुति की गई है। दूसरे सर्गमें उसने आत्मकथाकी कुछ घटनाएँ लिखी हैं। तीसरे सर्गमें ईरानके प्राचीन हमदान नगरका वर्णन है। उसीके साथ इराक़ (मेसोपोटामिया) और बगदादका वर्णन किया गया है और अंतिम पाँचवे सर्गमें मदीना क्षेत्रका वर्णन है। ख़ाक़ानीके

इस काव्य और इस्पहान सम्बन्धी क़सीदेमें कई भौगोलिक और तत्कालीन राजकीय घटनाओंका उल्लेख किया गया है। ख़ाक़ानीके काव्यसे इस बातका भी पता लगता है कि उस समयके कवि साहित्यिकोंके मनमें ख़ुरासानका बड़ा आकर्षण हुआ करता था। ख़ुरासानको पवित्र भूमि माना जाता था। ख़ाक़ानी कहता है—

**चि सबब सूए-ख़ुरासान शुदन-म न-ग्ज़ारन्द ?**
**अन्दलीब-म ब-गुलिस्तान् शुदन-म न-ग्ज़ारन्द ?**

किस कारण वह मेरा ख़ुरासानको जाना पसन्द न करेंगे? मैं तो पपीहा हूँ, तो भी मेरा पुष्पोद्यानमें जाना पसन्द न करेंगे?

दूसरे एक बैतमें ख़ाक़ानीने ख़ुरासानसम्बन्धी अपना मनोभाव इस प्रकार व्यक्त किया है। वह कहता है —

**रह रवनम, मक़्सदे-इम्कान ब-ख़ुरासान याबम,**
**तिश्नह्-म, मश्रबे-इह्सान ब-ख़ुरासान याबम**

मैं अपने मार्गसे चला जाऊँगा, इस दुनियाकी आकांक्षापूर्ति मुझे ख़ुरासानमें मिल जाएगी। मैं प्यासा हूँ, मुझे खुरासानमें उपकृतिकी खदान मिल जाएगी।

**निज़ामी गंजवी**

फार्सीके मस्नवी लेखकोंमें निज़ामुद्दीन निज़ामी गंजवीको (गंजा एलिझाबेथपूल, रशियन आज़रबैजान) वही स्थान प्राप्त है जो संस्कृत नाटककारोंमें महाकवि कालिदासको। विद्वानोंके खोजकार्यके प्रकाशमें निज़ामीका जन्म गंजामें शक १०६२ (हिजरी ५३५) में हुआ। उसने पाँच महत्त्वपूर्ण मस्नवियाँ लिखी हैं, उनको ख़मसा (पाँच) अथवा पंजगंज (पाँच भाण्डार) के नामसे याद किया जाता है। निज़ामीने इन आख्यानक काव्योंको शक ११२० (हिजरी ५९५) तक लिख पूरा किया था। उसकी मृत्यू तिरसठ सालकी आयुमें शक ११२४ (हिजरी ५९९) में बनी। उसकी पाँच मस्नवियाँ मख़्ज़नुल असूरार (गूढोंका भाण्डार, शक १०८८), ख़ुस्रौ-शीरीन (ख़ुस्रौ और शीरीनका प्रेमाख्यान, शक १०९७), लैला व मज्नून (शक १११०), इस्कंदरनामा (अलेक्झांडरका महाकाव्य, शक १११३) और हफ़्त-पैकार (सप्त शरीर, शक ११२०) प्राप्त और प्रकाशित हैं। पाश्चात्य विद्वानोंने उनका समीक्षापूर्वक अध्ययन प्रस्तुत किया है। निज़ामी गंजवीकी ग़ज़लोंका दीवानभी उपलब्ध है। निज़ामी फार्सी साहित्यका महान् कवि है। अगर वह कविके नाते महान् है तो वह अपने शील और सच्चारित्र्यके संदर्भमें महानतर व्यक्तिमत्त्वका स्वामी है।

उसकी इन पाँच मस्नवियोंमें ख़ुस्रौ-शीरीन और इस्कंदरनामा ऐतिहासिक कथानकोंपर आधारित हैं। ख़ुस्रौ पर्वीज़ ईरानके आर्यवंशीय ज़रतुष्ट्रधर्मी सासानी राजवंशका अन्तिम वैभवशाली और बलिष्ठ राजा था। इस ख़ानदानको अरब आक्रमकोंने शक ५७१ में नष्ट कर दिया। ख़ुस्रौ पर्वीज़ एक बलवान् राजा था। तुर्कस्थानकी राजकन्या शीरीनके साथ ख़ुस्रौकी प्रणयकथाका निज़ामीने इस मस्नवीमें वर्णन किया है। रूपसुंदरी शीरीनपर फ़र्हाद नामी एक पत्थर-तराश अनुरक्त था। जब ख़ुस्रौको यह बात मालूम हुई तो ख़ुस्रौने

इस बातको इस शर्तपर मान लिया कि फ़र्हाद बगस्तान (बिहिस्तून वा बीसतून, किर्मानशाहके समीप) का पहाड तराश कर उसमें गुहाएँ बनाएँ। फ़र्हादने यह शर्त मान ली। उसने बगस्तान (संस्कृत भगस्थान) का पर्वत काटकर और तराश कर उसमें गुहाएँ बनाईं लेकिन ख़ुस्रौने शीरीनकी मृत्यूकी झूटी वार्ता फ़र्हादको पहुँचाई। इससे फ़र्हादका दिल टूट गया। इस प्रणयकथाको निज़ामीने कलापूर्ण हाथसे काव्यरूप दिया और ख़ुस्रौ, शीरीन और फ़र्हादको अमरता प्रदान की। फ़र्हादका प्रेम फार्सी साहित्यमें संकेतरूपमें चिरस्थायी हो गया है।

निज़ामीने सनाईकी आरम्भ की हुई देवतास्तुतिकी प्रथाको और आगे बढ़ाया। उसकी हर मस्नवीमें ईशस्तुति, पैगम्बर प्रशंसा और सामयिक राजाकी स्तुति पाई जाती है। इस ज्येष्ठश्रेष्ठ कविने देवतास्तुतिकी प्रथाको हमेशाके लिए फार्सी और दक्खिनी हिन्दीके मस्नवियोंका एक अविभाज्य अंग बना दिया। ईरानी और भारतीय फार्सी कवियोंने इस प्रथाका सर्वत्र अनुसरण किया है।

सौ सव्वासौ वर्षों बाद दिल्लीनिवासी महाकवि अमीर ख़ुस्रौने (मृत्यु शक १२४७) निज़ामी गंजवीके अनुकरणमें पाँच मस्नवियाँ लिखी हैं। उनको ख़ुस्रौने निज़ामीके ख़मसाको सामने रखते हुए ही लिखा है। इसके अतिरिक्त अमीर ख़ुस्रौके अन्य महाकाव्यभी हैं। ख़ुस्रौका दीवानभी उपलब्ध है। हाफ़िज़ शीराज़ीके पल्लेकी ग़ज़लें अमीर ख़ुस्रौने लिखी हैं।

अब केवल एकही मस्नवीकारका उल्लेख कर इस विषयको छोड़ दिया जाता है। यूं तो फार्सीमें छोटीमोटी मस्नवियोंका ढेर लगा हुआ है। वह हर छोटे बड़ेसे लिखी गई हैं। उसकी संख्या काफ़ी बड़ी है। अब केवल जलालूद्दीन रूमीकी मस्नवीका थोडासा परिचय दिया जाएगा। जलालूद्दीन रूमीकी मस्नवीको मस्नविए-मअनवी (आत्मज्ञानका आख्यानक काव्य) कहा जाता है। जलालूद्दीन अफगानिस्तानके नगर बल्ख (बॅक्ट्रिया) में शक ११२९ में पैदा हुआ था। परन्तु उसके पिता मुहम्मद बिन हुसेनको उस देशके नरेश अलाऊद्दीन खारज़्मशाहकी दुश्मनीके कारण अपना वतन छोड़कर, पश्चिममें जाना पड़ा। वह शक ११३४में नैशापूरसे होते हुए आगे बढ़ा। वहाँपर उसने प्रसिद्ध कवि फ़रीदूद्दीन अत्तारसे भेंट की। बालक जलालूद्दीनपर अत्तार बहुत ख़ुश रहा और उसके बड़े होनेके चिन्ह उसमें पाए। अपने ग्रन्थ इलाहीनामाकी पुस्तक उसको भेंट दी। इसके बाद यह ख़ानदान रूम (आशिया मायनर) में जा वसा। रूमीकी शिक्षा अलेप्पो और दमस्कस में हुई। उसका देहान्त शक ११९५ में हुआ। वह अपने पिताकी समाधिके समीप भूगत रहा है।

इस आध्यात्मिक मस्नवीके छः सर्ग हैं। यह काव्य कब लिखना आरम्भ हुआ यह मालूम नहीं। परन्तु काव्यका दूसरा सर्ग शक ११८५ में लिखना शुरू हो गया था। यह ग्रंथ शक ११९५ में लिख पूरा हुआ। शायद उसका ग्रथन दस वर्षोंतक चल रहा था। इस काव्यके २६,६६० जोड़ हैं। इस काव्यके अतिरिक्त जलालूद्दीन रूमीका एक दीवान और ग़ज़ल, क़सीदा, रुबाई आदिका संग्रहभी उपलब्ध है। यह दोनों उत्कृष्ट काव्यकृतियाँ

मानी जाती हैं। मस्नवीके सम्बन्धमें कहा जाता है कि वह पहलवी (फार्सी) का कुरआन है। रूमीने स्वयं कहा है कि इस मस्नवीमें धर्मके मूलोंका मूल निहित है। और उससे निश्चित ज्ञान और श्रेयके पुनर्मीलनका सन्देश प्राप्त होता है। यह ईश्वरका सर्वश्रेष्ठ शास्त्र है। यह ईश्वरका तेजस्वीतम क़ानून और ईश्वरप्रमेयकी सिद्धि है।

इस आध्यात्मिक मस्नवीमें जलालूद्दीन रूमीने कोई औपचारिक देवतास्तुति नहीं लिखी है। फार्सी काव्यपरम्परामें देवतास्तुतिकी प्रथा बद्धमूल हो गई थी। लेकिन इस सूफ़ी सन्तने इस प्रथाका पालन करनेसे गोया इन्कार कर दिया है।

## देवतास्तुतिका आरम्भ

दक्खिनी हिन्दी कवियोंने देवस्तुतिका पूरा पूरा अवलम्बन और पालन किया है। इब्राहीमनामेके लेखक अब्दुलने भी उसका अवलम्बन किया है। लेकिन देवतास्तुतिका पूरा अवलम्बन मुल्ला नुस्रतीकी मशहूर मस्नवी **अलीनामा**में पाया जाता है। यहाँपर यह याद रहे कि देवतास्तुतिका यहाँपर विशिष्ट अर्थ है। हिंदी या उर्दू, फार्सीमें उसके लिए कोई खास शब्द प्रयुक्त नहीं होता। ई. जी. ब्राऊनने अपने फार्सी साहित्येतिहासमें इस स्तुतिप्रकारको (Doxology) की संज्ञासे स्मरण किया है। Doxology ग्रीक साहित्यमें पाई जाती हो। डॉक्स ग्रीक शब्द है और उसका अर्थ वैभव होना कोशसे पाया जाता है। यह एक पारिभाषिक संज्ञा है। इस शब्द डॉक्सॉलॉजीका कोई संस्कृत वा फार्सी पर्याय है या नहीं, इसका हमको अंदाजा नहीं। कयास हो सकता है कि संस्कृत दक्ष और आलोचनसे यह बना हो। अलग अलग शास्त्रोंमें पाया गया अंग्रेजी शब्द ऑलोजी संस्कृत शब्द आलोचनका पर्याय और समकाय है, इसमें कोई संदेह नहीं। दक्ष शब्दका अर्थ एक देवता तो हैही। परंतु उसका मूल अर्थ मोनियर वुइल्यम्समें, किसीके संतोष, समाधानके लिए कार्यप्रवण होना, दिया गया है।

हमने डॉक्सॉलॉजीके लिए देवतास्तुति शब्द प्रयुक्त किया है और वह एक पारिभाषिक संज्ञाके रूपमें उपयोगमें आया है। देवतास्तुति अधिकतर फार्सी और तमामतर दक्खिनी हिन्दी मस्नवियोंका अंग बना हुआ है। दक्खिनीकी मस्नवियोंमें उसका कहीं पूरा और कहीं अंशतः उपयोग किया दिखाई देता है। मुल्ला नुस्रतीन अलीनामेमें उसको विस्तरशः प्रयुक्त किया है, अलग अलग भागोंकी विशिष्ट संज्ञाएँ प्रयुक्त की हैं। प्रथमतः ईशवन्दन, स्तुतिको 'हम्द' कहा जाता है। द्वितीयतः ईशस्तुतिही की जाती है, परन्तु उसमें ईश्वरको कविके समीप वा सर्वत्र उपस्थित जान कर, उसकी स्तुति प्रस्तुत होती है। अर्थात् ईश्वरसे बातें होती हैं। ईश्वरके लिए तूं का सर्वनाम प्रयुक्त होता है और कवि भक्तकी भूमिकामें स्वयंको लाकर कई प्रकारसे उसका वर्णन करता है। इस प्रकारको मुनाजात कहते हैं। मराठीमें महाकवि मोरोपंतद्वारा लिखी गई केकावली एक बृहत् मुनाजात कही जा सकती है। यह उसका उत्कृष्ट उदाहरण हो सकता है। यह बात साफ है कि आरम्भमें कवियोंने केवल हम्द-ईशस्तुति लिखी, परन्तु पश्चात् कवियोंने मुनाजातकी वृद्धि कर दी। वास्तवमें मुनाजातका प्रकार हम्दका ही रूप है। यह उसका गोया विस्तार है।

नअ़त मुहम्मद पैग़ंबरकी स्तुति होती है। मुहम्मदका चरित्र और उसकी आध्यात्मिक कार्यप्रवणता नअ़तमें वर्णन की जाती है। अलग अलग ढंगसे पैग़म्बरके लोकोद्धार कार्य और उसकी आध्यात्मिकताका वर्णन कर, उसको ईश्वरका प्रेषित वा अवतार मान कर वर्णन किया जाता है। इस नअ़तका भी आगे चल कर विस्तार हुआ। कई कवियोंने मुहम्मदके मिअ़राजके प्राप्त करनेका वर्णन प्रस्तुत किया है। यह मिअ़राज वर्णन फार्सी मस्नवियोंमें है या नहीं इसका ज्ञान हमको नहीं है। परन्तु दक्खिनी हिन्दीके मुसलमान कवियोंने मिअ़राजका वर्णन विस्तरशः अथवा उल्लेखमात्र अवश्यही किया है। मुल्ला नुस्रतीकी दोनों मस्नवियों, गुल्शने-इश्क़ और अ़लीनामामें मिअ़राजका वर्णन विस्तरशः किया गया है। अन्य कवियोंमें केवल नअ़त-पैगंबरस्तुतिही प्राप्त है। महात्मा गौतम बुद्ध की जीवनीमें जिस प्रकार गौतमके बुद्ध होनेकी एक विशेष प्रक्रिया वा साधना है, उसी प्रकार मुहम्मदके बुद्ध बननेकी साधनाको मुसलमानोंने मिअ़राज प्राप्त करना कहा है। सूक्ष्मदेहधारी मुहम्मद सातों अस्मानोंमें यात्रा करता है। हर अस्मानमें उसका पराक्रम वा प्राप्ति वर्णन की जाती है। सातवें आकाशमें उसको ईश्वर दर्शन होता है। ईश्वर मुहम्मदको ज्ञान देता है। पृथ्वीके जनसाधारणको ईश्वरका आदेश पहुँचानेका और मुहम्मदको प्रेषित करनेका उसमें उल्लेख ज़रूर किया जाता है। ख़्वाजा बंदे नवाज़ गेसूदराज़के छोटे गद्य ग्रंथ मिअ़राजुल आ़शिक़ैन (लेखन हिजरी ८२५ के पूर्व—शक १३४४) में मुहम्मदके मिअ़राजप्राप्ति और ज्ञानभक्तिप्रसारके ईश्वरादेशका वर्णन किया गया है। उसमें, मुहम्मदकी ज्ञानसाधनाको 'साधना' नहीं कहना चाहिए, क्योंकि वह कुफ़्र-धर्मविरोध हो जाता है, इस बातकी चेतावनी दी गई है।

मन्क़बतभी देवतास्तुतिका अंग है। यह शब्द अरबी भाषाके नक़ब शब्दसे बना है। नक़बका अर्थ है, काटकर, खोदकर मार्ग बनाना। मन्क़बतका अर्थ होता है, काटकर, खोदकर बनाया हुआ मार्ग। अर्थात् यह मूल अर्थ है। उसका यौगिक अर्थ है ईश्वरप्राप्तिके लिए बनाया हुआ मार्ग अर्थात् मन्क़ब। उसका भावदर्शक नाम है मन्क़बत। अरबीमें त भाववाचक संज्ञाका प्रत्यय है। यह प्रत्यय संस्कृतमें त्व अथवा ता होता है। मन्क़बत याने उन धर्म-नेताओंका वर्णन जिन्होंने ईश्वरप्राप्तिका मार्ग साफ़सुथरा किया, मार्ग बनाया, उनका वर्णन। अर्थात् मन्क़बतमें स्वयं मुहम्मद, उसके प्रारम्भके अनुयायी और नेताओंका वर्णन प्रस्तुत किया जाता है। यह वर्णन शिया और सुन्नी पंथोंके कवि अलग अलग प्रकारसे करते है। सुन्नी पंथके कवि केवल मुहम्मद और पहले चार धर्मनिष्ठ ख़लीफ़ाओंपर वर्णन पूरा कर देते हैं। शिया पंथके कवि अलबता मुहम्मद, अ़ली, हसनहुसेन द्वयी, सात इमाम अथवा बारह इमामोंका वर्णन किया करते हैं। इब्राहीमनामेमें केवल मुहम्मदका ही वर्णन है।

मन्क़बतमें पश्चात् कवियोंने समसामयिक साधु, सूफियोंका भी वर्णन किया है। दक्खिनीके तमामतर कवियोंने दिल्लीके निवासी ख़्वाजा बंदे नवाज़ गेसू दराज़का, जिन्होंने बहमनी राज्यकालमें गुलबर्गा (मैसूर राज्य) में अपनी जीवितयात्राके २०–२३ अंतिम वर्ष बिताए, वर्णन बड़ी आदरबुद्धिसे प्रस्तुत किया है। अब्दुलने भी इब्राहीमनामेमें गेसू दराज़का वर्णन किया है। स्वयं द्वितीय इब्राहीम आ़दिलशाहने भी अपनी कृति नवरसके पद्योंमें गेसू दराज़का उल्लेख बार बार किया है। वास्तवमें बीजापूरकी आदिलशाहीके सब नरेशोंको गेसू दराज़ पूज्यपाद रहे हैं। सबोंने गुलबर्गा स्थित उनकी दर्गाहका दर्शन और तीर्थयात्रा की है। मुल्ला नुस्रतीके

मनमें तो गेसू दराज़के लिए अतीव आदरभाव है। उसका आदरभाव गुल्शने-इश्क़की इस बैतमें भरा हुआ है।

**ज़बां धो के फुलनीर सूं मुख में लावूं**
**यो सय्यद मुहम्मद हुसेनी का नांवूं** ६.२

उसकी अपूर्व आध्यात्मिक शक्तिपर भी नुस्रतीका विश्वास है। वह कहता है:

**तिरे मिहर सीते गदा होए अमीर**
**तिरे क़हर ते पल में हुए शह फ़क़ीर** ६.१७

**किया पल में फ़ीरोज़ शह कूं तबाह**
**घडी में च सुल्तान अहमद कूं शाह** ६.१८

इस प्रकारकी देवतास्तुतिकी यहभी विशेषता है कि उसमें तत्कालीन राजाकी स्तुतिभी समाविष्ट की जाती है। ईश्वर, मुहम्मद और उसके साथी, किसी उत्तरकालीन वा समसामयिक साधुसूफ़ीकी स्तुतिके साथ, उस समयके राज्यकर्ता नरेशकी स्तुति और प्रशंसा लिखी जाती है। उसको मदहे-सुल्तान कहा जाता है। प्रस्तुत ग्रंथ इब्राहीमनामेमें भी राजस्तुति है। लेकिन यह ग्रंथही इब्राहीमका चरित्र होनेके कारण उसके चरित्रका वर्णन आगेभी चालू रखा गया है। नुस्रतीके अलीनामा मस्नवीमें राजस्तुति प्रस्तुत करनेके पश्चात् ग्रंथारंभ किया गया है। कई प्रकारसे अली नरेशकी प्रसंशा कर उसको आशीष चाहा गया है।

उपर्युक्त देवतास्तुतिको बारीकीसे देखनेसे ज्ञात होता है कि उसमें प्रथमतः ईशप्रार्थना, द्वितीयतः मुहम्मदकी स्तुति और अन्ततः राजप्रशंसा, यह तीन अंग प्रमुखतया पाए जाते हैं। ईशवंदनाकी परम्परा तो सब लोक, सब देश और सब धर्मोंमें ही पाई जाती है। यह परम्परा मनुष्यजातिके संस्कृतिविकासके साथही शुरू हो गई प्रतीत होती है। मानवसंस्कृतिका उद्‌गम ईश्वरास्तित्व और ईशप्रार्थनासे होता हुआ दिखाई देता है। भारतमें भी यह परम्परा प्राचीन और सर्वत्र पाई जाती है। यह कोई अरब वा ईरानही की विशेषता नहीं है। वह सर्वत्र पाई जाती है। हमको लगता है कि इस देवतास्तुतिमें मुहम्मदको तौलनिक दृष्टिसे असाधारण और अतिरंजित महत्त्व दिया गया है और दूसरी बात जो दिलको खटकती है वह है राजप्रशंसाकी। हर भाषामें छोटे बड़े काव्य, महाकाव्य, आख्यान और मस्नवियाँ लिखी जाती हैं। परंतु कहीं यह नहीं देखा जाता कि निरपवादरीतिसे राजप्रशंसा कीही जाए। यह नियम क्यों? यह निरपवादता क्यों? इसी प्रकार मुहम्मद पैगंबरके उल्लेख और वर्णनका नियम क्यों? हमारी रायमें इन दोनों प्रश्नोंका बीज ईरानके इस्लामीकरणके बादके इतिहासमें निहित है। इस इतिहासको अगर सूक्ष्मतया देखा जाए तो मुहम्मद और समसामयिक राजाके वर्णनकी अपरिवार्यताका गूढ खुल जाता है।

## अरब और ईरानी मुस्लिमोंके सम्बन्ध

शक ५५७ (हिजरी १३) में क़ादिसियाके युद्धमें सासानी साम्राज्यके सेनानियोंका अंतिमतः पराजय होनेके बाद अरबोंका ईरानमें आधिपत्य स्थापित हुआ। तीसरा यज़्दगर्द दौडता

भागता पूर्व ईरानमें बारह चौदह साल भटकता रहा। उसके शक ७५१ में मृत होनेसे पूरे ईरानका स्वामित्व अरबोंको प्राप्त हुआ। प्रथम चार ख़लीफ़ाओंके राज्यकालही में ईरानकी ज़रतुष्ट्रधर्मी जनताका इस्लामी धर्मका स्वीकार करना आरंभ हो गया था। चौथे ख़लीफ़ा अ़लीका देहान्त शक ५८३ में हुआ। इस समयतक पूरा ईरान अरबोंके हाथोंमें आ चुका था। इस्लामीकरणकी गतिभी काफ़ी बढ़ गई थी। अ़लीकी मृत्युके थोडेही वर्ष बाद बने उमय्या ख़ानदानके ख़लीफ़ा दमश्कमें सत्ताधीश बने। उनकी सत्ता शक ६७१ तक बराबर चलती रही। इस ख़ानदानके ख़लीफ़ा पदसे हटानेमें शिया पंथी ईरानी मुसलमानोंका बड़ा हिस्सा था। उमय्या ख़लीफ़ाओंकी सत्ताको आधुनिक विद्वानोंने अरब-साम्राज्यवादके नामसे याद किया है। विद्वानोंने अब यह बात प्रमाणित की है कि पूरी राजकीय और शासकीय सत्ता अरबोंके हाथोंमें थी। ईरानी ज़रतुष्ट्रधर्मीयों और ईरानी मुसलमानोंपर कड़ी पाबंदियाँ लगाई जाती थीं। अरब सत्ताके प्रथम २००—२५० वर्षोंमें फार्सी भाषामें कोई साहित्य पैदा नहीं हो पाया। अ़ब्बासी ख़ानदानकी ख़िलाफ़त शक ६७२ में स्थापित हुई। राजधानी दमश्कसे बगदाद लाई गई। अ़ब्बासी ख़लीफ़ाओंके राज्यकालमें ईरानी मुसलमानोंपर धार्मिक और अन्य कड़ी पाबंदियाँ लगी हुई थीं। अरबोंके ईरानी आक्रमणका अधिकतर इतिहास अरबी भाषामें ही लिखा हुआ है। यह ग्रंथकार अधिकतर, ८० प्रतिशत ईरानी वंशके मुसलमान होनेपर भी उनकी रचनाएँ अरबी भाषामें होती रहीं। उमय्या ख़लीफ़ाओंके स्थानपर अ़ब्बासी राजवंश स्थापित होनेपर जो नई प्रवृत्तियाँ ईरानी राष्ट्रीय जीवनमें प्रादुर्भूत हुई उनका वर्णन विद्वानोंने इस प्रकार किया है।

ई. जी. ब्राउनने, जो साधारणतया अरब दृष्टिकोनके पक्षपाती समझे जाते हैं, कई अनुसंधान करनेवाले विद्वानोंके ग्रंथोंको आधार बना कर, अपने ग्रंथके प्रथम खंडमें कहा है कि बगदादमें स्थापित नई ख़िलाफ़त सब अरबजित नए राज्योंपर राज्य नहीं चला सकी। स्पेन आदि देशोंमें स्थापित अरबसत्ता पहलेसे स्वतंत्र थी। दूसरी प्रवृत्ति यह दिखाई देने लगी कि अरबोंमें आरम्भमें पाई गई युयुत्सुवृत्ति और शौर्य बहुत कुछ कम हो गया था। उनमें विलासमग्नता आ गई थी। इस्लामके विकास कार्यमें अरबोंका सहयोग कम होता जा रहा था। बगदादमें स्थानांतर होनेके पश्चात् ख़लीफ़ाओंके दरबारमें अरबोंका स्थान भ्रष्ट होता गया। इसके अतिरिक्त दरबारमें ईरानी मुसलमानोंको काफ़ी प्रतिष्ठा प्राप्त होती रही। बलख़के (बॅक्ट्रिया, अफ़गानिस्तान) भूतपूर्व हिंदू वा बौद्ध वंशके मुसलमान प्रधान मंत्री बरमकने इस प्रवृत्तिको बढ़ावा दिया। बगदादही में अरबोंकी ग्रामीणता कम होते गई। उनमें संस्कृतिके संस्कार होते गए। शनैः शनैः उनमें संस्कार, सहिष्णुता और शास्त्रीय अनुसंधानकी प्रवृत्तियाँ बद्धमूल होती गईं। अरबोंकी मौखिक परम्पराको लिपिबद्ध होनेका अवसर भी इसी कालमें आरम्भ हुआ। यह प्रवृत्तियाँ ईरानी, विशेषकर ख़ुरासानी मुसलमानोंके संपर्कसे उनमें पैदा हो गईं। भारत और संस्कृत भाषाका भी इस क्षेत्रमें पर्याप्त सहयोग रहा है। अ़ब्बासी ख़लीफ़ाओंके आरम्भ कालमें वज़ीर वा महामंत्री का शासकीय पद ख़िला-फ़तमें निर्माण हुआ। वज़ीर शब्द पहलवी विचिरसे बना है। उसका प्राचीन प्रादेशिक रूप गज़ीर भी था। वज़ीर का पद सासानी साम्राज्यमें पुराने ज़मानेसे चालू था। उसको बुज़ुर्ग फ़र्मादार कहा जाता था। बुज़ुर्ग फ़र्मादार शब्द वृद्धक प्रमातार (प्रमातृ) से बना हुआ है। गोया वज़ीरका पद ईरानियोंका पैदा किया हुआ है। यह भारतमें भी सासानियोंसे कई शतियों पूर्व चालू था। अल-फ़ख़री आदि इतिहास लेखकोंने अरबोंकी शासनव्यवस्थामें इस नए पदके निर्माणके संबंधमें, काफ़ी चर्चा की है। अपने नापसंदीदा वज़ीरोंको विष,

धोखा आदिके गर्ह्य साधनोंसे मरवा डालनेकी निंद्य प्रथा इन्हीं ख़लीफ़ाओंके आरम्भकालमें अपनाई गई दिखाई देती है।

## ईश्वरांश राजा

अब्बासी ख़लीफ़ाओंके आरम्भकालमें ख़लीफ़ाको ईश्वरांश माननेकी नई प्रवृत्ति आरम्भ हो गई। वास्तवमें जब अरबोंने राजकीय सत्ता और साम्राज्य प्राप्त किया तो उनको राज्य व्यवहारका कोई ज्ञान होना नहीं पाया जाता। राज्यव्यवहारकी कला और यंत्रणाको अरबोंने ईरानसे ग्रहण कर लिया है। जब ईरान जित हुआ तो साम्राज्य चलानेकी उनकी सासानी शासकीय व्यवस्था मौजूद थी। ईरानी राष्ट्रने कई साम्राज्य चलाए थे। साम्राज्य चलानेका उनका अनुभव कमसे कम एक हज़ार वर्षोंका था। केंद्रीय सत्ता चलानेकी उनकी यंत्रणा पहलेसे चलती आ रही थी। सासानी राजा वा सम्राट् ईश्वरांश कहलाए जाते थे। यहभी संकेत सासानी कालमें बद्धमूल था कि सासानी राजवंशकी व्यक्तिके अतिरिक्त कोई राजा वा शाहकी उपाधि अपने नामके साथ नहीं लगा सकता था। राजाको ईश्वरांश माननेकी पुरानी प्रथाको अरब ख़लीफ़ाओंने पसंद किया। दरबारमें ईरानी मुसलमानोंका वर्चस्व पूरी तरह छाया हुआ था। यह ईश्वरांश राजाकी कल्पना अरब-वंशीय ख़लीफ़ा और ईरानी वज़ीरों-दोनोंके लिए एक अच्छा साधन था जिससे ख़लीफ़ाका मानसम्मान और ईरानी वज़ीरोंकी वास्तव सत्ता मिलजुल कर रह सकती थीं। इस घटनामें एक और कारण भी था। अरब आक्रमकोंने ईरान पूरी तरह जीत लेनेके बाद ईरानी लोग तलवारके बलपर ख़लीफ़ाका विरोध और मुक़ाबला नहीं कर सकते थे। इस लिए ईरानके अभिमानियोंने अरबसत्ताका विरोध करनेके लिए एक नया ढंग स्वीकार किया। अली और उसके वंशजोंको परास्त और नामशेष कर, उमय्या राजवंशने ख़िलाफ़त ग्रहण कर ली थी। जो अरब इस उमय्या ख़ानदानके विरोधी थे उन्होंने अलीके वंशजोंको ख़िलाफ़तकी गद्दी प्राप्त कराने एक गुटबंदी की। अरबीमें ऐसी गुटबंदीके नेताओंको शिया कहते हैं। गोया यह शियापंथ अलीके वंशजोंको ख़िलाफ़त दिलाना चाहता था। अली स्वयं मुहम्मद पैगंबरके वंशका ही था। मुहम्मद ईश्वरका प्रेषित होनेसे अलीके वंशजभी मुहम्मदके सहारे ईश्वरप्रमाणित ख़लीफ़ा थे। इसके अतिरिक्त सासानी राजवंशके अंतिम नरेश यज़्द-गर्दकी एक कन्याका विवाह चतुर्थ ख़लीफ़ा अलीके पुत्र हुसेनके साथ हुआ था। हुसेनको इस राजकन्यासे अली नामी पुत्र था। इस अलीको ख़िलाफ़तकी गद्दी प्राप्त करनेके लिए शियापंथीयोंका हमेशाके लिए प्रयत्न रहा है। इसी कारण, पर्यायरूपसे शियापंथी ईरानकी संस्कृति और राष्ट्रके पक्षपाती रहते आए हैं। इसी लिए ईरानी मुसलमानोंमें यह धार्मिक भावना कार्यप्रवण थी कि अलीके वंशजोंको ख़िलाफ़त मिल जाए तो वह सत्ता मुहम्मद और ईरानसे संबंधित हो जाएगी।

राजा ईश्वरांश होनेकी कल्पनाका मूल भारतीय मालूम होता है। भारतीय संस्कृतिमें राजाको विष्णुका अंश बतलाया जाता है। **ना विष्णुः पृथिवीपतिः** यही राजाका वर्णन भारतीय भाषाओंमें प्राचीन कालसे मिलता है।

मनुस्मृति सब स्मृतियोंमें प्राचीनतम है। उसका विद्वानोंने काल निर्धारण शकपूर्व तीसरी शतीसे शकारम्भ तक किया है। मनुस्मृतिमें बतलाया है कि, राजाको इन्द्र, वायु, यम, सूर्य, अग्नि, वरुण, चन्द्र और कुबेर इन अष्टदेवताओंकी मात्राएँ प्राप्त कर निर्माण किया

गया है। इसी लिए वह अपने महातेजसे सर्व भूतोंको अभिभावित करता है। सातवें अध्यायमें कहा गया है।

**इन्द्रानिलयमार्काणामग्नेश्च वरुणस्य च।**
**चन्द्रवित्तेशयोश्चैव मात्रा निर्हृत्य शाश्वतीः ।। ४ ।।**
**यस्मादेषां सुरेन्द्राणां मात्राभ्यो निर्मितो नृपः।**
**तस्मादभिभवत्येष सर्वभूतानि तेजसा ।। ५ ।।**

नारदस्मृति भी पुरानी स्मृतियोंमें से और सुप्रतिष्ठित है। उसका काल बुहलरने शककी तीसरी चौथी शती निश्चित किया है। नारदस्मृतिमें राजाको इन्द्रका अंश माना गया है।

**राजा नाम चरत्येष भूमौ साक्षात् सहस्रदृक्।**
**न तस्याज्ञां व्यतिक्रम्य सन्तिष्ठेरन् प्रजाः क्वचित् ।। २० ।।**
**रक्षाधिकारादीशत्वाद् भूतानुग्रहदर्शनात्।**
**यदेव कुरुते राजा तत्प्रमाणमिति स्थितिः ।। २१ ।।**

— प्रकीर्ण अठारहवां विवादपद

मालूम होता है कि यहाँपर इन्द्रका उल्लेख अनेक देवताओंके प्रतीक रूप है। और मनुस्मृतिकी धारणाका संक्षेप है। विष्णुदेवताका व्यक्तिमत्त्व इन्द्रदेवतासे अर्वाचीन हैं। बादमें विष्णुको ही आधार बना कर राजाको विष्णुका अंश बतलाया जाने लगा। इसी लिए मुद्राराक्षसमें विष्णु और इन्द्र दोनोंका उल्लेख है। मुद्राराक्षसके रचयिता विशाखदत्तका काल विद्वानोंने शक ३०० से ३५० के बीच निश्चित किया है। इस नाटकमें महाराजा चंद्रगुप्तको विष्णुका अंश वतलाया गया।

**वाराहीमात्मयोनेस्तनुमवनविधावास्थितस्यानुरूपां।**
**यस्य प्राग्दन्तकोटिं प्रलयपरिगता शिश्रिये भूतधात्री**
**म्लेच्छैरुद्विज्यमाना भुजयुगमधुना संश्रिता राजमूर्तेः**
**स श्रीमद्बन्धुभृत्यश्चिरमवतु महीं पार्थिवश्चंद्रगुप्तः।** ७.१९

यहाँपर चंद्रगुप्तको वराहरूप धारण करनेवाले भगवान् श्रीविष्णुका आत्मयोनि बतलाया गया है। इसी नाटकमें अंक ४ श्लोक ११ में राजाको "पृथिवीतलवासव" कहा गया है। यहाँपर राजाको इंद्रका अंश बतलाया गया है। वायुपुराणमें जिसका लेखनकाल शककी दूसरीसे चौथी शती बतलाया जाता है, राजाको विष्णुका अंश बतलाया गया है। महाकवि बाणभट्टका काल शक ५५० से ६२५ तक माना जाता है। वह सम्राट् हर्षवर्धनका आस्थानी पंडित और उसका चरित्रलेखक है। बाणभट्टने राजाके ईश्वरांश होनेकी कल्पनाके अतिक्रमित होनेकी अपनी कादंम्बरीमें निंदा की है।

"**अविशेषज्ञतामपक्षपातित्वमिति दोषानपि गुणपक्षमध्यारोपयद्भिरन्तः स्वयमपि विहसद्भिः प्रतार्यमाणा वित्तमदमत्तचित्ता निश्चेतनतया तथैवेत्यात्मन्यारोपितालीकाभिमाना मर्त्यधर्माणोऽपि दिव्यांशावतीर्णमिव सदैवतमिवातिमानुषमात्मानमुत्प्रेक्षमाणाः प्रारब्धदिव्योचितचेष्टानुभावाः सर्वजनस्योपहासतामुपयान्ति (नृपतयः)।**

— **कादम्बरी,** पृष्ठ २३४ (निर्णयसागर श. १८७९)

मालूम होता है कि राजा ईश्वरांश होनेकी कल्पना भारतीय है। यह कल्पना ईरानके सासानी साम्राज्यकालमें भी रूढ थी। उसीका पुनरुज्जीवन अब्बासी राजवंशके ख़लीफ़ाओंके

प्रारम्भिक कालमें बगदादमें हुआ। फार्सी और अरबी काव्येतिहासमें इस राजाके ईश्वरांश होनेकी कल्पनाका हमेशा उल्लेख आता है। गोया यह कल्पना मुसलमानोंने आत्मसात् कर ली थी। फार्सीमें इस कल्पनाको ज़िल्लुल्ला, ज़िल्ले-हक़, ज़िल्ले-सुबहानी, ज़िल्ले-ख़ुदा अथवा साए-ख़ुदा, साए-अल्ला साए-हक़ आदि शब्दोंसे याद किया जाता है। ज़िल्ल अरबी शब्द है। साया शब्द संस्कृत छायासे बना है। ज़िल्ल और सायाका अर्थ छाया, छांव है। गोया राजा ईश्वरकी छाया माना गया है। भारतीय परंपरामें राजाका ईश्वरसे अधिक प्रत्यक्ष संबंध अभिप्रेत होना पाया जाता है।

## ईरानियोंका धर्मच्छल

शककी सातवीं शतीके मध्यतक पूरा ईरान मुसलमानमय हो गया था, ज़रतुष्ट्रधर्मीय जनता इस्लाम धर्मका स्वीकार कर चुकी थी। तो भी ईरानी मुसलमानोंको ख़लीफ़ाओंके हाथों पूरा न्याय मिलता था, ऐसी बात इतिहाससे नज़र नहीं आती। इस पहलूपर प्रोफेसर फ़ीरोज़ कावसजी दावरने एक प्रबंध वुइल्यम्स् जॅक्सन स्मारक ग्रंथमें लिखा है। उसके आधारपर ईरानी मुसलमानोंकी तत्कालीन अवस्थाका कुछ दिग्दर्शन यहाँ किया जाता है। दावरजीने लिखा है कि अरबोंके आक्रमणके बाद दो शतियोंतक ईरानियोंको अपनी मातृ-भाषा फार्सीमें कुछ लिखना असंभाव्य और अशक्य था। इस प्रकार अरबविरोधी ऐतिहासिक साधन और दृष्टिकोन पाया जाना कठिन है। मुलसमान इतिहास लेखकोंने यह प्रतिपादन किया है कि ईरानी जनताका इस्लाम धर्मस्वीकार इस्लामी धर्मके श्रेष्ठत्वके कारण है। इस कथनमें कोई आश्चर्यकी बात नहीं है। इसके बावजूद भी अरबी इतिहास ग्रंथोंमें भी कुछ ऐसी बातें मिलतीं है जिससे ईरानी मुसलमानोंपर लगाई गई पाबंदियाँ और उनके धार्मिक छलके संबंधी बातें प्रकाशमें आ जाती हैं। इन चीदा चीदा उदाहरणोंको सूत्रबद्ध किया जाए तो तत्कालीन अरब और ईरानी मुसलमानोंके संबंधोंपर कुछ रोशनी पडती है।

ख़लीफ़ा मामून (राज्यकाल शक ७३५ से ७५५) मुसलमानोंकी दृष्टिसे बड़ाही सहिष्णु ख़लीफ़ा था। लेकिन इतिहासमें उसका यह वचन पाया जाता है कि काफ़िरोंको चाहिए कि वह इस्लामका स्वीकार करें या क़ुरआनसम्मत किसी और धर्मका या मृत्युका स्वीकार करें। मुसलमानोंको धर्मका आदेश है कि वह क़ुरआनसम्मत (अहले-किताब) धर्मानुयायिओंके साथ उस समयतक लड़ते रहे जबतक कि यह परधर्मी जिज़ीया देना स्वीकार न कर लें। अहले-किताब अन्य परधर्मीयोंसे मुसलमानोंको उस समयतक लड़ते रहना चाहिए जबतक कि वह इस्लामका स्वीकार कर ले। इतिहासमें यह घटना मिलती है कि शक ७३६ में ख़लीफ़ा मामूनने ख़ुरासानके नगर मर्वमें ईदका त्यौहार मनाया। उस सुअवसरपर उसने पूछताछ की कि उस बड़े समुदायमें कोई ऐसा व्यक्ति है जो पुरानी फार्सी भाषामें कवित्व कर सकता हो। अरब आक्रमणके बाद इस भाषामें लिखना सरकारी आदेशसे मना किया गया था। श्रोतृवृंदमें से २५ वर्षका एक नौजवान अब्बास किसी प्रकारका सन्देह न करते हुए सामने बढ़ा और उसी समय ख़लीफ़ा मामूनकी प्रशंसामें उसने एक क़सीदा गा कर बतलाया। मामूनने तुरन्तही उसके शिरच्छेदका आदेश दिया। ख़लीफ़ाको डर था कि एक ग़ुलाम राष्ट्र के नौजवानने एक परित्यक्ता भाषामें कवित्व करनेसे ग़ुलाम प्रजाकी राष्ट्रवृत्ति सचेत हो उठेगी और वह विजेताओंके लिए संकट लाएगी। अगर एक सहिष्णु ख़लीफ़ाके यह विचार और आचरण हो तो अन्य संकुचित दृष्टि रखनेवाले धर्मद्वेषियोंके धोरण और व्यवहारका अंदाजा लगाया जा सकता है।

इब्न मुक़फ़्फ़ा पहलवी, फार्सी और अरबी भाषाओंका प्रकांण्ड पंडित था। उसने अपने जीवितकालही में ज़रतुष्ट्र धर्मका त्याग कर इस्लाम धर्मका स्वीकार किया। उसको आदेश दिया गया था कि वह अपनी रचनाएँ केवल अरबी भाषामें ही प्रस्तुत करे। उसने ईरानके प्राचीन इतिहासका, जो फार्सीमें खुदाईनामकके नामसे लिखा हुआ था, अरबी भाषामें अनुवाद किया। इसी महापंडितने बुर्ज़ोय वा बुज़ुर्गमिहरके बनाए हुए संस्कृत पंचतंत्रके पहलवी भाषांतरका अरबी भाषामें कलीला व दमनाके रूपमें अनुवाद किया। अपने अन्य देशबांधवोंके समान इब्न मुक़फ़्फ़ाकी धारणा थी कि कोई अन्य धर्म स्वीकार लेनेसे उसके पूर्वजोंकी संस्कृति और अपना राष्ट्रीयत्व खो बैठनेके बराबर नहीं है। उसने अपना राष्ट्रप्रेम और अपनी संस्कृतिके लिए उसका आदरभाव अरब विजेताओंसे नहीं छुपाया। उसपर आरोप लगाया गया कि वह प्रच्छन्न ज़रतुष्ट्रधर्मी है, गो उसने इस्लामका स्वीकार कर लिया था। इस अपूर्व विद्वद्रत्नको मृत्युकी घोर सज़ा दी गई। शक ६७९ में उसका निर्घृणतासे वध किया गया। मरते दम तक उसको पीडा दी गई और मरणोत्तर उसका एक एक अवयव काट कर, जलती हुई भट्टीमें फेंक दिया गया। इब्न मुक़फ़्फ़ाकी इस मृत्युकी दुर्घटनाका उल्लेख ईरानके राष्ट्रीय प्राचार्य डॉ. इब्राहीम पूरे दाऊदने अपने ग्रंथमें किया है।

ख़लीफ़ हारूनूर्रशीद (मृत्यु शक ७३५) की सत्कृति और न्यायप्रियताके वर्णन अरेबियन नाईटस् और कई अन्य अरबी और फार्सी ग्रंथोंमें भरे पडे हैं। लेकिन उसके कुछ दुष्कृत्य ऐसे हैं जिसके कारण उसके रशीद वा पुण्यश्लोक, सत्कृति होनेमें संशय पैदा कर देते हैं। इसी हारूनके राज्यकालमें बरमक नामी ज़रतुष्ट्रधर्मी उपाध्याय वंश बल्ख़ (अफगानिस्तान) में रहता था। इस ख़ानदानने इस्लाम धर्मका स्वीकार कर लिया। जाफ़र बरमक हारून ख़लीफ़ाका राज़दार, विश्वासपात्र और जानी दोस्त था। हारूनने अपनी भगिनी अब्बासाका विवाह इस जाफ़रसे करा दिया था। किसी दुर्घटनाका आरोप जाफ़र बर्मकपर लगाया गया, उसकी कोई न सुनी गई और उसका निर्घृणतासे वध किया गया। उसके वंशके सब पुरुषोंको मौतके घाट उतारा गया। यह घटना शक ७२४ की है। हारूनने अपनी बहन अब्बासा और उसके बच्चेको जिंदा गाढ दिया। हारूनने यह घोषणा की कि उसके राज्यमें कोई जाफ़र नामभी धारण न करें। प्रख्यात, प्रतिष्ठित, अधिकारप्राप्त ईरानी मुसलमानोंकी यह अवस्था हो तो अंदाजा किया जा सकता है कि जनसाधारण ईरानियोंका हाल क्या होगा।

जो ईरानी मुसलमान हो गए थे उनकी स्थितिभी देखने योग्य है। अरबोंने ईरानमें क़दम जमानेसे ही धर्मान्तिरकी मुहिम चालू हो गई थी। जो कोई मुसलमान बनेगा वह अरबोंके बराबर था। उसको समानताकी दृष्टिसे देखा जाता होगा, ऐसा समझना इतिहासविरोधी होगा। जो ईरानी ज़रतुष्ट्री मुसलमान बनेगा उसको कानूनके आदेशसे मौला कहा जाता था। अरबी भाषामें वली शब्दका अर्थ स्वामी, सहायकर्ता, मित्र, निगरानकर होता है। वली शब्दसे मौली, या मौला (फार्सी रूप) शब्द बना है जिसका अर्थ है वह मनुष्य जिसका कोई नियंता, सहायकर्ता, स्वामी हो। मौलाको अंग्रेजी ward शब्द प्रयुक्त किया जाता है। वॉर्ड तो सब जानते हैं, वह बालक है, उसकी बुद्धि अप्रगल्भ होती है, वह जीवनके व्यवहार करनेके लिए अयोग्य, असमर्थ समझा जाता है। हर धर्मान्तरित नया ईरानी मुसलमान मौला होता था। उसके लिए अरबोंमें से कोई

वली निश्चित होता था। हर ईरानी मुसलमानके लिए आवश्यक था कि वह किसी समीपवर्ती अरबको अपना वली निश्चित कर ले। ऐसा अरब उसका रक्षक, स्वामी, नियंत्रक समझा जाता था। मौला शब्दका अरबी व्याकरणके अनुसार, बहुवचन मवाली है। भारतीयोंको इस मवाली शब्दका पूरा परिचय और चिड़ भी है। न मालूम यह अर्थ कैसे प्राप्त हुआ? गो कि इन मवालियोंने इस्लाम धर्मका स्वीकार किया था और उनमेंसे कई समाजमें प्रतिष्ठित पुरुष थे, तो भी अरब विजेताओंके साथ उनको सामाजिक और राजकीय समानताका दर्जा प्राप्त नहीं होता था। अरव इन मवालियोंसे शादीब्याह नहीं करते थे। प्रो. ख़ुदाबख़्शके अनुसार उस समय यह बहस छिड गई थी कि यह मवाली क्या स्वर्गमें भी अरब स्त्रीसे शादी कर सकेगा। ईरानी मुसलमानोंके लिए नमाज़ पढ़नेके लिए अलग मस्जिदें निश्चित की गई थीं। इससे स्पष्ट हो जाता है कि अरब विजेताओंमें इस्लामी बंधुभाव किस रुचिका था। अरबोंका रिवाज था कि किसी अरबका नाम लेकर उसको उद्दिष्ट करना हो तो अहमद बिन मुहम्मद बिन .... कहा कर बोला जाए। परन्तु ईरानी मौलाके लिए यह उद्देशप्रकार प्रयुक्त नहीं होता था। अरब उसको कुनियत प्रथा कहते हैं। ईरानी मुसलमानोंके लिए कुनियत रूढीके अनुसरणका प्रश्नही नहीं उठता था। उसको उसके केवल नाम या लौकिक रूढ नामसे पुकारा जाता था। कोई मौला कितना भी प्रतिष्ठित और विद्वान् हो उसको अस्पृश्य माना जाता था। अरबोंकी बैठक वा सभामें मौलाको अलग बाजूको बैठना पडता था। जब कोई जुलूस चले तो सब मौला सब अरबोंके पीछेसे चला करते थे। प्रो. दावरने ईरानी मौलाकी अमरीकाके निग्रोंसे तुलना की है। प्रो. दावरने, प्रो. ख़ुदाबख़्शके ग्रंथाधारका उल्लेख कर, उस ज़मानेमें अरब विजेताओंमें रूढ एक कहावत उद्धृत की है। कहावत यह है — "प्रार्थना निष्फल हो जाती है, जब कि तीन बातें भक्तके मार्गमें आ जाती हैं — एक कुत्ता, दूसरी गधा और तीसरी एखादा मौला"। प्रो. दावरने कहा है कि इसपर टीकाटिप्पणी करना अनावश्यक है।

प्रो. दावरने, अरब विजेताओंका ईरानियोंके प्रति जब कि वह मुसलमान भी बन चुके थे द्वेष और तिरस्कारका वर्णन किया है। इसके पश्चात् उन्होंने ईरानी ज़रतुष्ट्र धर्मीयोंके प्रति उनके व्यवहारका दिग्दर्शन किया है। पहले चारोंमें से दूसरे ख़लीफ़ा उमर (मृत्यु शक ५६६) का यह निश्चित धोरण था कि अरब मुख्यतः एक लड़ाईपेशा वर्गके नातेसे अपना जीवन बिताएँ। अरब कभी ज़मीनके धनी नहीं रहे और न उन्होंने कभी स्वयं खेती की। उनपर किसी प्रकारका कर नहीं लगाया जाता था, परन्तु वह एक लड़ाई-पेशा अधिकारी और सेनापतियोंके रूपमें जीवन बिताते थे। इसके विरोधमें ज़रतुष्ट्र धर्मानुयायियोंको इनमें से कोई भी होनेका समाधान प्राप्त नहीं था। वे अपना जीवन जंगलोंसे लकडी काटने और स्वामीके घरोंमे पानी भर कर बिताते थे। उनपर भारी भरकम टैक्स लगाए गए थे। विजेताओंने उनपर अरब सेनाके लिए धान्य, कपडा आदि सामान पहुंचानेका काम सोंप दिया था। इन मुश्किलोंसे छुटकारा पानेके लिए ज़रथुष्ट्र धर्मीयों ने इस्लाम का स्वीकार किया, परन्तु उनका जीवन अधिक सुखी न बन सका। वह धूलसे निकल कर गोया आगमें कूद पडे। उनको मौला (इस्लाममें धर्मान्तरित ईरानी) की तिरस्करणीय उपाधि प्राप्त हुई। अब उमर ख़लीफ़ाने यह घोषणा कर दी कि तमाम मवालियोंसे भी जिज़ीया टैक्स वसूल किया जाएगा। इस घोषणासे ईरानियोंको एक ज़बरदस्त धक्का लग गया। उमर स्वयं मनुष्यस्वभावका अच्छा परखनेवाला था। उसने देखा कि टैक्ससे बचाने और अन्य

पाबंदियोंको टालनेके लिए बड़ी संख्यामें ज़रतुष्ट्रधर्मी इस्लामका स्वीकार कर रहे हैं। और ऐसी अवस्थामें सरकारी भाण्डारकी बड़ी हानी हो रही है। इस कारण अरब सत्ता कमज़ोर और खोखली बन रही है। इस धर्मान्तरकी बाढ़को रोकनेके लिए और सरकारी कोशकी रक्षाके लिए उसने दूसरी आज्ञा घोषित की कि ईरानी मौलाको केवल जंगम संपत्ति रखनेके अधिकार होगा, वह कोई स्थावर संपत्ति धारण न करें। उनकी पूरी स्थावर संपत्ति अरब शासनके स्वामित्वमें चली गई। इस प्रकार दुर्दैवी ईरानीकी बुरी अवस्था बनी। उसके लिए मुक्तिका कोई साधन दिखाई नहीं देता था। अपनीही भूमिमें सब ईरानियोंका जीवन असह्य बन गया। इस्लामका स्वीकार करनेसे वह तिरस्कार और निर्घृणतासे न बच सका और न भयंकर जिज़ीयासे उसको मुक्ति मिल सकी। और अगर वह ज़रतुष्ट्रधर्मी रह जाता तो उसके लिए संकट परम्परा, यातना और शासकीय दंडव्यवस्थाका शिकार बनना पडता था। इस प्रकार प्राचीन श्रेष्ठतम संस्कृतिके स्वामी राष्ट्रको परागतीकी घोर गर्तामें जीवन बिताना पडा।

जो ईरानी अपने पुराने ज़रतुष्ट्र धर्ममें रह गए उनको ज़िम्मीके नामसे पुकारा जाता था। फार्सी शब्दकोशमें इस शब्दका अर्थ है ऐसा व्यक्ति जिसको वार्षिक पोल टैक्स देनेके बाद, इस्लामी क़ानूनके अनुसार राज्यमें रहने दिया जाता है। इसका अर्थ है कि ज़रतुष्ट्र धर्मीयोंको केवल जिंदा रहने दिया जाता था, यही सहिष्णुता थी। इस लिए भी यह बात सही जाती थी कि उनके अस्तित्वसे कोशमें रूपया जमा हो सकता था। मुस्लिम न्यायासनके सामने इन ज़रतुष्ट्रोंकी साक्षीगवाही नहीं मानी जाती थी; इस लिए कोइ ज़रतुष्ट्र धर्मी न्यायासनमें कोई अन्याय ले जा कर, न्याय प्राप्त करनेकी आशा नहीं रखता था। उसने पूरा टैक्स दे देनेपर भी ज़रतुष्ट्रीयोंको किस प्रकार अपमानित किया जाता था, इसका वर्णन प्रो. दावरने किया है। इसके बाद शककी चौदहवीं शतीमें काजार राजवंशके तुर्की राजाओंके हाथों ईरानियोंकी बनी दुर्गतिकी ओर भी प्रो. दावरने इशारा किया है। (देखिए प्रो. जॅक्सन स्मारक ग्रंथ, बम्बई, शक १८७६, पृ. १४९–१६१)।

दिनशा जीजीभाई ईरानी ईरानविद्याके प्रकाण्ड पंडित थे। न केवल भारतमें, बल्कि ईरानमें भी उनकी विद्वत्ता मानी हुई थी। ईरानके सम्राटकी ओरसे उनको सम्मानित कर, उनको निशाने-इल्मीकी बहुमानदर्शक उपाधि प्रदान की गई थी। उनका देहान्त शक १८६०में केवल युवावस्थामें ही हुआ। उनके स्मरणमें डी. जे. ईरानी स्मारक ग्रंथका प्रकाशन शक १८६५ में किया गया। उसमें अंग्रेजी और फार्सी विभाग हैं। फार्सीमें २३० पृष्ठोंके सोलह शोध प्रबंध हैं। इन प्रबन्धोंमें प्राचीन ईरानकी संस्कृति, कला, इतिहास, अरब-ईरानी मुलसमान संबंध आदि विषयों पर मौलिक विचार प्रस्तुत हैं। उनमें फार्सी भाषा-निबद्ध तिहराननिवासी सईद नफ़ीसी नामी एक विद्वानका प्रबंध 'जुंबिश-हाए मिल्ली ईरानियान बर-ज़िद्-ताज़ीयान' (अरबोंके विरोधमें ईरानियोंके समाजिक आंदोलन) प्रस्तुत है। इस प्रबंधमें अनेक भाषाओंमें लिखे गए अनेकानेक विद्वानोंके ग्रंथों और शोध प्रबंधोंपर आधारित ईरानी राष्ट्रकी अरबी आक्रमण और वर्चस्वसे मुक्ति प्राप्त करनेके अनेक प्रयत्नोंके अंगोपांगोंपर चर्चा की गई है (फार्सी, पृष्ठ ३३ से ४९)। इस लेखमें ईरानी समाजके, अपना खोया हुआ स्थान प्राप्त करनेके प्रयत्नोंका दिग्दर्शन होता है। अरब आक्रमणके बादके छः सात शतियोंके इतिहासमें राष्ट्रीय ईरान और अरब आक्रमकोंमें पाए गए अंतर्विरोधकी दिशामें इस प्रबंधसे काफ़ी रोशनी पड़ती है। ईरानी मुसलमानोंकी धार्मिक और सामाजिक दुरवस्थाका जो उपर्युक्त वर्णन किया है उसको सईद नफ़ीसीके विचारोंसे और भी बल मिल जाता है।

अब्बासी ख़ानदानके दूसरे ख़लीफ़ा मन्सूरने (शासन काल शक ६७६ से ६७७) चाहा था कि ऐवाने-किसरा (ऐवाने-खुस्रौ अनुशीरवान) खुस्रौका राजप्रासाद गिरा कर बगदादमें बननेवाले ख़लीफ़ाके प्रासादके लिए उसका पत्थर आदि लगाया जाए। मन्सूरने इस सूचनापर अपने महामंत्री ख़ालिद बिन बर्मककी राय इस प्रश्नपर चाही। बर्मकने उत्तर दिया कि खुस्रौका प्रासाद इतना अप्रतिम है कि दैवी आपत्तिही उसको नष्ट कर सकती है। इसके अतिरिक्त यह प्रासाद गिरानेके लिए जो व्यय होगा उसकी उसमें मिलनेवाले मूल्यसे पूर्तिभी नहीं होगी। इसपर बर्मकपर यह आरोप लगाया गया कि वह अन्तःकरणमें जो कुछ भी ईरानी है उसका पक्षपाती है। भाग्यवशात् बर्मककी राय अंतमें यशस्वी रही और ऐवाने-खुस्रौ विनाशसे बच गया। ई. जी. ब्राउनने अपनी ग्रन्थमालाके प्रास्ताविक प्रथम' खण्डमें (पृ. २५८) इस घटनाका उल्लेख किया है। ब्राउनने कहा है कि बर्मक महामंत्री अपने देशवासियोंके कल्याणके लिए अपनी शक्ति लगाते रहे, परन्तु उनको बड़ी सावधानीसे काम लेना पडता था, ता कि वह इस आरोपके भक्ष्य न बनें कि वह ईरानी लोग और मगीवर्गके अंतःस्थतया पक्षपाती हैं।

**थोडा इतिहास**

ईरानियोंके अरब आक्रमणोत्तर तेरा शतीयोंके राष्ट्रीय जीवनमें केवल एकही कालखंडमें ईरानियोंको स्वदेशी राज्य प्राप्त रहा। शककी सातवीं शतीके अंतमें बगदादके ख़लीफ़ाओंकी सत्ता कमज़ोर हो गई, तो ईरानी वंशोंकी चार पाँच स्वतंत्र सत्ताएँ निर्माण हुई। वह सत्ताएँ लगभग एक शतीतक चलती रहीं। उसके बाद तुर्कोंने ईरानमें अपनी अलग अलग सत्ताएँ स्थापित कीं। उसके बाद चंगीज, तैमूरलंग आदिकी मुग़ल सत्ता आई। वह शक ११७८ से १४२६ तक किसी ना किसी सूरतमें, कभी बलशाली तो कभी कमज़ोर, कभी केंद्रीभूत प्रभावी मोगल सत्ता तो कभी उनकी अलग अलग स्वतंत्र सत्ताएँ, चलती रही। शक १४२४ में तेरह वर्षके तुर्क युवा इस्माईल सफ़वीने अपने ९ क़बीलोंकी सहायतासे ईरानी मुग़ल सत्ताका अंत किया। गो यह सफ़वी ख़ानदान तुर्की था लेकिन उन्होंने ईरानी संस्कृति, ईरानी जनता और शियापंथका मनोभावसे पुरस्कार किया। इसी कारण ईरानी इस सफ़वी राजवंशमें विदेशीयताका रंग नहीं देखते। उनका राज्यकाल भारतीय मुग़लोंका समकालीन और प्रदीर्घ समयतक बना रहा। सफ़वी राजवंशकी सत्ता तुर्की सरदारोंसे शक १६४६ में ख़त्म हो गई। नादिरशाह अफगानिस्तानीने ईरानपर शक १६७९ तक राज्य चलाया। ईरानपर तुर्की सुन्नीपंथी क़ाजारोंकी सत्ता शक १७१७ में स्थापित हुई। और वह पहले जागतिक महायुद्धतक चलती रही। शक १८४६ में रज़ा शाह पहलवीने रूसियोंसे ईरानको बचाया और शतीयोंके पश्चात् केवल ईरानी राज्य ईरानमें स्थापित हुआ।

ईरानके जिस कालखंडका इतिहास हमको यहाँपर अभिप्रेत है वह लगभग शककी सातवीं शतीके उत्तरपादका है। हारूनूर्रशीदके पुत्र ख़लीफ़ा मामूनकी मृत्यु (शक ७५५) के बाद ख़िलाफ़त बहुतही कमज़ोर बनी। शक ७४६ में ताहिर नामी अरबने खुरासानी ईरानी मुसलमानोंकी सहायतासे ख़लीफ़ासे विद्रोह किया और अपना स्वतंत्र राज्य स्थापित किया। उसके पुत्र अब्दुल्ला बिन ताहिरने यह राज्य शक ७६४ तक अच्छी तरहसे चलाया। लेकिन वह बादमें ख़त्म हो गया। सईस्तानमें (सीस्तान, सईस्तान, शकस्थान) शक ७८३ में याक़ूब नामी लुहारने (सफ्फार) अपनी आज़ादीका झंडा ऊंचा किया। उसका ख़ानदान शक ८३२ तक चला। शक ७८७ में अली बिन जैद नामी पत्थर फोडनेवाले ईरानीने तबरिस्तानमें

अपनी अल्पजीवी सत्ता क़ायम की। लेकिन यह दो तीन स्वतंत्र सत्ताऐं चिरजीवी न बन सकीं। किन्तु उसका ईरानी लोगोंपर मनोवैज्ञानिक यह प्रभाव प्रकट हुआ कि ख़लीफ़ाको फेंक दे कर ईरानी अपना स्वतंत्र राज्य स्थापित कर सकते हैं। सामान नामी ईरानी सरदारने खुरासान में अपना स्वतंत्र राज्य शक ७९५ में स्थापित किया और बुखाराको अपनी राजधानी बनायी, जो बगदादसे पर्याप्त सुदूर है। इस राजवंशकी सत्ता १२५ वर्षोंतक चलती रही। महमूद गज़नीके हाथों उसका अंत शक ९२१ में हुआ। कहा जाता है कि मूल संस्थापक सामान नामी एक इतिहासप्रसिद्ध योद्धा बहराम चौबीनका वंशज था। इस सामानी वंशमें नस्र सामानी (राजकाल शक ८३५ से ८६४) बड़ा बलशाली, वैभवसंपन्न और साहित्यप्रेमी नरेश हो गुज़रा है। इस सामानी राज्यकालमें फार्सीमें काफ़ी साहित्य निर्माण हुआ। आधुनिक फार्सीका जनक रौदकी इसी सामानी दरबारमें राजकवि था। इतिहासकारोंने बतलाया है कि सामानी राजवंशके रूपसे ईरानमें पुनरुज्जीवनका (Persian Renaissance) आरम्भ हुआ।

इसके अतिरिक्त एक और ख़ानदान ख़ुद्द बगदादही में बलवान बना। वह है बुवया ख़ानदान। तबरिस्तानमें सुस्थापित ज़ियाद ख़ानदानके मूल पुरुष मर्दावीज़के आश्रयसे बुवयाने बगदादमें ख़लीफ़ासे अधिकार प्राप्त कर लिया और शक ८६७ में सर्व शक्तिमान बनकर उसने ख़ुद्द ख़लीफ़ा अल-मुतई को केवल नामधारी और नामशेष बना दिया। बुवया ख़ानदानकी सेनामें दयलमी और गीलानी सैनिक समाविष्ट थे। बुवयाके तीनों पुत्रोंको बड़ी बड़ी उपाधियाँ और अधिकार प्राप्त रहे। एक पुत्र अलीको इमामुद्दौला, दूसरे हसनको रुक्नूद्दौला और तीसरे अहमदको मुईज़ूद्दौलाकी पदवियाँ दी गई थीं। इन तीनोंने इस्पहान, अरज़ान, नौबंदजान, काजरून, शीराज़, किर्मान, और अहवाज़को अपनी सत्तामें ले लिया था। ख़ुद्द बगदादपर भी उनकी प्रभावी सत्ता स्थापित थी। ख़लीफ़ाको कोई अधिकार नहीं रहा था। वह केवल नामधारी बादशाह था। बुवयाके बड़े पुत्रको अमीरूउमरा (प्रमुख सरदार) की सर्वोच्च उपाधि दी गई थी। यह बुवया वंश ईरानी है। वह समझता आया है कि वे सासानी नरेश बहराम गोरकी संतति है। वह शियापंथी थे। उनका राज्य शक ९७७ तक बराबर चलता रहा। ईरानमें बढ़ती हुई तुर्कोंकी शक्तिने उनका अंत किया। बगदादके दरबारमें राजव्यवहार अरबीमें चलता था, तो भी बुवया नरेशोंने विद्या, कला और फार्सी साहित्यके विकासमें पर्याप्त आश्रय और सहयोग दिया।

बगदादके अरब अब्बासी ख़लीफ़ाओंकी सत्ताको बुवया नरेशोंने अतीव संकुचित, सीमित और निष्प्रभ बना दिया था। बुवया राजवंश नष्ट हो जानेके बाद भी अब्बासियोंकी बराबर वही अवस्था चलती रही। सलजूक तुर्कोंकी सत्ता खुरासान और पूर्वी ईरानमें शक ९४१ से बढ़ रही थी। इस घरानेके तुग्रिल नामी सेनानीने शक ९७७ के पौष मासमें बगदादमें प्रवेश किया, बुवया वंशके व्यक्तियोंका वध किया और अब्बासी ख़लीफ़ाको अपनी सत्तामें ले लिया। उसने ख़लीफ़ाको क़ायम रखा लेकिन उसके कोई अधिकार न रहे। इन सलजूक तुर्कोंकी सत्ता शक १०७९ तक पूरी ताक़तके साथ चलती रही। अंतिमके बीस सालोंमें (शक ९९४ से १०१४) महामंत्रीके पदपर एक दहक़ान वर्गका ईरानी, निज़ामुल्मुल्क सत्ताधिष्ठित था, जिसने ईरानी परम्पराओंको विकसित करनेमें अपनी पूरी शक्ति ख़र्च की।

यहाँपर इस बातकी ओर संकेत किया जा सकता है कि शक ८०० के बाद बगदादकी राजधानीमें अब्बासी ख़लीफ़ाओंकी वही अवस्था रही, जो शक १६२९ में मुग़ल सम्राट्

औरंगजेबकी मृत्यु होनेपर, दिल्लीके मुग़ल बादशाहोंकी दिल्लीमें रही। मुगल सत्ता शक १७८० में नष्ट हुई। औरंगजेबकी मृत्युके बाद वह डेढ़सौ वर्षों तक चलती रही। सम्राटोंके नाम तो शाह आलम (जगत् का राजा) होते रहे। परन्तु उनको न सत्ता प्राप्त थी, न वह पुराना वैभव। उनके सत्तावैभवहीनताकी कहावत दिल्लीके आसमन्तात्में मशहूर थी—"**शाहे-आलम्, अज़ दिहली ता पालम**"। आजका एअरपोर्ट पालमही यहाँपर अभिप्रेत है (एपिग्राफिका इण्डो मोस्लेमिका सन १९१३–१४, पृष्ठ ३८)। इस कहावतमें इन बादशाहोंके विशालराज्यवाही नाम और उनकी सत्ताहीनताका जनताने विरोध स्पष्ट कराया है। दक्षिणकी बहमनी राजवंशकी सत्ताका यही हाल रहा। शक १४०३ में बहमनी राज्यके प्रसिद्ध महामंत्री महमूद गावानकी मृत्युके पश्चात् बहमनी नरेशोंकी यही दुरवस्था रही। बगदादमें अब्बासी ख़लीफ़ाओं को सत्ता बाह्यतः शक ११७८ तक चली जब कि उसका अंत चंगीज़ खानके पोते हुलागूके हाथों हुआ। ३०० वर्षोंकी इस सुदीर्घ कालसीमामें अरब ख़लीफ़ा केवल नामधारी और राजकीय सत्तासे संपूर्णतया वंचित थे।

## साहित्यपर परिणाम

अरब आक्रमणके बाद ईरानी मुसलमानोंको जिस क्रूर, अमानुष धर्मच्छलका मुक़ाबला करना पड़ा, जिस सामाजिक अधोगतिकी गर्तामें जीवन व्यतीत करना पडा, और जिन्होंने एक उच्च मानवी संस्कृति निर्माण की थी, उनको अपनीही मातृभूमिमें राजकीय दास्य, दीनता और अगतिकताका जीना जी कर कालक्रमणा करनी पडी, उसके ईरानियोंके साहित्यिक जीवनमें कुछ प्रभाव परिणामित होना इतिहास दृष्टिसे अपरिहार्य था।

ऊपर कहा जा चुका है कि अब्बासी ख़लीफ़ा कमज़ोर होनेपर ईरानमें ५–६ छोटी बड़ी ईरानियोंकी राज्यसत्ताएँ स्थापित हुई। लेकिन वह चिरजीवी न बन सकीं। लगभग सौ वर्षोंके अंदरही ख़ुरासानके सामानी वंशकी सत्ता और ख़ुद बगदादमें स्थापित बुवय्या ख़ानदानकी सत्ता नष्ट हो गई। ईरानपर तुर्कोंने क़ब्ज़ा कर लिया। मालूम होता है कि गो यह तुर्क टोलियाँ बड़ी बहादुर थीं, लेकिन उनकी कोई प्राचीन सुस्थापित संस्कृति नहीं थी। ईरानके मुसलमानोंसे संपर्क आनेके पहले यह तुर्क बौद्धधर्मके अनुयायी थे। लेकिन ईरानियोंके संपर्कसे और ईरानमें सत्ता प्राप्त करनेपर उन्होंने इस्लाम धर्मका स्वीकार किया। तुर्कोंके इस धर्मान्तरमें अरबों वा ईरानी मुसलमानोंके ज़ुल्म वा छलका प्रश्न निर्माण होना ऐतिहासिक दृष्टिसे जरा कठिनही है। अरब ख़लीफ़ाओंको कोई सत्ता प्राप्त नहीं रही थी। ईरानियोंकी सत्ताभी बहुत कालतक चिरजीवी न बन सकी थी। लेकिन तुर्कोंने बड़ी संख्यामें धर्मान्तर कर लिया था। जब ईरानकी सत्ता उनके हाथोंमे आई तो सब तुर्क मुसलमान बन चुके थे। उनके तत्कालीन नामोंको देखनेसे मालूम होता है कि उनके अधिकतर, बहुसंख्याक नाम तुर्की भाषाके थे। मुसलमान होते हुए भी अरबी भाषाके नाम स्वीकृत करनेकी उनमें प्रवृत्ति बहुत कम थी। इसके बावजूद भी यह बात इतिहासनिहित है कि यह नवमुस्लिम ईरानी तुर्क इस्लाम धर्मके सनातनी गुटके अनुयायी थे। वह कट्टर धर्माभिमानी होते थे। ई. जी. ब्राऊनने कई विद्वानोंके अनुसंधानका उल्लेख कर, यह सत्य अपने साहित्येतिहासके द्वितीय खण्डमें पुनरुच्चारित किया है। वह कहता है—

Like nearly all Turks, the Seljuqids were, as soon as they embraced Islām, rigidly orthodox. The author of the Rāhatus-Sudur relates that the Imām Abu Hanīfa, the founder of the most widely-spread of the four orthodox

schools, once prayed to God that his doctrine might endure, and that from the Unseen World the answer came to him, "Thy doctrine shall not wane so long as the sword continues in the hands of the Turks"; whereon the aforesaid author exultantly exclaims that "in Arabia, Persia, Rūm (Turkey in Asia), and Russia the sword is indeed in their hands" (he wrote in A.D. 1202-3); that religion, learning, and piety flourish under their protection, especially in Khurāsān; that irreligion, heresy, schism, philosophy, and the doctrines of materialism and metempsychosis have been stamped out, so that "all paths are closed save the Path of Muhammad." (p. 168).

फार्सी भाषाकी पहली मस्नवी-आख्यानक काव्य सामानी नरेशोंके राज्यकालमें रूदकीने लिखनेका उल्लेख इसके पूर्व हो चुका है। दक़ीक़ी और फ़िर्दौसी तुर्कोंके राज्यकालमें अपनी साहित्यकृतियाँ निर्माण कर रहे थे। इन कवियोंमें ईशस्तुति तो की गई है। शायद मुहम्मद पैग़ंबरके नामका भी उल्लेख हो। परंतु यह तीनों कवि ईरानी संस्कृति और प्राचीन ईरानी परम्पराके अभिमानी होना अनुसंधानसे पाया गया है। दक़ीक़ी तो ज़रतुष्ट्र धर्मानुयायी होना विद्वानोंने अपनी खोजसे बतलाया है। फ़िर्दौसी अरब विरोधी और अरबी भाषाका विरोधक होना अब विद्वन्मान्य हो गया है। उसने अपना फार्सी महाभारत अर्थात् शाहनामा प्राचीन धर्म और संस्कृतिके पुनरुज्जीवनके लिए लिखा। वह उसमें परिपूर्णतया यशस्वी हो गया है। उसकी मूल महत्त्वाकांक्षा और हेतु भी सफलित हो गए हैं। अपने ग्रंथमें उसने इरादेसे अरबी शब्दोंको टाल दिया है। बहुतही कम अरबी शब्दोंका प्रयोग उसने किया है। फार्सी मस्नवीके इतिहासमें सनाईही पहला कवि है जिसने पारिभाषिक संज्ञाके विशिष्ट अर्थ और ढांचेके रूपमें देवतास्तुतिका अवलंब किया है। उसने हदीक़तुल्हक़ीक़त नामी मस्नवी शक १०५३ में लिखी है। उसीने मुहम्मद और सामयिक नरेशका वर्णन पारिभाषिक देवतास्तुतिके रूपमें प्रस्तुत किया।

हम यहाँपर यह प्रतिपादन करना चाहते हैं। फार्सी साहित्यमें देवतास्तुतिके अविभाज्य अंगके रूपमें मुहम्मद पैग़ंबर और समसामयिक नरेशकी स्तुति यह दोनों बातें ईरानमें स्थापित हुई विदेशी राजसत्ता और विदेशी धर्मके कारण अपनाई गई हैं। गो ईरानमें अब्बासी ख़लीफ़ाओंकी सत्ता नाममात्र थी, तो भी विदेशी सत्ताधीशोंने योग्य समझा कि ख़लीफ़ाओंका नामोच्चारण किया जाए। उनकी सत्ताको नाममात्रही क्यों न हो याद किया जाए। यही रिवाज साहित्यिकोंमें सुप्रस्थापित रहा और यह देवतास्तुतिका एक आवश्यक अंग बन गया। ईरानमें नवमुस्लिम ज़िम्मियोंका अथवा मवालियोंका जो हीन, दीन और पददलित स्थान था, उसीके फलस्वरूप मुहम्मदकी स्तुतिभी देवतास्तुतिका विशेष अंग बन कर सुस्थित हो गई।

ईरानमें अरबों और तुर्कोंकी सत्ता शतीयोंतक चलती रही। इन्ही विदेशी राजाओंके कृपाछत्रमें फार्सी साहित्यका विकास होते आया है। इस विशिष्ट परिस्थितिके कुछ परिणाम भी दिखाई देते है। उनमें उल्लेखनीय बात यह है कि फार्सी साहित्यिक धन कमानेके लिए अपनी कविताएँ लिखते, और साहित्य निर्माण करते थे। यूं तो हर देश और हर कालमें अधिकतर साहित्य राजसत्ताके आश्रयसे ही निर्माण होते आया है। हर भाषाके विकासमें यह सत्य कम अधिक रूपमें दिखाई देता है। परन्तु फार्सी साहित्येतिहासमें इस राजाश्रयपर अवलंबित होनेकी मनोवृत्ति पराकोटिको पहुँच चुकी थी। केवल रूपयोंके लिए ग़ज़ल ,क़सीदे लिखना कई कवियोंका व्यवसाय बन गया था। अश्लाघ्य साहित्यिक प्रथाकी निंदा कई कवियोंने की है। ब्राऊनने

अपने साहित्येतिहासमें ऐसे कवियोंकी ओर अंगुलिनिर्देश किया है। नासिरे खुस्रौ कविने अपनी मस्नवी रोशनाई नामामें (लेखनकाल शक ९७१—हिजरी ४४०) ऐसे कवियोंकी निंदा की है। ऐसे धनार्थी कवियोंकी निंदा करते हुए उसने कहा कि उनकी कवितामें सोना और चांदी प्राप्त करनेके सिवा और कोई उच्च ध्येय नहीं हैं। नासिरे-खुस्रौ निर्भय-वृत्तिका कवि था। उसने कालपूजकों और राजाओंकी मिथ्यास्तुति करनेवालोंकी अपनी कठोर भाषामें निर्भत्सना प्रस्तुत की है। (द्वितीय खंड, पृष्ठ २४१, २४६)

रशियन विद्वान् झुकोव्ह्स्कीके रशियन ग्रंथके आधारपर ब्राउनने गणितशास्त्रज्ञ और कवि अन्वरीके (मृत्यु शक १११०—हिजरी ५८६) संबंधमें लिखते हुए बतलाया है कि कवि अन्वरीकी ग़ज़लोंके आधारपर तत्कालीन कविवर्गकी सामाजिक स्थितिकी जानकारी मिल सकती है। शुद्ध और प्रसादयुक्त काव्य लिखनेके बजाए विदेशी तुर्की नरेशोंके दरबारी कवि केवल तुकबंदी किया करते थे। उनके कार्यकी तुलना आजकलके वृत्तपत्रव्यवसायिकोंसे की जा सकती है। यह कवि अधिकतर नरेशोंके साथीदार और मिथ्यास्तुतिवादी हुआ करते थे। दरबारी कवि स्पष्टतया धन चाहता था। और धनही के लिए सरस्वतीकी कृत्रिम पूजा बाँधता था। राजाकी यह अपेक्षा रहा करती थी कि कवि राजाके हर दुःख और सुखमें शरीक रहे, गोया ऐसे प्रसंगोंपर हमेशा अपनी काव्यलेखनी चलाता रहे। अगर बादशाह आकाशमें कलाधारी चंद्रमाको प्रथम देखे, या वह अपघातवशात् घोडेसे गिर पडे, या पोलो खेलते समय गेंद बुरी तरहसे फेका जाए, अथवा बादशाहको रणांगणमें शिकस्त खानी पडे, बादशाह और सरदारोंकी अपेक्षा होती थी कि दरबारी कवि इन घटनाओंपर एक उत्कृष्ट साहित्यकृति निर्माण करे। (द्वितीय खंड, पृ. २७३)

### कृत्रिम भाषाशैली

दूसरा साहित्यिक प्रभाव फार्सी भाषामें कृत्रिम भाषा शैलीका प्रादुर्भाव है। सामानियोंके राज्यकालके रूदकी, दक़ीक़ी, फ़िर्दौसी आदि कविश्रेष्ठोंमें फार्सी भाषा सहजसुन्दर, आशयघन, प्रौढ एवं स्वभावनिष्ठ है। परन्तु तुर्कोंके दरबारस्थित कवियोंके हाथों उसमें कृत्रिमताका अंश बढता गया। ब्राऊनने अपने साहित्येतिहासके द्वितीय खंडमें इस भेदको स्थान स्थान पर स्पष्ट करनेकी चेष्टा की है। विष्णु शर्माकृत संस्कृत भारतीय पंचतंत्रके अनुवादरूप इब्न मुक़फ़्फ़ाका अरबी ग्रंथ ( लेखन शक ६७२ ), नस्रूल्लाके कलीला व दमना (लेखनकाल शक १०६६— हिजरी ५३९) और उत्तरकालीन हुसेन वाइज काशिफी (शक १४०० के लगभग) इन तिनों अनुवादोंकी तुलना प्रस्तुत करते हुए ब्राऊनने (द्वितीय खंड, पृ. ३५० से ३५३) कृत्रिमताके विकासकी ओर अंगुलीनिर्देश किया है। इस कृत्रिमताका दर्शन नस्रूल्लाके अनुवादही में हो जाता है। किन्तु काशिफ़ीके अन्वारे-सुहैलीमें वह कृत्रिमता पराकोटिको पहुँच कर रसिकोंकी निंदापात्र बन गई थी। ब्राउनका एक उद्धरण फलदायी होगा (द्वितीय खंड, पृ. ३५२-३)

"....but in general it (*Anwār-i-Suhaylī*) is full of absurd exaggerations, recondite words, vain epithets, far-fetched comparisons, and tasteless bombast, and represents to perfection the worst style of those florid writers who flourished under the patronage of the Tīmūrids in North-Eastern Persia and Transoxiana during the fifteenth and sixteenth centuries of our era, and who, unfortunately, passing with Bābar into India, became models and exemplars to the bombast-

loving people of that country. This is one and perhaps the chief reason why good and chaste Persian has very rarely been produced or admired in Hindustān, where we find a Baboo Persian precisely similar to the Baboo English which, in the immortal pages of the *Biography of Hon'ble Chief Justice Mookerjee*, has afforded us such exquisite material for mirth."

नस्रूल्लाके अनुवादके कलीला व दमनामें भी कृत्रिमताका काफी अंश पाया जाता है। नस्रूल्लाने यह ग्रंथ शक १०६६ में लिखा था। ब्राउनने औफ़ीकृत लुबाबुल् अलबाब भी अनावश्यकतया कृत्रिम होनेकी शिकायत की है (द्वितीय खंड, पृ. ४७८)। इस शिकायतमें ईरानके आधुनिक महापंडित मुहम्मद क़ज़वीनी भी सहभागी हैं जो लुबाबके ब्राऊनके साथ सहसंपादक हैं। लुबाब फार्सी भाषाका, उपलब्ध ग्रंथोंमें, सर्वप्रथम साहित्येतिहास है। इसके पूर्व निज़ामी अरूज़ी समरकंदीने शक १०७७ में (हिजरी ५५०) में चहार मक़ाला (चार प्रबंध) नामी अपने ग्रंथमें शास्त्रज्ञों और कवियोंकी जीवनियोंकी कुछ घटनाएँ लिखी हैं। उसकी भाषा सरल, अनलंकृत, विषयानुरूप और प्रसादमयी है। भारतमें जितना भी फार्सी साहित्य निर्माण हुआ है उसमें कृत्रिमताका अंश पर्याप्त रूपमें पाया जाता है। मुग़ल सम्राट् अकबरके दरबारी साहित्यिक अबूलफ़ज़ल इस कृत्रिम भाषाशैलीके मुकुटमणि कहे जा सकते हैं। दक्षिणकी आदिलशाही, क़ुतुबशाही आदि राज्योंके फार्सी इतिहास लेखक इसी कृत्रिमताके शिकार हैं। आदिलशाही नरेश द्वितीय अली आदिलशाहके फार्सी चरित्रलेखक नूरूल्लाका भी यहाँ कृत्रिमतासे परिपूर्ण होनेके लिए उल्लेख किया जा सकता है। मुहम्मद क़ासिम बिन हिंदुशाह फ़िरिश्ताका इतिहास लोकप्रिय होनेका एक कारण यह भी है उसका लेख नसरल और शब्दावडंबरसे मुक्त है। यह कहनेमें कोई आपत्ति नहीं कि फार्सी भाषाकी इस कृत्रिमताके कई कारणोंमें, ईरानमें विदेशी शासकोंकी चिरकालीन सत्ता और इन विदेशियोंको शब्दावडंबरसे खुश करनेकी साहित्यिकोंकी मनोवृत्ति भी एक कारण है।

## ३. दक्खिनी हिन्दी मस्नवीका विकास

अमीर खुस्रौ (मृत्यु शक १२४७) के पूर्वभी एक दो विद्वानोंके कुछ वाक्य खडीबोलीमें लिखे हुए मिलते हैं। परन्तु खुस्रौही ऐसे लेखक है, जिनकी कई पहेलियाँ (संस्कृत प्रहेलिकासे तद्भवरूप) हमतक पहुँची हैं। परन्तु यह लोकप्रिय कहावतरूप साहित्य होनेसे अनेक रूपोंमें उथलपुथल होता और प्रक्षिप्त बनता रहा है। इस लिए भाषावैज्ञानिक अध्ययनके लिए खुस्रौकी कई पहेलियाँ अतीव अनुपयुक्त हैं। बहमनी राजवंशके शक्तिशाली और वैभवसंपन्न नरेश फ़िरोज़शाह बहमनीके राज्यकालमें दिल्लीनिवासी ख़्वाजा बन्देनवाज़ गेसू दराज़ नामी साधू-सूफ़ी अपनी आयुके ८० वें वर्षमें (शक १३२१), देवगिरीमें कुछ वर्ष ठहर कर, गुलबर्गा राजधानीमें पहुँचे। वहाँपर वह और २४ वर्ष जीवित रहे और शक १३४४ में (हिजरी ८२५) उनका देहान्त हुआ। वह कवि नहीं थे, लेकिन उनके तीन चार छोटे छोटे गद्यरूप ग्रंथ-रिसाले धार्मिक, भक्तिपरक विषयोंपर प्राप्त और प्रकाशित हैं। **मिअ्राजुल आशिक़ैन** सबसे बडा है जो प्रकाशित हो चुका है। **शिकारनामा** एक वेदान्तपरक कूट है। अन्य दो दुर्रुल-असरार और तिलावतुल-वजूद अभी अप्रकाशित हैं। बन्देनवाज़के लेखनका हेतु भक्तिप्रसार और धर्मप्रचार रहा है।

कुतबशतक (लेखन अनुमानित शक १४००) नामकी एक कृति डॉ. माताप्रसाद गुप्तने हालमें (शक १८८९) प्रकाशित की है। यह छोटासा गद्यपद्यमिश्रित ग्रंथ हिन्दी भाषाके

भाषिक और साहित्यिक इतिहासाध्ययनमें अत्यन्त उपयुक्त है। दक्खिनी हिन्दीके अध्ययनमें भी इसका अतीव महत्त्व है। इस भाषाकी अनेक भाषावैज्ञानिक गुथ्थियोंके सुलझानेमें उसका उपयोग है। लेकिन वह मस्नवी नहीं है, इस लिए अधिक चर्चा अनावश्यक है।

**पहली मस्नवी**

दक्खिनी हिन्दीका सर्वप्रथम कवि होनेका सम्मान निज़ामी नामी बीदरके एक लेखकको प्राप्त है। यह निज़ामी बीदर राजधानीस्थ बहमनी नरेश तृतीय अहमदशाह अर्थात् निज़ाम-शाह बहमनीके राज्यकालमें हो गुज़रा है। इस राजाका काल केवल दो वर्षोंका शक १३८२ से १३८४ रहा है। इसी राजाके नामपर से शायद कविने अपना कविनाम-तख़ल्लुस निज़ामी स्वीकृत किया है। उसकी कृतिका नाम "**कदमराव और पदम**" है। यह ग्रंथनाम केवल भारतीय साहित्यपरम्पराका स्मरण देता है। फार्सी परम्परा भी यही है कि काव्यविषय बने नायकनायिकाका नाम काव्यके लिए स्वीकृत हो। **विक्रमोर्वशीयम्** अथवा **फर्हाद व शीरीन्** इसी परम्पराके नाम हैं। निज़ामीके इस काव्यनामसे यह भी पता चलता है कि उस ज़मानेमें दक्षिणकी मुसलमान राज्यसत्ताओंमें मराठा सेनानियोंका काफ़ी ऊंचा स्थान रहा है। इस मस्नवीके केवल ८६५ बैत वा द्विपंक्तियाँ हैं। उसकी मूल पांडुलिपि पाकिस्तानमें, परन्तु अभी अप्रकाशित है। नसीरूद्दीन हाशमीने कहा है कि यह समझनेके लिए बहुत मुश्किल है। इसका अर्थ केवल यही लिया जा सकता है कि **कदमराव और पदम** मस्नवीमें हिन्दी, संस्कृत आदि आर्यभारतीय शब्दोंका बाहुल्य है। उसके दो बैत इस प्रकार हैं:—

**शहनशह बड़ा शाह अहमद कुंवर**
**परतपाल संसार करतार आधार।**
**अधींस ताज का कौन राजा भुजंग**
**कुंवर शाह का शाह अहमद भुजंग।**
(तारीख़े-अदबे-उर्दू, अलीगढ़, पृ. १८४)

**भोगबल** नामी एक छोटीसी मस्नवी क़ुरेशी नामी बीदरनिवासी कविने लिखी हुई उपलब्ध है। यह काव्य कोकशास्त्र पर आधारित है। काव्य अभी अप्रकाशित है। उसकी प्रति सालरजंग ग्रंथालय हैद्राबादमें सुरक्षित है। कवि क़ुरेशी महमूद शाह बहमनी (शक १४०४ से १४४२) के राज्यकालका है। क़ुरेशी ने अपनी भाषाको हिन्दुई और दक्खिनी कहा है। उसके कुछ बैत निम्नप्रकार है:—

**रख्या नावुं बिगार सी भोगबले**
**जो चातुर करे भोग दिन दिन आगले।**
**कि बीदर गर अज़ अहदा यक फ़क़ीर**
**सो शाअि़र क़ुरेशी लिख्या यो जमीर।**
**बरीद शाह महमद के दौर भी**
**किए हिन्दुई को क्या कवन फारसी।**
**सो इस शाह के दौर बीदर मुक़ाम**
**यो शाअि़र किया नज़म दखनी तमाम।**

**नौ-सर-हार** (नव सरोंवाला हार, माला) नामी एक बड़ी मस्नवी एक सूफ़ी शाह अश्रफ बियाबानीने शक १४२६ (हिजरी ९०९) में लिखी, जो उपलब्ध, परन्तु अभी अप्रकाशित है। उसकी दो हस्तलिखित प्रतियाँ मौजूद हैं, एक हैदराबादके इदाराए-अदबियाते-उर्दूमें और दूसरी

अलीगढ़में, अंजुमने-तरक़्क़ीए-उर्दूके ग्रंथालयमें। हैद्राबादकी प्रति सुवाच्य अक्षरवाटिकामें लिखी गई है। अलीगढ़की प्रति इतनी सुवाच्य नहीं है। अश्रफ जालनामें (ज़िला औरंगाबाद, महाराष्ट्र) रहा करते थे। यह मस्नवी वहीं पर लिखी गई है। शाह अश्रफने ७१ वर्षोंकी आयु पाई, उन्होंने शक १४५१ (हिजरी ९३५) में देहान्त किया। उनकी क़बर जालना (फ़ुक़राबाद) में स्थित है। अश्रफने अपनी भाषाको हिन्दुई कहा है।

**नौ-सर-हार धऱ्या नावुं　　　जाए ढालो अब हर ठावुं।**
**नज़म लिखी सब मोज़ूं आन　　　यूं सब हिन्दुई कर आसान।**
**यो नौ बाबां नौ-सर-हार　　　क़ीमत उस की लाक हज़ार।**
**अशरफ लीखे यो बखान　　　तौहीद हक़ की मोज़ूं आन।**

अश्रफने अपनी मस्नवीमें ग्रंथलेखनकाल भी दिया है।

**बाजां जो कय तारीख साल　　　बाद अज़ नबी हिजरत साल।**
**नौ सौ होवे अगले नौ　　　यो दुख लिख्या अश्रफ तू।**
**नावुं धऱ्या इस नौ-सर-हार　　　वले यो सब दुक का भार।**
**अंख्यां अंजू सूं धो धो　　　लिख्या दुक में यो रो रो।**
**यक यक बोल यो मोज़ूं आन　　　तक़रीर हिन्दुई सब बखान।**

अश्रफकी यह मस्नवी पर्याप्त बड़ी है और काफ़ी पुरानी रचना होनेसे उसमें दक्खिनी हिन्दीके भाषावैज्ञानिक अध्ययनके लिए भरपूर मालमसाला भरा पडा है। दक्खिनीके प्रारम्भिक परसर्गोंका प्रयोग इस मस्नवीमें मिल जाता है। दुर्दैववशात् वह अभी तक अप्रकाशित है। अश्रफमें काव्यशक्ति भी अच्छी पाई जाती है। उसकी वर्णनशैली प्रभावी है। उसके शब्दचित्र मनोहारी है।

शाह मीरांजी बीजापूरनिवासी एक सूफ़ी साधू हैं जिनकी तीनचार मस्नवियाँ उपलब्ध हैं। उनको शम्सूलउश्शाक़ (प्रेमिकोंका सूर्य, साधकोंका सूर्य) की उपाधि प्राप्त है। उनका देहान्त शक १४८५ में (हिजरी ९७०) होना हालिया अनुसन्धानसे सिद्ध है। गोया वह महाराष्ट्रके प्रसिद्ध सन्त और कवि प्रतिष्ठाननिवासी एकनाथके पूर्ववर्ती हैं। एकनाथने अपनी जीविनयात्रा शक १५२१ में पूरी की थी। मीरांजीने भक्तिका प्रसार किया। इसी हेतुकी पूर्तिके लिए उन्होंने काव्यलेखन किया। यह दक्खिनी हिंदीके पहले कवि हैं जिसमें मराठी शब्दावलीका अनुपात काफ़ी बहुलतासे पाया जाता है। इसका कारण यह प्रतीत होता है कि इनका जीवन ग्रामनिवासी जनसाधारणमें व्यतीत हुआ। और इसी वस्तुस्थिति का प्रतिबिम्ब उनकी भाषामें दिखाई देता है। उनकी एक रचना **शहादतूत्तहक़ीक़** (सत्यदर्शन) है। उसकी कुछ पंक्तियाँ है:—

**इस नाम है तहक़ीक़　　　सुन शहादतुत्तहक़ीक़**
**इस का मग़ज़ दरिया　　　जे देख नित रहे भरिया।**
**सब हीरों केरी खान　　　ना मोत्यों केरी वाने।**
**जे ग़वास बोध सेवे　　　तो सालिम सोध लेवे।**
**जे होवेगा मछारा　　　क्या जानेगा बिचारा।**

शाह मीरांजीने इस खड़ीबोलीको हिंदी भाषाके नामसे याद किया है। इस भाषाके प्रयोजनका हेतुभी उन्होंने स्पष्ट किया है। उनका उपदेश जनसाधारणके लिए था और वह

अरबी वा फार्सी नहीं जानते थे। इस लिए उन्होंने विचार प्रसारके लिए इस हिन्दीका अवलंबन किया है। यही विचारधारा सब नव्य आर्यभारतीय भाषाओंके मराठी, गुजराती, बंगाली, असमी आदिके सन्तोंनें स्वीकार कर ली थी। इतनाही नहीं २५०० वर्ष पूर्व भगवान् बुद्धने अपना धार्मिक विचार जनसाधारणकी भाषा पालीमें प्रसारित करनेका निर्णय किया था। महाराष्ट्रके महानुभाव पंथकी यही धारणा थी। इस लिए अमीर खुस्रौने सब आधुनिक आर्यभारतीय भाषाओंको तालीमे-खुदाई, ईश्वराराधनाके साधनरूप बताया और उनकी निन्दा न करनेकी तंबीह-गंभीर सूचना दी है। अमीर खुस्रौ (शक १२४०) कहता है :—

वांचि जबानहाए दिगर बूदह हमह
अज़ हदे-ख़ुद राह न पैमूदह हमह।
हस्त चू तअ़लीमे-ख़ुदाई आन हमह रा
गुफ़्तने-बद नीस्त सज़ा आन हमह रा।

(नुह सिपिह्‌र, अध्याय ३, श्लोक ५.६२-३)

मराठीके आद्य कवि मुकुंदराजने (शक १११०) भी इसी ढंगसे मराठीको अपनानेकी जनतासे सिफ़ारिश की है। शाह मीराँजी कहते हैं :—

| | |
|---|---|
| यों गुरुमुक पंद पाया | तो ऐसे बोल चलाया। |
| जे कुई अच्छे ख़ासे | इस बयान केरे प्यासे। |
| वे अ़रबी बोल न जाने | ना फ़ारसी पछाने। |
| यो उन कूं बच्चन हेत | सन्त बूझें रीत। |
| यो देकत हिन्दी बोल | पन मअ़नी हैं निपतोल। |
| कडवे पन सूरस | फल पाके जूं फनस। |
| ना देकत बुरा [न] लेखो | ले मग़ज़ चाक देखो। |
| जे मग़ज़ मीठा लागे | तो क्यूं मन इस थे भागे। |
| त्यूं इस में अरत नीच | सब क़ुरान केरे बीज। |
| वो मग़ज़ मअ़नी लेवो | सब छाल छोड देवो। |
| या वो देखे छारा (झारा) | उस माटी का पसारा। |
| ना माटी उस को हान | वो राखे समेट आन। |
| यो छान सुन्ना लेवे | और बाजे नाक देवे। |
| यूं भाका माटी जानो | ज़र मअ़नी दिल में आनो। |
| तो जिस कूं भावे जोड | ना जासी यो गुन छोड। |
| है कडवां केरा हीरा | घुड ऊपर पडिया नीरा। |
| कुइ सुजान भागवान पावे | तो क्यूं ना लेह उचावे। |
| घुड भाका छोड दीजे | चुन मअ़नी मानिक लीजे |

इस उद्धरणमें दक्खिनी हिन्दीके प्रारंभिक सूफ़ी कवियोंका काव्यको अपने प्रचार कार्यका साधन बनानेका और हिन्दीकी ओर देखनेका दृष्टिकोन सामने आ जाता है। यही ख़्वाज़ा बन्देनवाज़ आदिकी भी दृष्टि थी। धर्मप्रसारका एक प्रभावी साधन बन करही आरम्भमें हिन्दी दक्षिणावर्तमें बढ़ती रही। इसके पश्चात् वह धीरे धीरे साहित्यका भी साधन बन गई। आरम्भकालके सभी सूफ़ियोंमें यह दिखाई देता है।

शाह मीराँजीकी दूसरी धार्मिक मस्नवी ख़ुशनामा है और उसमें १७० दोहे काव्यबद्ध हैं।

**इस ख़ुशनामा धऱ्या नाम दोहा यक सौ सत्तर**
**दिसा ज्यादा पर है सूने तो लहे ख़ुशीका छत्तर**

इसके बाद ख़ुश नामी एक लड़कीका—जो काव्यविषयका एक पात्र है, चरित्र वर्णन किया गया है। यह लड़की ऐहिक जीवनसे उदास, संसारसे निष्काम और ईश्वर ध्यानमग्न बतलाई गई है। ईश्वरभक्त लड़की-ख़ुशनूदका चरित्र देखनेसे यह बात याद आ जाती है कि मीराँजीके सामने महाराष्ट्रकी महिला संत मुक्ताबाईका चरित्र अवश्यमेव रहा है। ख़ुशनूदका पूरा चरित्र ज्ञानेश्वरभगिनी मुक्ताबाईके चरित्रके ढांचेमें ढाला गया है। दोनोंभी विरक्त, दुनयावी-प्रापंचिक बातोंसे निष्काम हैं। एक तिथिके अनुसार मुक्ताबाईको १७ वर्ष ७ मास और २६ दिनकी आयु प्राप्त थी और ख़ुशनूदकी आयु मीराँजीने १७ वर्ष १ मास और ९ दिनकी बतलाई है। आयुर्मर्यादामें भी दोनों पात्र बिल्कुल समान हैं। मुक्ताबाईका काल मीराँजीसे २६६ वर्ष पूर्वका है। मुक्ताबाईका चरित्र आजभी महाराष्ट्रके आबालवृद्धोंकी वाणीपर नाचता दिखाई देता है। शाह मीराँजी उस लड़की-ख़ुशके गुरु-पीर हैं। इस ख़ुशनामेमें सद्गुरुकी कसौटी बतलाई गई है।

**फ़िअ़्ल सुहावा पंथ अल्ला का जिस राह गए रसूल**
**गुरुमुक पंथ पछानों सो है जे जीवन का मूल**
**जिस मारग थें जीव संचरे सो ही मारग सार**
**मारग छोड चले कुमारग तन का हीन बिचार**
**करें जभीं वो तीरत पट्टन योग अभासें ध्यान**
**पांचों चीज रया सूं राखें क्यों कर दीजे मान**
**लुंचत मुंडत फिरें फुकट तिरत करें या हज्ज**
**थान देक जे देवें मान वो भी मूरख निलज**

निम्नकी पंक्तियोंमें ईश्वरकी कर्तुमकर्तुमन्यथाकर्तुम् शक्तिका वर्णन देखिए—

**एकस माटी मोली देवे एकस माटी बाज**
**कीतों भीक मंगावे कीतों देवें राज**
**कीतों पाट पितंबर देता कीतों सिर की लाया**
**कीतों धूप तलावे कीतों ऊपर छाया**
**कीते पलंग निहाली ऊपर कीते पडे तल्हार**
**कीतों कूं धड कोंपट नाहीं कीतों कूं धवलार**
**पकड भिकारी तख़त बिठावे राजे राखे गर्द मिलावे**
**फ़हमंद्यां कूं करे दिवाने सूख्यां कूं लई दुक में भाए**
**माता जे बालक थें रूसी जाना उन्हें किधर**
**आप जिस मारग लासी मीराँ मैं जावूं तिधर**

इन कुछ पंक्तियोंमें फुकट, धड, कोंपट, लई आदि केवल मराठी शब्द पाए जाते हैं, जो ब्रज, अवधी आदि अन्य हिन्दी भाषाओंमें अप्राप्य हैं। मीराँजी, जैसा कि नामसे मालूम होता है एक

साधारण सूफ़ी थे। उसके बेटे बुर्हानुद्दीन जानम और पोते अमीनुद्दीन आला भी सूफ़ी और कवि थे। इस खानदान और विशेषकर मीराँजीकी, स्वर्गीय डॉ. अब्दुलहक़ने बड़ी बढ़ा चढ़ाकर स्तुति की है। लेकिन मालूम होता है कि मीराँजी वा जानमको बीजापूरके लोकजीवन या राजदरबारमें बहुत ऊँचा स्थान प्राप्त नहीं था। इस कालमें बीजापूरमें दक्खिनीकी सरिता पूरे ज़ोरोंसे बह रही थी। लेकिन इन तीनोंभी सूफ़ी कवियोंका उल्लेख किसी महत्त्वपूर्ण काव्यमें नहीं पाया जाता। ख्वाजा बन्देनवाज़का उल्लेख कई कवियोंने किया है। मीरांजीको यह प्रतिष्ठा प्राप्त नहीं।

मीराँजीके ही कालमें क़ुतुबूद्दीन फ़ीरोज़ बीदरीका वास्तव्य प्रथमतः राजधानी बीदरमें पाया जाता है। फ़ीरोज़के लब्धप्रतिष्ठित होनेका उल्लेख मिल जाता है। यह पता चला है कि वह शक १४८८ में (हिजरी ९७३) जीवित था। उसकी केवल एक छोटीसी मस्नवी पिरतनामा १२० बैतोंकी प्राप्त है। उसका सम्पादन डॉ. मसऊद हुसेन खानने, हैदराबादसे क़दीम उर्दू नामी ग्रंथ (शक १८८८) में किया है। इस मस्नवीकी संहिता प्रास्ताविकके साथ हमने राष्ट्रवाणी पूनासे (शक १८८९) प्रकाशित की है।

कालक्रमके अनुसार प्रस्तुत सम्पादित ग्रंथ इब्राहीमनामा आजतक के ज्ञात मस्नवी काव्योंके कवियोंमें पांचवे क्रमांकपर आता है। इसका कवि अब्दुल दिल्लीका निवासी है। वह स्वयं बतलाता है कि--

**ज़बां हिन्दुई मुंज, सो हूं दिहलवी**
**न जानूं अरब और अजम मस्नवी** ९९

उसका वतन दिल्ली है और उसकी भाषा हिन्दुई वा हिन्दी। वह अरबी वा फ़ार्सी भाषा नहीं जानता। आदिलशाहीमें हिन्दीके विद्वानोंको पुरस्कार और आश्रय प्राप्त था, इसी लिए अब्दुल बीजापूर--बिद्यापूर पहुँचा और द्वितीय इब्राहीम आदिलशाहकी इच्छाके अनुसार यह ७१२ बैतोंका राजचरित्र उसने प्रस्तुत किया। इस काव्यमें फार्सी अरबीके शब्द कम मात्रामें हैं। उसी प्रकार, शाह मीराँजी, अश्रफ़, ख्वाजा बन्देनवाज़की भाषामें जो मराठी संस्कार पाया जाता है वह अब्दुलकी वाणीमें बहुत कम दिखाई देता है। अब्दुलने यह मस्नवी शक १५२६ (हिजरी १०१२) में लिखी। वह स्वयं बतलाता है:--

**बचन फूल गूंद यूं बिराहीम नाम**
**किया सहस पर बरस बारा तमाम** ७११

सम्पादित रूपमें प्रकाशित होनेवाली मस्नवियोंमें यह सबसे पुरानी मस्नवी है।

शककी सोलहवीं शती दक्खिनी हिन्दीका सर्वोत्तम कालखंड है। इस शतीके साथ बीजापूरकी आदिलशाही और गोवलकुण्डकी क़ुतुबशाहीका अन्त हो जाता है और दक्खिनीके कवियोंका आश्रय खंडित हो जाता है। दिल्लीमें मुग़लसत्ता नामधारी और अस्थिरसी बन जाती है। शककी सतरहवीं शतीके उत्तरार्धमें दक्खिनीकी पुरानी और सुप्रतिष्ठित परम्परा खंडित हो जाती है। उसके स्थानपर भाषाका नया रूप आ जाता है। उसको दक्खिनीकी विशिष्ट शैलीके अभिमानियोंने उर्दू नाम दे दिया। दक्खिनीकी पुरानी परम्पराओंको उन्होंने तज दिया। लेकिन दक्खिनीकी पुरानी परम्परा, नए रुजहानों और दृष्टिकोनोंके बावजूद, बाक़र

आगाहके (मृत्यु शक १७२७—हिजरी १२२०) समयतक बराबर चलती रही। यह परम्परा विशेषकर बीजापूर, वेलोर, एलिचपूर, औरंगाबाद, हैद्राबाद, मद्रास और कर्नूलमें चलती रही है। इस तरह शककी सौलहवीं शती दक्खिनी हिन्दीका सुवर्णकाल समझी जा सकती है। दक्खिनीके महाकवियोंमें मुल्ला नुस्रती, वजही, गौवासी और हसन शौक़ीका समावेश किया जा सकता है। यह चार श्रेष्ठ कवि इसी शतीमें हो गुज़रे हैं। यह चारों ग़ज़ल, क़सीदा, रुबाई, मर्सिया आदि स्फुट काव्यप्रकारोंओंके स्वामी होनेके अतिरिक्त मस्नवीगो, कथानक काव्योंके लेखकभी हैं। कालक्रमके अनुसार वजही सर्वप्रथम है। उसके पश्चात् गौवासीने अपनी कवित्वशक्ति प्रकट की। उसका समसामयिकही हसन शौक़ी है। इन चारोंमें मुल्ला नुस्रती उत्तरकालीन और सर्वश्रेष्ठ भी है।

वजही कब पैदा हुआ और कितने वर्ष जीवित रहा, इसके सम्बन्धमें कोई जानकारी नहीं मिलती। लेकिन उसने अपनी मस्नवी क़ुतुब-मुश्तरी, क़ुली क़ुतुबशाहके अंतिम कालमें (शक १५३३—हिजरी १०२०) शक १५३१ (हिजरी १०१८) में लिख पूरी की थी। उसका दक्खिनी हिन्दी तथा उर्दू साहित्यका भी, शिरोमणिभूत गद्य ग्रन्थ सबरस शक १५५७ (हिजरी १०४५) में लिखा गया। वह ग्रन्थराज सबरस याने सर्व रसोंसे युक्त ग्रंथ, गद्यमें लिखा हुआ है। इससे मालूम होता है कि वजहीकी साहित्यसेवा २५, ३० वर्षोंसे अधिक कालतक चल रही थी, परन्तु दुर्दैववशात् उसके अन्य ग्रंथ वा स्फुट साहित्यभी उपलब्ध नहीं है। दक्खिनी हिन्दीके भाषाशास्त्रीय अध्ययन और ऐतिहासिक विकासके अभ्यासमें वजहीके यह दोनों ग्रंथ अतीव महत्त्वपूर्ण हैं। वजही आंध्रप्रदेशस्थ हैद्राबादी कवि था। उसके दोनों ग्रंथोंका सम्पादन और प्रकाशन उर्दू और हिन्दीमें हो चुका है। सबरसका सम्पादन डॉ. अब्दुलहक़ने शक १८५४ में प्रकाशित किया है। हिन्दी सम्पादन डॉ. श्रीराम शर्मा हैदराबादीने शक १८७७ में प्रकाशित किया है। दक्खिनी हिन्दीके कवियोंमें वजहीही एक ऐसा कवि है, जिसने मराठी शब्द, कहावतें, दैनंदिन जीवनके वाक्यप्रचार अपने दोनों ग्रंथोंमें प्रचुरतया प्रयुक्त किए हैं। दुर्दैवसे उपर्युक्त दोनों विद्वान् सम्पादक मराठी भाषाकी आत्मासे सुपरिचित नहीं हैं। इस लिए दोनों सम्पादन अतीव सदोष बने हुए हैं। क़ुतुब-मुश्तरीका हिन्दी सम्पादन एक हैदराबादी विदुषीने प्रस्तुत किया है। उनका दक्खिनीका ज्ञान नफ़ीके बराबर है। उनका सम्पादनक्षेत्रमें साहस करना आश्चर्यपूर्ण है। वजहीके यह दोनों ग्रंथ भाषिक अध्ययनके लिए एक नववस्तु भाण्डार हैं। उनकी शब्दसंपत्तिसे विशेषकर मराठीके व्याकरणविशेषों और मराठीके रोज़मर्राके प्रभावका अध्ययन विशेष फलदायी हो सकता है। कर्तृकारकमें प्रयुक्त होनेवाले परसर्गोंका प्रयोग विशेष अभ्यसनीय है। आजके थेट उर्दू या हिन्दी मुहावरोंके विरुद्ध 'ने' का कई प्रकारका उपयोग सबरसमें पाया जाता है। वजही दक्खिनीका एक उस्ताद है। यह क़यास करना कि उसने 'ने' का प्रयोग ग़लत तौर पर किया है अज्ञानपूर्ण कथनके बराबर होगा। 'ने' के प्रयोगपर हमारा एक प्रबन्ध अखिल भारतीय प्राच्य परिषदके (शक १८८८) अलीगढ़ अधिवेशनके इतिवृत्तमें प्रविष्ट किया है।

डॉ. अब्दुलहक़का क़ुतुब-मुश्तरीके प्राक्कथनमें किया गया निवेदन कि "चूंकि किताब क़दीम ज़बानमें है, इसमें बहुतसे ना-मानूस और ग़रीब (अपरिचित) अल्फ़ाज (शब्द) इस्तिमाल (प्रयुक्त) हुए हैं, जिनका समझना दुश्वार (कठिन) है। ख़ासकर थेट दकनी अल्फ़ाज़ जिन का समझना सबसे मुश्किल है" बिल्कुल सत्य है। यह ना-मानूस और ग़रीब अल्फ़ाज़ आर्य भारतीय शब्द सम्पत्तिके तद्भव और देशी शब्द हैं। दक्खिनीके ऐसे तद्भव और देश्य शब्दोंका सबरस एक बहुत बड़ा भाण्डार है जिसकी छानबीन अभी सुचारु रीतिसे नहीं हो पाई है।

क़ुतुब-मुश्तरीके सात आठ साल पश्चात् गोवलकुण्डा दरबारके राजकवि ग़ौवासीने अपनी प्रथम मस्नवी "मैना सतवन्ती" लिखी। उसकी दूसरी मस्नवी "सैफ़ुलमुल्क और बदीउलजमाल" शक १५४८ में (हिजरी १०३५) लिखी गई। पहली मस्नवी मुल्ला दाऊदके अवधी भाषाके सर्वप्रथम ग्रंथ "चंदायन" (लेखनकाल शक १२९९—हिजरी ७७९) की चंदा और लोरककी कहानीपर आधारित है। उसकी देवतास्तुतिमें किसी राजाकी प्रशंसा नहीं पाई जाती। ग़ौवासीकी तीसरी मस्नवी तोतीनामा है, जो संस्कृत शुकसप्ततिके किसी फार्सी अनुवादपर आधारित है। ग़ौवासीने यह ग्रंथ शक १५६१ में (हिजरी १०४९) लिखा। इस ग्रंथमें ४१५५ बैत हैं और यह शक १८६० में हैदराबादसे सालारजंग हस्तलिखित प्रकाशन समितीकी ओरसे एक छोटीसी प्रस्तावनाके साथ उर्दूमें प्रकाशित हुआ है। गोया यह केवल संहिता प्रकाशनही है। उसका चिकित्सापूर्ण अध्ययन अभीतक नहीं हुआ है। ग़ौवासी क़ुतुबशाहीके उपान्त्य नरेश अब्दुल्ला क़ुतुबशाहका (राज्यकाल शक १५४८ से १५९४—हिजरी १०३५ से १०८३) आस्थानी कवि था। और उसको मलिकुश्शुअरा—कवियोंका राजाकी उपाधि प्राप्त थी। उसकी ग़ज़लों आदिका काव्यसंग्रह, कुल्लियाते-ग़ौवासी, मुहम्मद बिन उमरने शक १८८१ में उर्दूमें हैदराबादसे प्रकाशित किया है।

वजही और ग़ौवासी समसामयिक और एकही दरबारके कवि थे। इस स्थितिका उल्लेख ग़ौवासीकी एक ग़ज़लमें मिलता है।

**इस दखिन के शाअिरां में तुज शहनशाह के नज़ीक**
**हैं ग़वासी हौर वजीही शाअिरे-हाज़िर-जवाब**

(कुल्लियाते-ग़ौवासी, पृ. ४०)

ग़ौवासी और वजही दोनों तेलुगु भाषाप्रदेशमें रहनेवाले कवि थे। इस संबंधमें दो बातें विशेष उल्लेखनीय हैं। एक तो दक्खिनी हिन्दीपर तेलुगु भाषाका कोई प्रभाव बिलकुल नहीं दिखाई देता। कुछ चारदो शब्द कहीं मिल जाते हैं। लेकिन यह कोई प्रभावकी बात नहीं बन सकती। दूसरी बात यह कि यह दोनों कविश्रेष्ठ मराठी भाषा क्षेत्रके बाहरके होनेके बावजूद भी उनकी भाषामें मराठी शब्द, वाक्प्रचार, संभाषणविशेष आदि पर्याप्त मात्रामें पाए जाते हैं। और एक बातभी विद्वानोंके अध्ययनके योग्य है कि मराठी भाषापर भी दक्खिनीका क्या प्रभाव पडा है। आजतक विद्वानोंमें यह बात चलते आ रही है कि, मराठी गुजराती आदि आधुनिक नव्य आर्यभारतीय भाषाओंपर केवल फार्सीका प्रभाव रहा है। लेकिन, यह संपूर्ण सत्य नहीं है। फार्सी शब्द प्रत्यक्ष रीतिसे फार्सीसे आए ही हैं। परन्तु कुछ शब्द सारूप्यीकृत रूपमें (Assimilated) शब्दका मूलस्वरूप तथा अर्थभी परिवर्तित हो कर, मराठी में भाषा का अंग बन गए हैं, जैसे ज्यास्ती, बदल, हौस आदि। इन शब्दोंका फार्सी मूल अलग है। परन्तु यह शब्द परिवर्तित सारूप्यीकृत रूपमें अलग अर्थके साथ मराठीमें भी स्थान पा गए। इस सत्यकी ओर विद्वानोंका ध्यान अभीतक आकर्षित नहीं हुआ है। वजही और ग़ौवासी दोनोंके साहित्यमें इस पहलूपर काफ़ी सामग्री प्राप्त है।

हसन शौक़ीने अहमदनगरकी निजामशाहीमें, ग़ौवासीके साथही, पर और बाल खोले थे। उसकी दो मस्नवियाँ प्राप्त हैं। वह कराचीमें, अंजुमने तरक़्क़ीए-उर्दूके ग्रंथालयमें डॉ. अब्दुल हक़के द्वारा पाकिस्तान निर्मितिके बाद, सुरक्षित रखी गई हैं। दोनोंभी अभी अप्रकाशित हैं।

उनमें से एक "फ़तहनामए निज़ामशाह" है जो एक वीररसप्रधान ऐतिहासिक काव्य (रज़्मिया मस्नवी) है। उसका काव्यविषय तालीकोटाका युगप्रवर्तक युद्ध है जो शक १४८७ में विजयनगरके हिन्दु राजा रामराजाके विरुद्ध बीजापूरके प्रथम अली आदिलशाह, अहमदनगरके हुसेन निज़ामशाह भैरी, बीदरके बरीदशाह और वऱ्हाडके इमादशाहने मुस्लिम संगठन निर्माण कर, यशस्वितासे लड़ा था। यह बात मानी हुई है कि हसन शौक़ी अपने पूर्व आयुष्यमें निज़ामशाही दरबारसे सम्बद्ध था और बादमें वह बीजापूरके नरेशके आश्रयमें चला गया। हसन शौक़ीकी दूसरी मस्नवी "मेज़बानी नामा" है जो बीजापूरके मंत्री मुस्तफ़ाख़ानकी पुत्रीका विवाह आदिलशाही नरेश मुहम्मद आदिलशाहके साथ संपन्न होनेके अवसर पर शक १५५५ में (हिजरी १०४२) लिखा गया है। हसन शौक़ीके पहले ग्रंथ "फ़तहनामए निज़ामशाह" का लेखनकाल ज्ञात नहीं है। हमने एक प्रबन्धमें बतलाया है कि यह वर्ष शक १५४८ (हिजरी १०३५) के पूर्व होना चाहिए, क्योंकि इसी वर्ष अहमदनगरकी लड़खड़ाती निज़ामशाही सत्ताको नवजीवन प्रदान करनेवाले महापराक्रमी, मंत्रणाकुशल और कर्तबगार मलिक अम्बरका देहान्त हुआ है। हमने बतलाया है कि इस प्रकारकी प्रेरणादायी कृति अम्बरकी मृत्युके पश्चात् निर्माण होनेके लिए अहमदनगरमें अनुकूल वायुमण्डल मौजूद नहीं था। इस प्रकारसे हम देखते हैं कि शौक़ीने अपना प्रथम ग्रंथ 'फ़तहनामा' शक १५४८ में (हिजरी १०३५) या उसके पूर्व लिखा है। यह ग्रंथ ऐतिहासिक दृष्टिसे अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। दुर्दैवसे किसीभी ऐतिहासिक वा भाषिक शोधकार्यमें शौक़ीकी दोनों मस्नवियोंका उपयोग नहीं किया गया है। महाराष्ट्र और दक्षिणके इतिहास अध्ययनमें इस फ़तहनामेके साधनका अवश्यमेव उपयोग हो सकता है। काव्यलेखक ऐतिहासिक दृष्टि रखनेवाला राजकारणी पुरुषभी दिखाई देता है। युद्ध और राजकारणपर लिखा गया यह न केवल दक्खिनी हिन्दीका प्रथम काव्य है बल्कि ब्रज, अवधी, राजस्थानी, गुजराथी, मराठी आदि भाषाओंमें लिखा हुआ भी कोई ऐसा ग्रंथ आजतक हमारे सामनें नहीं आ पाया है। इस दृष्टिसे भी फ़तहनामेका वड़ा महत्त्व है। ग्रंथमें फार्सी गद्यमें शीर्षक दिए गए हैं जो प्रकरण वा अध्यायके सूचक है। इस प्रकार मस्नवीके १२ अध्याय है। शौक़ीके दूसरे ग्रंथ मेज़बानी नामेसे कुछ ऐतिहासिक घटनाएँ और बहुत कुछ सामाजिक रूढियाँ मालूम करनेमें सहायता हो सकती है। इस विषयका अभीतक एकही आधार है, वह है डॉ. अब्दुलहक़का एक प्रबन्ध जो उनके त्रैमासिक 'उर्दू' में शक १८५१ में प्रथम प्रकाशित हुआ था। यही प्रबन्ध उनके "क़दीम उर्दू" नामी प्रबन्धसंग्रहमें शक १८८३ में कराचीसे प्रकाशित हुआ है।

शौक़ीकी पांचदस ग़ज़लेंभी प्राप्त और प्रकाशित हैं। उसकी ग़ज़लोंको देखनेसे मालूम होता है कि उसकी कवित्व शक्ति ऊंचे दर्जेकी है। एक ग़ज़लके एक दो पद्य देखिए—

**सुहता अलक सो काला दिसता भुवंग बिसाला**
**बसता है गौड-बंगाला तुज नैन के अंजन में।**

**अुश्शाक़ आंजू झुरवैं सुद खो दिवाने होवैं**
**फ़र्हाद मजनूं रोवैं यो नाज़ सुन कफ़न में।**

**शौक़ी की है पियारी हंस हंस कहे सो नारी**
**मशहूर ग़ज़ल तुमारी जूं सूर है गगन में।**

दूसरी एक ग़ज़लमें शौक़ी कहता है—

**लई दिन हुए सिरीजन लिख कर पतर न भेज्या**
**कुच याद की निशानी मुंज याद कर न भेज्या।**
**शौक़ी शकर शिअ़र की खंडचाँ सूं वांटता है**
**तोती तबअ़ कों मेरे एक मन शकर न भेज्या।**

इसमें लई (बहुत) मराठी शब्दका प्रयोग है। हिन्दीके शब्द काफ़ी संख्यामें प्रयुक्त हैं। भारतीय साहित्य परम्पराका यहाँपर हर जगह दर्शन होता है। पाठकोंने देखाही है कि शौक़ीने यहाँपर मन शब्दका श्लेषपूर्ण प्रयोग किया है।

## उर्दूके पदचिन्ह

जैसा कि ऊपर कहा गया है शककी सोलहवीं शती दक्खिनी हिन्दीके साहित्य निर्माणमें अतीव सृजनशील रही है। इस शतीके आरम्भकालीन वजही, ग़ौवासी और शौक़ी जैसे उस्तादोंके अतिरिक्त बीजापूर और गोवलकुण्डामें अनेक छोटेबड़े कवि और साहित्यिक हो गुज़रे हैं। इस संबंधमें हैदराबादके कुतुबशाहीके नरेश क़ुली क़ुतुबशाहका उल्लेख ग़ज़लगो-ग़ज़ल कहनेवाले कविके नाते आवश्यक है। उसने कोई मस्नवी नहीं लिखी, लेकिन उसकी स्फुट कविता बहुत कुछ उपलब्ध है। सोलहवीं शतीका उत्तरार्ध साहित्यनिर्मितिमें बहुतही भाग्य-शाली रहा। मुल्ला नुस्रती सब दक्खिनी साहित्यिकोंमें श्रेष्ठ पाया जाता है। उसका वध शक १५९६ में (हिजरी १०८५) किसी नादानकी तलवारसे हुआ है। उसकी मस्नवियोंके बारेमें हम बादमें सोचेंगे। नुस्रतीसे पहलेभी मस्नवी लिखनेवाले अनेक कवि हुए हैं। यह काव्यनिर्माण अधिकतर बीजापूरमें होता रहा। दौलत नामी कविने शक १५६२ (हिजरी १०५०) में अपनी मनस्वी 'बहराम और हुस्नबानू' लिख पूरी की थी। सनअ़ती बीजापूरीने शक १५६७ (हिजरी १०५५) में क़िस्सए बेनज़ीर (अनुपम कथा) नामी वैशिष्टचपूर्ण मस्नवी लिखी है। इस मस्नवीमें सनअ़तीने हेतुपुरःसर संस्कृत शब्दावलीको टाल दिया है। वह कहता है—

**रख्या कम सहंस्कर्त के इस में बोल**
**अदिक बोलने ते रख्या हूं अमोल ३७०**
**जिसे फ़ारसी का न कुच ग्यान है**
**सो दखनी ज़बां उन कूं आसान है ३७१**
**सो इस में सहंस्कर्त का है मुराद**
**किया इस ते आसानगी का सवाद ३७२**

सनअ़तीने संस्कृत शब्दोंको (अर्थात् तद्भव और देश्य शब्दोंको भी) कम प्रयुक्त करनेका इरादा प्रकट किया है। दक्खिनीके इतिहासमें यह नई बात है। संस्कृत शब्दावलीको कम करनेके साथही सनअ़तीने बड़े पैमानेपर फ़ार्सी शब्दों और फ़ार्सी सामासिक शब्दोंका प्रयोग पर्याप्त मात्रामें किया है। ख़िल्वते-ख़ास (बैत १९३), हक़्क़े-इमामैन (बैत २०२), आरिफ़ाने-सलफ़ (बैत ३३४), क़िस्सए ख़ूब (बैत ३३८) आदि सैकडों फ़ार्सी समासोंका प्रयोग इस मस्नवीमें मिल जाता है। अलिफ़ लामवाले अ़रबी सामासिक शब्दोंका भी उपयोग सनअ़तीने करना आरम्भ किया है। यह **नई प्रवृत्ति** है। यह उर्दूकी मूलभूत प्रवृत्तिका बीजांकुरण है। सनअ़तीही दक्खिनीका पहला साहित्यिक है जिसने इस प्रवृत्तिका

बीजारोपण किया है। १५–२० सालों बाद पनपनेवाले मुल्ला नुस्रतीने भी सनअतीके प्रवृत्तिवृक्षको खादपानी पहुंचाया। उसके काव्योंमें भी यह कुछ मात्रामें पाया जाता है। वली औरंगाबादीने अपनी दिल्ली यात्रा करनेके बाद इस प्रवृत्तिको काफ़ी बढ़ावा दिया। इस अत्यंत महत्त्वके प्रश्नमें यहभी याद रहे कि अरबी फ़ार्सी शब्दोंके सारूप्यीकरणकी पुरानी साहित्यिकसम्मत परम्पराको सनअतीने बराबर क़ायम और चालू रखा। इसके कई उदाहरण उसकी इस मस्नवीमें मिलते हैं। देखिए वक़त (बैत ८१७), परीं (बैत ८९०, १०५१), ख़ेशां (बैत ९११), जाब (बैत ९४८, १३४३, १३५१, १४१०, १५३५, १५५१), ज़्यास्ती (बैत ११७५, ८५१), वज़ा (बैत १२४६), बदक (बैत १५०१, बतख़), मुद्दाम (बैत ३२८), बतर (बदतर, बैत ६६१) इत्यादि। मुल्ला नुस्रतीने इस परम्पराको तज दिया है। उसमें ऐसे सारूप्यीकृत शब्दोंका प्रयोग बहुत कम मिलता है।

मलिक ख़ुशनुद हबशी वंशका ग़ुलाम प्रथम हैदराबादमें था। लेकिन वादमें वह बीजापूरमें भेजा गया, और इसी दरबारमें सम्बद्ध रहा। उसने हश्तबिहिश्त (आठ स्वर्ग) नामी मस्नवी शक १५६८ (हिजरी १०५६) में लिखी। रुस्तुमी बीजापूरीने अपना बृहद्ग्रंथ 'ख़ावर-नामा' शक १५७१ में (हिजरी १०५९) लिख पूरा किया था। मुक़ीमी नामी बीजापूरी कविने शक १५७९ में (हिजरी १०६७) 'चंदरबदन और माहियार' नामी मस्नवी लिखी जो प्रकाशित हो चुकी है।

## महाकवि नुस्रती

दक्खिनी हिन्दीके तमाम कवि और साहित्यिकोंमें मुल्ला नुस्रती सर्वश्रेष्ठ है। नुस्रतीका अध्ययन सब आधुनिक टीकाकारों और सम्पादकोंमें स्व. डॉ. अब्दुलहक़ने अच्छी तरहसे किया था। क्यूं कि डॉ. हक़ महाराष्ट्र प्रदेशमें औरंगाबादमें कई वर्षोंतक रह चके थे। और उन्होंने मराठी भाषाका कुछ परिचयभी करा लिया था। वह नुस्रतीका सुचारु रीतिसे समालोचन और मूल्यमापन कर सके। जिन विद्वानोंको दक्खिनी हिन्दीका क्षेत्र भली भाँति ज्ञात नहीं, उन्होंने सर्वश्रेष्ठताके सम्बन्धमें पुरानी अनभिज्ञतापर आधारित मतोंका कहीं कहीं उच्चार किया है। क्यूं कि वली औरंगाबादी (मृत्यु शक १६२९—हिजरी १११९) तकही विद्वानोंकी पहुंच थी और नुस्रती आदि पुराने कवि सामने नहीं आए थे। इस लिये पुराने विद्वानोंने वलीको श्रेष्ठतम कहा। परंतु अब दक्खिनी हिन्दीके गद्यपद्य लेखक बीसियोंकी संख्यामें सामने आए हैं। इस पुराने मतपर फिरसे विचार करनेकी आवश्यकता पैदा हो गई है। इस वस्तुस्थितिका विचार करते हुए डॉ. अब्दुलहक़ने मुल्ला नुस्रती और वलीके तरतम होनेपर अपना मत प्रकट किया और मुल्ला नुस्रतीको श्रेष्ठ ठहराया। डॉ. हक़ने अपने ग्रंथ मुल्ला नुस्रतीमें कई बार नुस्रतीकी श्रेष्ठतापर मतप्रदर्शन किया है। उर्दू साहित्यके वीररसप्रधान मस्नवियोंका समालोचन करते हुए, उर्दू साहित्यके प्रसिद्ध कवि मीर अनीसकी रज़िमया मस्नवियोंका उल्लेख कर डॉ. हक़ने कहा है (नुस्रती पृष्ठ २९८):

"रज़िमया (वीररसप्रधान) वाक़ियात (घटनाएँ) के बयानमें नुस्रतीको ख़ास कमाल हासिल (प्रावीण्य प्राप्त) है, वह फ़ौजोंकी आमद और जंगके ज़ोरशोर और हंगामा-ख़ीज़ी (युद्धकी सनसनाहट) को इस ख़ूबीसे बयान करता है कि आंखोंके सामने नक़्शा खिंच जाता है। मौलाना शिबली मरहूम (स्वर्गीय) को उर्दू ज़बानमें मीर अनीस से क़ब्ल (पूर्व)

कोई नमूना रज़्मिया नज़्म (काव्य) का नहीं मिला। मीर ज़मीरने रज़्मियाकी इब्तिदा (आरम्भ) की थी, लेकिन वह बिल्कुल नक़्शे-अव्वलीन (प्रारम्भिक पदचिन्ह) था। मौलानाको अगर नुस्रतीका कलाम (साहित्य) देखनेका इत्तिफ़ाक़ (योगायोग) होता तो इतिराफ़ (सम्मत) करना पडता कि मीर अनीस से क़ब्ल भी एक ऐसा बा-कमाल शाअिर (कवि) गुज़रा है जिसने मुसलसिल (कथा-रूप) रज़्मिया नज़्में लिखी हैं और जो मारकाआराई (युद्धवर्णन) नीज़ (तथैव) दीगर वाक़ियात (घटनाओं) के बयान पर पूरी क़ुदरत (शक्ति) रखता है।"

इसके पूर्व उसी ग्रंथमें डॉ. हक़ने कहा है कि (पृ. २८५) "नुस्रतीकी रज़्मिया-निगारी (युद्धवर्णन) की कैफ़ियत अली-नामेके ज़िक्र (वर्णन) में आ चुकी है। उस मस्नवीमें उसने अपनी क़ुव्वते-बयान (वर्णनशक्ति), बुलंदीए-तख़य्युल (कल्पनाविलास), मअलुमाते ज़माना (तत्कालीन ज्ञान) और क़ुद्रते-ज़बान (वाणीकी शक्ति) से यह साबित (सिद्ध) कर दिया है कि रज़्मिया-निगारीमें कोई उसका मुक़ाबला नहीं कर सकता।"

इस मतप्रदर्शनके बीस वर्षों बाद डॉ. हक़ने गुलशने-इश्क़का सम्पादन प्रस्तुत किया। गुलशने-इश्क़ (लेखनकाल शक १५८०—हिजरी १०६८) नुस्रतीकी प्रथम मस्नवी है। शायद उर्दू साहित्य और दक्खिनी हिन्दीका यह सर्वोत्तम प्रेमाख्यान है। दक्खिनी हिन्दीमें इस ग्रंथके इस स्थानके बारेमें कोई संदेह नहीं। गुलशने इश्क़की छोटीसी प्रस्तावनामें नुस्रतीपर अपनी राय देते हुए डॉ. हक़ने बतलाया है। "यहाँ नुस्रतीने वह दावा किया है जिसकी अव्वलियत (प्राथम्य) की फ़ज़ीलत (सम्मान) वलीको दी जाती है। नुस्रतीने आजसे अढ़ाई सौ (वास्तवमें तीन सौ) बरस पहले और वलीसे कम अज़ (से) कम साठ सत्तर बरस क़ब्ल फ़ार्सी और उर्दूके ज़ाहिर व बातिनके (अंतर्बहिर्) मेलसे वह बात पैदा की है जिसकी फ़र्मायिश शाह सादुल्ला गुल्शनने वलीसे की थी, और हक़ीक़त (सत्य) यह है कि ब-हैसियते-शाअिर के (कविके नाते) नुस्रतीका दर्जा (स्थान) वलीसे कहीं बुलंद है। जिसे उसकी तफ़सील दरकार (आवश्यक) हो वह मेरी तालीफ़ (ग्रंथ) "नुस्रती" का मुतालिया (अध्ययन) करें।" (पृ. १२)

यहाँपर यह कह देना काफ़ी है कि डॉ. हक़ने नुस्रतीके सम्बन्धमें अपने प्रबन्धोंमें चर्चा की है (पहला प्रबन्ध गुल्शने-इश्क़-उर्दू त्रैमासिक जनवरी सन १९३४, अलीनामा-प्रबन्ध-वही अप्रैल १९३४, तीसरा प्रबन्ध तारीख़े-इस्कंदरी, जुलाई १९३४ और अंतिम अक्तूबर १९३४)। परन्तु उनका दृष्टिकोन केवल साहित्यिक है। यह याद रखना चाहिए कि नुस्रतीने अलीनामा-बृहद्ग्रंथ और तारीख़े-इस्कंदरी (सिकंदरका इतिहास, केवल ५५४ बैत) यह दो इतिहास ग्रंथ लिखे हैं। दोनों ग्रंथोंमें ऐतिहासिक घटनाएँ और ऐतिहासिक वस्तुस्थिति काव्यविषय बनी हैं। डॉ. अब्दुलहक़ने ऐतिहासिक घटनाओंको गहरी दृष्टिसे नहीं देखा, केवल सरसरी नज़र डाली है। इस लिए उनके "नुस्रती" ग्रंथमें ऐतिहासिक घटनाओं और तथ्योंपर पर्याप्त रोशनी नहीं पडती। इतिहास लेखकके नातेसे भी नुस्रतीका दर्जा पर्याप्त ऊँचा है। उसकी इतिहास निरीक्षण दृष्टि तो केवल अच्छी ही नहीं, बल्की असाधारणतया ऊँचे पल्लेकी है। द्वितीय अली आदिलशाहके आस्थानी इतिहास लेखक नूरुल्लाने तारीख़े-आदिलशाही लिखी है (शक १५८८—हिजरी १०७७)। हमने एक प्रबन्ध 'नवाए-अदब' में (उर्दू त्रैमासिक, बम्बई अप्रैल सन १९६६) नुस्रती और नूरुल्लाके नामसे लिखा है। उसमें बतलाया गया है कि इतिहास लेखनकी दृष्टिसे नूरुल्लासे मुल्ला नुस्रती कहीं ऊँची

प्रतिष्ठाका स्वामी है। न केवल इतिहास घटनाओंके उल्लेख और वर्णनमें, किन्तु ऐतिहासिक तथ्योंको देखनेपरखनेकी सूक्ष्म दृष्टिमें भी वह नूरुल्लासे श्रेष्ठ है। अलीनामा ग्रंथमें अली आदिलशाहके समयकी इतिहास घटनाओंमें स्वराज्य संस्थापक छत्रपति शिवाजीका उल्लेख कई स्थानोंपर आया है। इतनाही नहीं ग्रंथके हर अध्यायमें शिवाजीकी छाया पड़ी हुई है। शिवाजीके एक चरित्रकार कवीन्द्र परमानन्दने 'शिवभारत' नामी संस्कृत इतिहासकाव्य शिवाजीके चरित्रपर लिखा है। एक मराठी प्रबन्धमें हमने मुल्ला नुस्रती और कवीन्द्र परमानन्दकी इतिहास लेखकोंके नाते तुलना प्रस्तुत की है। देखिए नवभारत मराठी मासिक, वाई, महाराष्ट्र, अक्तूबर, सन १९६२। नुस्रतीने शिवाजीका चरित्रभी बड़ी मार्मिकतासे वर्णन किया है। यह स्पष्ट है कि शिवाजी शत्रुपक्षीय था। तो भी नुस्रतीवर्णित शिवचरित्रोल्लेख बड़े मार्मिक और सूक्ष्मावलोकनके परिचायक हैं। 'शिवाजी और नुस्रती' नामसे दूसरा एक विषय हमने उपर्युक्त मासिकके डिसंबर सन १९६२ के अंकमें पेश किया है। उसमें शिवाजी, उसकी राजकीय नीति, मराठोंका शौर्यवीर्य आदिपर नुस्रतीका दृष्टिकोन ज्ञात होता है। एवंच इतिहाससाधनभूत ग्रंथोंमें अलीनामा और तारीख़े-इस्कंदरी (लेखनकाल शक १५९४ – हिजरी १०८३) ग्रंथोंका समावेश करना आवश्यक हो जाता है। इन तमाम पहलूओंपर डॉ. हक़के लेखनसे कोई मार्गदर्शन नहीं हो पाता। (देखिए हमारा प्रबन्ध मराठी महाराष्ट्रेतिहास परिषद, निबंध संग्रह, शक १८८८, बम्बई)।

नुस्रती और उसके साहित्यका और एक दृष्टिसे अभ्यास करना आवश्यक है जैसा कि नुस्रतीने दावा किया और स्व. डॉ. हक़ने उसको सत्यरूप मान लिया है कि नुस्रतीके हाथों दक्खिनी हिन्दीका रूप उज्ज्वल बना, भाषा ओघवती बनी, उसकी आशयघनतामें भी वृद्धि हुई। सारांश, दक्खिनी स्टैंडर्ड बनती गई। तो इस स्टैंडर्ड रूपमें क्या क्या अंग उपांग थे, इस खोजकी ओर डॉ. हक़ने कोई ध्यान नहीं दिया। दक्खिनीके ना-मानूस अर्थात् अपरिचित और प्रयोगभ्रष्ट शब्दावलीका नुस्रतीमें क्या स्वरूप था, इसका अध्ययन आवश्यक हो जाता है। हमारा सूचन यह है कि वजही, ग़ौवासी, हसन शौक़ी, नुस्रती आदि दक्खिनीके उस्तादोंका भाषिक अध्ययन होना ज़रूरी है।

मुल्ला नुस्रतीके साथ आदिलशाही और क़ुतुबशाहीका अन्त हो जाता है। दक्खिनी हिन्दीके साहित्यिकोंके यह दो पुराने घर उजड जाते हैं। इसके बावजूद भी इन दोनों केन्द्रोंमें छोटे छोटे कवियोंकी कई काव्यरूप निशानियाँ मिलती हैं। अनेक आख्यानक काव्य शक १७५६ (हिजरी १२५०) तकके कालतक मिल जाते हैं। लेकिन केन्द्र रूपसे बीजापूर और गोवलकुण्डाका नाम बहुत कम याद होता है। अब दक्खिनी और दक्षिणमें पहुँच जाती है। बीजापूर और गोवलकुण्डा मुग़ल सत्ताके आधीन होनेपर, वेलोर, कर्नूल, मद्रास आदि–जो उपुरोक्त दो दक्षिणी मुसलमानी राज्य सत्ताओं के आधीन थे, अब स्वतंत्र बने मुसलमान सरदारोंके क़ब्जेमें आ गए थे। दक्खिनीके कवियोंने उन नगरोंको प्रस्थान किया। इन कवियोंकी परम्परा शककी अठारहवीं शतीके मध्योत्तरतक बराबर जारी थी।

मोमिन (मियां अब्दुल मोमिन) दक्षिण प्रदेशके चीनापटन (चन्नापटन) का निवासी था। उसकी एक मनस्वी असरारे–इश्क़ (प्रेमगूढ) प्राप्त है जो शक १६०५ (हिजरी १०९४) में लिखी गई है। दूसरा एक कवि हाशमी था जिसकी एक मस्नवी यूसुफ़ ज़ुलैखा प्राप्त है। उसका नाम सय्यद मीरां था और वह अपनी जीवनीके पूर्व कालमें

बीजापूरमें रहथा था। लेकिन आदिलशाहीके अन्तके बाद वह अर्काटको चला गया। उसने अपनी मस्नवी शक १६१० (हिजरी १०९९) में लिखी है।

आदिलशाहीके अन्तका एक और कवि और सूफ़ी क़ाज़ी महमूद बह्री है। उसके साहित्यका बड़ा अंश नष्ट और अप्राप्य है। उसका प्राप्त साहित्य अब प्रकाशित हो चुका है। बह्रीकी एक मस्नवी **मनलगन** है जिसको हैदराबादनिवासी सख़ावत मिर्ज़ाने कराचीसे प्रकाशित किया है। बह्रीने मनलगन शक १६२२ (हिजरी १११२) में लिखी है।

मैना और लोरककी कहानी अवधी, मैथिली और बंगाली भाषाओंके क्षेत्रमें बड़ी लोकप्रिय बनी हुई ज्ञात होती है। अवधीमें मुल्ला दाऊदका लिखा हुआ **चंदायन** इसी कथानकपर आधारित है। चंदायनकी कथाका अनुसरण दक्खिनी हिन्दीमें भी काफ़ी हुआ है। हैदराबादनिवासी कवि ग़ौवासीके मैना सतवंती कथाकाव्यका उल्लेख इसके पूर्व आ ही गया है। शककी सतरहवीं शतीके मध्यपूर्वमें लिखी हुई एक मस्नवी किसी अप्रसिद्ध कवि महदवीकी प्राप्त है। उसका नाम 'मैना और लोरक' है जिसका परिचय डॉ. गोपीचंद नारंगने (नवाए अदब, बम्बई, दिसंबर इ. स. १९६४) करा दिया है। इस काव्यका लेखनकाल अभीतक प्रकाशमें नहीं आने पाया, लेकिन उसकी हस्तलिखित प्रती शक १६९६ (हिजरी ११८८) की होनेसे, यह कल्पना हो सकती है कि काव्य शक १६५० के लगभग लिखा गया। इस काव्यकी भाषा स्टैंडर्ड दक्खिनी परम्परामें पाई जाती है।

### भक्तिमार्गका प्रभाव

दक्खिनीके ऊँची श्रेणीके साहित्यिक वजही, ग़ौवासी, नुस्रती आदिके साहित्यमें भारतीय सांस्कृतिक और साहित्यिक परम्पराका पर्याप्त प्रभाव दिखाई देता है। शाह मीराँजीके उल्लेखमें हमने इशारा किया है कि उनके साहित्यमें महाराष्ट्रके भक्ति सम्प्रदायका गहरा प्रभाव दिखाई देता है। उन्होंने ख़ुशनूदके रूपमें ज्ञानेश्वरभगिनी विरक्ता मुक्ताबाईका गुणसंकीर्तन किया है। यही परम्परा शाह तुराब नामी सूफ़ी साधूके काव्यमें मिलती है। तुराब दक्खिनीका उत्तरकालीन कवि है। उसका निश्चित कालभी ज्ञात है। वह शक १६५९ ( हिजरी ११५० ) के लगभग जीवित था। इस तिथिको हमने उर्दू पाठकोंके सामने सादर किया है (देखिए सुबहे-उम्मीद, बम्बई, जुलाई १९६५)। शाह तुराबने मन-समझावन और ग्यान-सरूप नामी दो काव्य लिखे हैं। प्रथम काव्य डॉ. अब्दुस्सत्तार दलवीने बम्बईसे उर्दूमें प्रकाशित किया है। शाह तुराब वास्तवमें एक वेदान्ती व्यक्ति है जिसका मनन चिंतन देशकालसे परे है। न उसको अरबस्तानसे कोई ख़ास लगाव है न इस्लामी धर्मसे विशेष आकर्षण। वह हिन्दू और सूफ़ी संतोंको समान मानता है। उसका पंथही अलग है।

**जला तन कूं अपने भया हूं सनासी**
**वतन छोड फिरता हूं दायम उदासी।**
**न कअ़बा गया ना गया हूं मैं कासी**
**न हाजी हुवा पैन जुब्बा लिबासी।**
**परम पाक ज़ुन्नार जिस वक़्त तोडा**
**उसी वक़्त तस्बीह मुसल्ले कूं छोडा।**

शाह तुराब शाह मीराँजी बीजापूरीकी शिष्यपरम्परासे सम्बद्ध है। उसने अपने काव्य मन-समझावनमें महाराष्ट्रके प्रसिद्ध सन्त रामदास स्वामीके 'मनाचे श्लोक' (मनको

समझानेपर श्लोक) का दक्खिनीमें अनुवाद किया है। वह स्वयंको हुसेनी ब्राह्मण कहलाता है।

**किया ख़त्म अब मन की पोती कूं सारी**
**तुराब आशिके-पाक आजिज़ भिकारी।**
**हुसेनी बरहमन अहै नामदारी**
**कह्या है ये रंगी सुख़न यादगारी।**
**सितोबा महाराज गुनवंत आकिल**
**मेरी बीद का भेद पाने करे दिल।**

राम, महादेव और बन्दे नवाज़ गेसूदराज़में कवि कोई भेद नहीं पाता।

**तुराब ने नहीं झूट ये बात बूझ्या**
**महादेव हौर राम में नें है दूजा।**
**अपस का अपीं आप करता है पूंजा**
**पुछो रामदास हौर गेसूदास सूं जा।**
**गगन महल में जां है अनहद (अनाहत) पुकारा**
**वहां संक करता है कां है तुमारा।**

तुराबके काव्यमें इसी प्रकारसे भारतीय देवदेवता, भक्तिमार्गीय संकेत और भारतीय सांस्कृतिक परम्पराओंका बड़ा आदरपूर्ण उल्लेख मिलता है।

**अन्तिम काल**

इसी प्रकार दक्खिनी हिन्दीकी परम्परा दक्षिण भारतमें कमसे कम शक १७२८ (हिजरी १२२०) तक चलती हुई प्राप्त ग्रंथोंसे दिखाई देती है। दक्षिणके सब कवि अपनी भाषाको बराबर हिन्दी, हिन्दुई अथवा दकनी, दक्खनी कहा करते थे। उत्तरमें इस समय इस भाषाको ज़बाने-उर्दूए-मुअल्ला कहना शुरू हो गया था। दिल्लीमें सिराजूद्दीन आरजू और मज़हर जाने-जानांने इस उपर्युक्त तीन शब्दोंमें से पहला और तीसरा शब्द गिरा कर इस भाषाका नामकरण उर्दू करा दिया था। दिल्लीमें यह घटना मज़हर आदिके हाथों शक १६९९ (मृत्युकाल हिजरी ११९१) तक पूरी हो गई थी। लेकिन दक्षिणमें दक्खिनी हिन्दीही बराबर और पचास-साठ वर्षोंतक कवियोंकी ओरसे प्रयुक्त होती रही। इसी भाषामें साहित्य निर्माण होता रहा। साहित्यिक इस भाषाको हिन्दी वा दक्खिनीही कह कर नामकरण करते रहें।

इस ऐतिहासिक, भाषिक और सांस्कृतिक घटनाके नाटकका अंतिम अंक दक्षिणके रंगमंच पर खेला गया। मुहम्मद बाक़र आगाह दक्खिनीके महान् अभिमानी और लेखक थे। उनकी कुछ तीन सौ के लगभग छोटी बड़ी कृतियाँ बतलाई जाती हैं। उनमें से कुछ बीस-पचीस प्राप्त और सुरक्षित हैं। दिल्लीमें इस भाषाके बाह्य रूपमें अंतर पैदा होने और नामान्तर होनेके बावजूद, वह अपनी भाषाको हिन्दीही कहते थे। उसीमें अपनी रचनाएँ प्रस्तुत किया करते थे। उनके एक शिष्य अज़ीज़ूद्दीन नामी थे। बड़े लेखक और राजकीय

स्थानपर आरूढ थे। उनको मुस्तक़ीम जंगकी बहुमानदर्शक उपाधि अर्काटके नरेशकी ओरसे प्राप्त थी। वह अपनी भाषाको उर्दू कहा करते थे। बाक़र आगाह उनके गुरु और बुज़ुर्ग इस भाषाको हिन्दी कहा करते थे। नामीने शक १७४७ (हिजरी १२४०) में देहान्त किया। यह नामी अर्काटीके नामसे साहित्यमें याद किए जाते हैं। उन्होंने कई मस्नवियाँ उर्दूमें लिखी हैं। नामी अर्काटीने एक मस्नवी बहारिस्ताने-इश्क़ (प्रेमका वसंतर्तु) के नामसे शक १७२० (हिजरी १२१३) में उर्दू भाषामें लिखी है। उस काव्यमें उन्होंने अपने प्रास्तविकमें उर्दू साहित्यके कवियोंका उल्लेख किया है। बड़े मज़ेकी बात यह है कि नामीने दक्खिनी हिन्दीके पूर्वसूरियोंको निश्चयपूर्वक टाल दिया है। उन्होंने निर्धारपूर्वक उर्दूको एक अलग भाषा मान लिया था, जो दक्खिनी हिन्दीसे बिल्कुल अलग थी। नामीने वली औरंगाबादी (मृत्यु शक १६२९–हिजरी ११११) को उर्दूका सर्वप्रथम कवि मान लिया है। उसने वलीको अग्रस्थान प्रदान कर, सिराजूद्दीन सिराज औरंगाबादी, दिल्लीके आबरू, मज़हर, जानेजानां, मीर तक़ी मीर, सौदा, सोज़, हश्मत, सिराजूद्दीन आरज़ू, उजलत, आजिज़, दर्द, बयान, फ़ुग़ान, मम्नून, मिन्नत, मुसहफ़ी, जुर्अत, ताबां आदि उर्दू कवि साहित्यिकोंका ही उल्लेख किया है। नामीने वजही, ग़ौवासी, नुस्रती आदि कवियोंका उल्लेख संपूर्णतया टाल दिया है। गोया यह उर्दू साहित्यिकोंका सर्वप्रथम कविवर्णन है। या इसको उर्दूका प्रथम साहित्येतिहास कहा जा सकता है।

इसके विरोधमें मुहम्मद बाक़र आगाहने अपना आसन जमाया है। आगाहने एक मस्नवी अपनी मृत्युके आठ-नौ वर्ष पहले, शक १७१८ में (हिजरी १२११) गुल्ज़ारे-इश्क़ (प्रेमोद्यान) के नामसे लिखी। इस काव्यमें उसने एक प्रास्ताविक भाग लिखा है। इस भागकी विशेषता यह कि उसमें आगाहने दक्खिनी हिन्दीके प्राचीन कवियोंकी अल्पप्रमाणमें जीवनियाँ, उनके काव्यविशेषके साथ, प्रस्तुत की हैं। आगाहने गोवलकुण्डा, बीजापूर आदि स्थानोंके प्राचीन कवियोंकी साहित्यिक सेवाका वर्णन किया है। उसने बड़े आदरसे ग़ौवासी, इब्न निशाती, ख़ुशनूद, फ़िराक़ी, शौक़ी, हाशमी, नुस्रती, आदि कवियोंके क़सीदे, ग़ज़ल, मस्नवियाँ और स्फुट काव्योंका उल्लेख किया है। उनके काव्योंका यथास्थान रस-समीक्षणभी प्रस्तुत किया है। उसने यहभी बतलाया है कि किस प्रकार यह साहित्यिक परम्परा वली औरंगाबादीके द्वारा उत्तर भारतमें चली गई। मीर तक़ी मीर और सौदाके आगाह समसामायिक थे। लेकिन वह प्राचीन दक्खिनी भाषाके अभिमानी थे। उन्होंने उत्तर भारतकी उर्दू भाषाके व्याकरण आदिका कभी अवलम्बन नहीं किया और अपने अन्त तक बराबर दक्खिनीही में लिखते रहें। आगाहका यह दक्खिनीके कवियोंका साहित्येतिहास है। शायद यह दक्खिनी हिन्दीका सर्वप्रथम साहित्येतिहास है। शायद यह दोनों ग्रंथ भारतीय आधुनिक भाषाओंमें लिखे साहित्येतिहासमें सर्वप्रथम हों। इसका कारण फार्सी भाषामें साहित्येतिहास लिखे जानेकी प्राचीन परम्परा है। फार्सीमें ऐसा इतिहास शक ७७५ में लिखा गया था। उसकी यह परम्परा वहाँपर चल रही है। मराठीमें यह साहित्येतिहास शक १२५० के लगभग लिखा गया।

इससे ज्ञात होता है कि मज़हर-आरज़ूके उर्दू-आंदोलनका प्रतिध्वनि दक्षिणमें भी प्रतिबिंबित हुआ। उसने गुरुशिष्योंको दो गुटोंमें विभक्त कर दिया। आगाहने उर्दू भाषामें रचना नहीं की और नामी अर्काटीने दक्खिनीमें नहीं लिखा। जब आगाहने दक्खिनी साहित्येतिहास लिखा तो शिष्यने भी दो वर्ष पश्चात् उर्दूमें साहित्येतिहास लिख डाला।

दोनों गुरुशिष्य साहित्यिक एकही नरेशके आश्रित थे। नामी अर्काटीने उसी ग्रंथमें अर्काटके नवाब उमदतुलमुल्ककी प्रशंसा की है। उनकी विद्याभिरुचि और विद्याश्रयका वर्णन करनेके बाद नामीने नवाबकी कवित्वशक्तिका वर्णन किया है।

**उसके मज़्मून सुन के है सौदा को दर्द**
**आबरू का शर्म से है रंग ज़र्द।**
**आगे है उस के वली सर बर-ज़मीं**
**मज़हर आजिज़ा हुआ, अुजलत-निशीं।**
**सोज़ देख उस की ज़मीने-शिअ़र को**
**ख़ाकसारी की किया है आरज़ू।**

ख़ैर यह तो हमेशाके स्वभावके अनुसार दक्खिनी और उर्दू कवियोंकी अतिशयोक्ति और अतिरंजित नृपप्रशंसा है। मज़ेकी बात यह है कि नामीने नवाबके हिन्दी और उर्दू सम्बन्धी दृष्टिकोनका भी उल्लेख प्रस्तुत किया है।

**नज़्म में हिन्दी के है उस को कमाल**
**है यक़ीन उर्दू ज़बान में बे-मिसाल**

बाक़र आगाह नवाबके गुरु और आदरणीय थे। नवाब पहलेसे हिन्दी भाषामें प्रावीण्य सम्पादित कर चुके थे। नवाब उर्दू भाषामें प्रावीण्य क्यों कर प्राप्त कर सकता। लेकिन नामी अर्काटी तो उर्दूका बड़ा अभिमानी और स्वयं कवि उर्दूके लिए नरेशकी हमदर्दी प्राप्त अत्यावश्यक। इस लिए नरेशकी उर्दके सम्बन्धी धारणाका भी उल्लेख उसको करना पडा कि उर्दूके उज्ज्वल भविष्यकालका नवाबको विश्वास था।

**अराष्ट्रीय वृत्तिदर्शन**

आधुनिक उर्दू साहित्यपर यह आक्षेप लगाया गया है कि वह अभारतीय और अराष्ट्रीय साहित्य है। उर्दू साहित्यमें बढ़ते हुए फार्सी-अरबी शब्दोंके अनुपातके अतिरिक्त, उर्दू साहित्यके फलफूल, पशुपक्षी, निसर्गवर्णन, काव्यसंकेत आदि सब अभारतीय हैं। इस आरोपका निवारण कठिन ही लगता है। इसके अतिरिक्त दक्खिनी हिन्दीके उत्तरकालमें कुछ उल्लेख ऐसे मिलते हैं जिससे मुसलमानोंकी भारतबाह्य निष्ठाकी ओर संकेत होता है।

इब्न निशातीका नाम सब दक्खिनी प्रेमियोंको भली भाँति ज्ञात है। इस लेखकने निशातीकी प्रसिद्ध मस्नवी—फूलबन हालही में हिन्दीमें सम्पादित की है। उसका प्रकाशन महाराष्ट्र राष्ट्रभाषा सभाने शक १८८८ में पूनासे किया है। इब्न निशातीने अपनी अंतिम इच्छाका दर्शन इस प्रकार कराया है।

**दखन से करबला कों जिस घडी जावूं**
**चलूं ख़ामे के नमने सिर कों कर पावूं। १०८**
**पडूं गुंबद कने जा छांवूं के सार**
**लगूं उस कांद सूं ज्युं नक़्शे-दीवार। १११**

यह एक अनोखी इच्छा है। इसके कविके धार्मिक और सांस्कृतिक मनोभूमिका अच्छा दर्शन होता है। इब्न निशातीने अपनी मस्नवी शक १५८७ (हिजरी १०७६) में लिखी है।

शीरन नामके एक दक्खिनी कविने शक १६९३ (हिजरी ११८५) में एक मस्नवी अरबोंके चौथे ख़लीफ़ा और मुहम्मदके दामाद अलीकी स्तुतिमें शाहनामए हनीफ़के नामसे लिखी। उस काव्यमें शीरनने अपनी अन्तिम इच्छा इस प्रकार प्रकट की है। उसने पंजतन पाँच आत्मा यअनी मुहम्मद, फ़ातिमा, अली, हसन और हुसेनके नाम प्रार्थना कर यह पाँच आशीष माँगे हैं। पाँचवी आशा यह है।

**यही है पांचवा मतलब अक़ीदा**
**चले ले करबला में मुज कों शैदा।**

(तज़्किरे मख़्तूतात, खंड ३, पृष्ठ १७२)

**हिन्दुओंका असहयोग**

ऊपर पाठकोंने देखा है कि दक्खिनी हिन्दीमें शककी चौदहवी शतीके अन्तिम पादसे लेकर मस्नवियोंका, आख्यानक काव्योंका बराबर निर्माण होता आ रहा है। यह काव्यसरिता बराबर समृद्ध होते जा रही है। समयक्रमणाके साथ इस सरिताका पात्र बढ़ता गया है। पाठकोंनें उसके तटप्रदेशोंका भी सिंहावलोकन किया है। इस तटप्रदेशकी विलोभनीयता भी किंचित् रूपसे उनके सामने आई है। जो सैकड़ों आख्यानककाव्य लिखे गए हैं उनके कथानकके स्वरूप ओर बनावटकी और थोडासा ध्यान परावर्तित करें। दक्खिनीके लेखकोंकी ओर देखनेसे यह बात विशेष रूपसे सामने आती है कि सब साहित्यिक और कवि, एक सिरेसे मुसलमान हैं और उनके साहित्यकी लिपि फार्सी की है। फार्सी लिपि तो हम समझ सकते हैं। लेकिन यह बात विशेष लगती है कि इस भाषाके विकासकी ओर कोई हिन्दू आर्कषित क्यों न हो पाया, चाहे उतरको देखिए अथवा दक्षिणावर्तका चार शतियोंका कालखंड देखिए। इस दीर्घकालीन भाषासाधनामें किसी हिन्दू साहित्यिकका कोई हात नहीं, कोई सहयोग नहीं है। चंद्रभानु ब्राह्मणका नाम लिया जाएगा। लेकिन कुछ ग़ज़लोंके सिवा उसका कोई साहित्यधन मौजूद नहीं है। और वह काफ़ी उत्तरकालीनभी है।

इस ऐतिहासिक सत्यपरिस्थितिका कारण हमको यह प्रतीत होता है कि भारतमें मुसलमान विदेशी जेताके नातेसे आए। उनकी पहली भेंट इसी रूपमें भारतवासीयोंको हुई है। हिन्दु और मुसलमानोंके संपर्कमें हिंदने यह कभी भूला नहीं कि मुसलमान विदेशी आक्रमक और विजेता है। फार्सी भाषा और फार्सी-अरबी लिपिके सम्बन्धमें हिन्दुओंका दृष्टिकोन इसी मूलभूत सत्यपर निर्धारित रहा। फार्सी भाषा और लिपिको हिन्दुओंने कभी भी नहीं अपनाया। दक्खिनी हिन्दी और फार्सी भाषाको भारतवासी हिन्दुओंने एकही नापसे नापा है। वास्तवमें फार्सी एक आर्यभाषा है, उसका व्याकरण मूलतः संस्कृत व्याकरणपर आधारित है, उस भाषाकी कम अधिक सब शब्दसम्पत्ति संस्कृतसे प्राप्त है। इसके बावजूद, हिन्दुका फार्सीके सम्बन्धमें यह दृष्टिकोन निश्चित होनेके लिए यही राजकीय परिस्थिति कारण-भूत है। मुसलमानोंके उत्तर कालमें कुछ हिन्दुओंने फार्सी भाषामें इतिहास लिखे हैं। गो यह थोडी संख्यामें हो तो भी कुछ फार्सी लेखक मिल जाते हैं लेकिन यह सबके सब मुसलमान नरेशोंके नोकर अथवा नोकरोंके पुत्रपौत्र थे। इसी ख़ानदानी लगावसे उनमें इतिहास लेखनकी प्रवृत्ति प्रादुर्भूत होती रही। इसके अतिरिक्त कोई प्रतिभाशाली स्वतंत्र लेखक इतिहासक्षेत्रमें भी दिखाई नहीं देता। साहित्य क्षेत्रमें लेखनी उठानेका नामही क्या। इससे अन्दाज़ा होता है कि सामान्य स्वाभिमानी और संस्कृतिप्रेमी हिन्दुओंकी धारणा

थी कि फार्सीको अपनाना संस्कृति संवर्धनके विरोधी है। यही धारणा फार्सी लिपिके सम्बन्धमें है। दक्खिनी हिन्दीभी हिन्दुओंकी इस मूलभूत धारणासे बच न सकी। वास्तवमें दक्खिनी केवल खड़ीबोली है और जैसा कि अमीर खुस्रौने बतलाया था, केवल हिन्दुई भाषा थी और है। परन्तु दक्खिनी भाषा मुसलमानोंके हाथों विकसित हो रही थी और फार्सी लिपिही उस भाषाकी वाहक बनी थी, इसी लिए किसी हिन्दुने उसकी ओर आँख उठा कर देखनेकी भी इछा न की।

इस सम्बन्धमें तत्कालीन संस्कृत पंडितों और विद्वानोंका दृष्टिकोनभी लक्ष्य है। इस समस्यापर विशेष रूपसे विद्वानोंके विचार नहीं मिलते। लेकिन छत्रपति शिवाजीके पिता शहाजी भोसलाके एक दरबारी पंडित जयराम पिण्डचेने अपने ग्रंथ राधामाधवविलासचम्पूमें (सम्पादन वि. का. राजवाडे, पूना, शक १८४४ मूल ग्रन्थ लेखनकाल शक १५८०) इस ओर कुछ अंगुलिनिर्देश किया है। जयराम पंडितका दावा है कि वह बारा भाषा जानता है। इस ग्रंथमें उसने इन बारा भाषाओंमें पद्यरचना की है। उन बारा भाषाओंके नामभी जयराम पंडितने गिनवाए हैं (देखिए पृ. २२७)।

**द्वादशभाषासु संस्कृतप्राकृतगोपाचलीयगुर्जरवक्तरढुंढारपंजाबींहिंदुस्थानबग्गुलयावनी-दाक्षिणात्ययावनीकार्णाटकासु निरर्गलं कवयामीति ज्ञापयितुमिति।**

यहाँपर अनेक भाषाओंके साथ हिन्दुस्थान, यावनी और दाक्षिणात्य यावनी भाषाएँ हमारे लिए लक्ष्य हैं। जयराम पंडितने हिन्दीको हिन्दुस्थान, हिंदुस्थानी कहा है, फार्सी भाषाको यावनी नाम दिया है और मुसलमान जिस भाषाको दकनी, दखनी, दक्खिनी अथवा हिन्दी, हिन्दुई कहा करते थे, जो फार्सी लिपिमें लिखी जाती थी और दक्षिणापथमें जो मुसलमानोंकी मातृभाषा थी, उसको जयराम पंडितने दाक्षिणात्य यावनी कहा है। यहाँपर यह बात विशेष लक्ष्य है कि यह दकनी भाषा केवल आर्यभारतीय भाषा होनेके बावजूदभी, जयरामने उसको यावनी दकनी कहा है। जयराम पंडितकी इस धारणाका एकमेव कारण यह प्रतीत होता है कि वह फार्सी लिपिमें लिखी जाती थी। इसी लिए वह यावनी है। वास्तवमें वह ब्रज, अवधी, मराठी, गुजराती आदिके समानही आर्यभारतीय भाषा है। लेकिन लिपिके पूर्वग्रहदूषणसे कविने उसको यावनी बतलाया है। दक्षिणावर्तमें भी हिन्दुओंके इस दृष्टिकोनके लिए औरभी अनुकूल वायुमण्डल था। दक्षिणके मराठी भाषी, कन्नडभाषी, तेलगुभाषी, ब्रज, अवधी आदि भाषाओंसे भली भाँति सुपरिचित थे। कमसे कम महाराष्ट्रमें तो महाराष्ट्रीय, मुसलमानोंके पैर नर्मदासे नीचे उतरनेसे पहलेही, ब्रजसे परिचित था। चक्रधर, दामोदर पंडित और संत नामदेवके पद्य और दोहें ब्रजमें लिखे हुए आजभी प्राप्त हैं। परन्तु खड़ीबोलीके फार्सी लिपिमें दक्षिणावर्तमें अवतीर्ण होनेसे यहाँके हिन्दुओंने उसको मुसलमानोंकी विदेशी वस्तु मान लिया। राजकीय स्तरपर मुसलमानोंसे जानकी बाज़ी लगाकर, युद्धसंघर्ष जारी था। हिन्दु राजा और राज्य नष्टविनष्ट होते जा रहे थे। डर लगा हुआ था कि भारतीय स्वातंत्र्य लुप्तप्राय हो रहा है। तो ऐसे जीवनसंघर्षमें, कौन स्वाभिमानी आर्यावर्तीय, अपनी संस्कृति और धर्मको भूल कर, मुसलमानोंकी विदेशी, लिपिबद्ध खड़ीबोलीको अपनाए? और यही हुआ। दक्खिनीकी चार-साड़ेचार शतियोंकी दक्षिणावर्तकी जीवितयात्रामें किसी हिन्दुने उसका दामन नहीं पकडा, न अपनी उंगली उसके हाथमें दी। दक्खिनीका विकास केवल मुसलमानोंही के हाथों संपन्न होता रहा।

**राष्ट्रभाषाका विकास मुसलमानोंके हाथों**

हमने अन्यत्र कहा है कि दक्खिनी हिन्दीका मुसलमानोंके हाथों प्रयोग और विकास भारतकी राष्ट्रभाषाके नातेसे होता रहा था। मुसलमानोंकी मातृभाषा दिल्लीकी खड़ीबोली थी जिसका उल्लेख अमीर ख़ुस्रौ और कवि अब्दुलने किया है। मुसलमान विजेता बनकर खड़ीबोलीके मातृप्रदेशसे बाहर राज्यके कारोबार चला रहे थे। उनके दरबारकी भाषा फ़ार्सी थी। लेकिन उस भाषाको लोकभाषाका अथवा राष्ट्रभाषाका स्थान कदापि प्राप्त नहीं हो सकता था। दरबारी लिखापढ़ी उस भाषामें हो सकती थी। लेकिन अन्य प्रदेशस्थ मुत्सद्दी, राजकारणी, सेनानी, राजदूत, सैनिक आदिसे बातचीत करनेके लिए मुसलमान फ़ार्सी भाषाका माध्यम प्रयुक्त नहीं कर सकते थे। इसलिए खड़ीबोलीका साधन उनको स्वीकार कर लेना पड़ा। खड़ीबोली भारतीय आर्यभाषा है। वह राजस्थानी, ब्रज, पंजाबी, अवधी, मैथिली आदि भाषाओंसे बिलकुल मिलतीजुलती और उन भाषाओंके बोलनेवालोंको भी सहजतया गम्य थी। गुजराती, मराठी, उडिया आदिभी उसकी सगी बहनें हैं। अगर खड़ीबोलीकी आर्यभारतीय परम्परा कायम रहें तो खड़ीबोली इन तमाम प्रदेशोंके बोलने-वालोंको सहजगम्य होती है। और ऐतिहासिक दृष्टिसे यह सुसंगतभी है कि खड़ीबोलीके मुसलमानोंके हाथों विकसित होते हुए और विदेशी लिपिकी महान् रुकावट होनेके बावजूद भी, प्रारम्भिक विकास कालमें दक्खिनीमें, सब अन्य भाषाओंमें पाई जानेवाली भाषिक परम्पराएँ संपूर्णतया दिखाई पड़ती हैं। अरबी फ़ार्सी शब्दोंको दक्खिनीमें स्थान मिला, लेकिन प्राकृत, अपभ्रन्शोंके तद्‌भवीकरण और सारूप्यीकरणके नियम ऐसी विदेशी शब्दावलीको लगाने और उनको संस्कारित करनेके बाद। अरबी फ़ार्सी शब्दोंका दक्खिनीमें विकृत होनेका यही एक ऐतिहासिक और भाषिक कारण है। इस प्रक्रियासे खड़ीबोलीकी मूल प्रवृत्ति और उसके स्वभावमें कोई अन्तर न पड़ने पाया। उसका व्याकरण आदि वही रहा जो अन्य भाषाभगिनियोंका है।

च्यूंकि खड़ीबोलीका उपयोग अपने मातृप्रदेशसे बाहर, अन्य भाषाभाषियोंके साथ संपर्क स्थापित करने और राजकाज चलानेके लिए होता रहा है, इसी लिए हमारा यह कथन और वस्तुनिष्ठ है कि खड़ीबोलीका यह प्रयोग राष्ट्रभाषाके प्रयोगके स्वरूपका है। इसमें खड़ीबोलीका प्रयोग राष्ट्रभाषाके नातेसे ही हो रहा था। भारतमें मुग़लोंकी केन्द्रीय सत्ता बहुत सीमित क्षेत्रोंमें ही दीर्घ कालतक बनी रही। परन्तु इस भाषाके विकासमें यह कोई बाधाकी बात न बनी। जहाँ मुसलमानोंकी केन्द्रीय सत्ता चल न सकी वहाँपर मुसलमानोंकी छोटी छोटी हुकूमतें राज्य चला रही थीं। गुजरात, बंगाल, बिहार, उरिसा, महाराष्ट्र, कर्नाटक, आंध्र, तमिलनाड आदि प्रदेशोंमें मुसलमानोंके स्थानिक राज्य शतियोंतक, कभी कभी एक ख़ानदानके बाद दूसरा, इस प्रकार चल रहें थे। इस राजकीय स्थित्यंतरसे दक्खिनीके प्रयोग और व्यवहारमें कोई बाधा नहीं पड़ी। विकासकी गति कहीं कहीं कम अधिक हो गई हो। लेकिन खड़ीबोलीका प्रयोग मुसलमानोंके द्वारा हर प्रदेशमें अवश्यमेव होताही रहा। यही कारण है कि मुसलमानोंकी सत्ता भारतमें नष्ट होते समय और अंग्रेजोंके हाथोंमें सब राज्यसूत्र आते समय, गार्सां द तासी जैसे विदेशी अभ्यासक विद्वान्‌को प्रतीत हुआ कि हिन्दुस्तानी भारतकी राष्ट्रभाषा है। इसी नातेसे उसने उसको समझा और उसके बारेमें लिखा। ऊंची श्रेणीके, आंतरराष्ट्रीय कीर्तिके भारतीय भाषाविज्ञानीभी इस ग़लतफ़हमीके शिकार हो गए हैं कि हमारी राष्ट्रभाषा हिन्दीका विकास इ. स. १८०० के

बाद, कलकत्तामें फोर्ट वुइल्यम कॉलेज आदिकी स्थापनासे, आरम्भ हुआ है। इन विद्वानोंने यह नहीं सोचा कि खड़ीबोली सौ डेढ़ सौ सालोंके अल्पकालमें राष्ट्रभाषा पदपर आसनस्थ होने कैसी सुसज्ज बन सकी। वह यह भूल जाते हैं कि अंग्रेजोंने जिसको हिन्दुस्तानी कहा, मुसलमानोंने जिसको उर्दू कहा और हिन्दुओंने जिसको खड़ीबोली अथवा हिन्दी कहा, यह वही पुरानी खड़ीबोली है जिसका छोटासा पौधा मुसलमानोंने गुजरात और महाराष्ट्रकी भूमि और उसके आसमन्तमें बहमनी राज्यकालमें लगाया था और जिसको वह चार-पाँच शतियोंतक खादपानी देते रहे। दक्खिनीके इतिहाससे अनभिज्ञ ऐसे विद्वानोंके कथनोंका परामर्श लेनेके लिए किसी अन्य समयही की आवश्यकता है। वह विषयान्तर यहाँपर अप्रस्तुत है।

यहाँपर हम नि:संदिग्ध रीतिसे कहना चाहते हैं कि विशिष्ट ऐतिहासिक कारण-परम्परासे भारतकी राष्ट्रभाषा हिन्दीके विकासका सिहरा मुसलमानोंके शिरही देना, ऐतिहासिक सत्यके अधिक समीपतर प्रतीत होता है। इस प्रकारका कथन कठोर लगता है। लेकिन उस कारणसे वस्तुस्थितिके सत्य होनेमें कोई बाधा नहीं आती।

**कथानकोंका स्वरूप**

दक्खिनीमें जो सैकडों मस्नवियाँ आजतक लिखी गई हैं उनमें से कुछ मस्नवियोंका ऊपर उल्लेख किया गया है। इन मस्नवियोंके कथानकोंपर एक दृष्टिक्षेप करना दिलचस्पीसे ख़ाली नहीं है। कथानकोंके देखनेसे इस भाषाके धार्मिक, सांस्कृतिक और सामाजिक पृष्ठ-भूमिका संदर्शन हो सकता है। जैसा कि ऊपर देखा जा चुका है दक्खिनी हिन्दीके सबही साहित्यिक निरपवाद रीतिसे इस्लामधर्मी हैं। यह वस्तुस्थिति इस भाषाके सम्बन्धमें विशेषरूप है। भारतकी सबही अन्य भाषाओंकी स्थिति इसके विरुद्ध है। उन भाषाओंमें सबही लेखक मुसलमानेतर हैं। उनमें अपवादका प्रमाण नहीं के बराबरही है। काव्यों वा साहित्यकृतियोंके कथानककी उपज साहित्यिक वा सामाजिक परम्पराकी वाहक होती है। इस लिए दक्खिनीके कथानक स्वरूपको देखना लाभदायक आवश्यक है।

दक्खिनीके साहित्यको देखनेपर कथानकोंका वर्गीकरण निम्न प्रकारोंमें हम कर सकते हैं। (१) धार्मिक-व्यक्ति, कथा, इतिहासपर आधारित कथाएँ जिनका मूल धार्मिक भावनामें है। कुछ साहित्यकृतियाँ ऐसी हैं जिनमें कोई विशेष कथानक या कहानी तो है नहीं, परन्तु मस्नवी अवश्यही लिखी गई है। ऐसी कृतियोंकी गणना विषयके अनुसार धार्मिक वर्गमें वा अन्यत्र करनी होगी। दक्खिनीमें तसव्वुफ़की कुछ मस्नवीयाँ हैं। भारतीय परिभाषामें उसको भक्तिमार्ग और वेदान्त कहा जा सकता है। लेकिन इस्लाममें भक्ति नहीं है। क्यों कि उस धर्ममें साकार और सगुण ईश्वरकी कल्पना नहीं है। इसलिए भक्ति और वेदान्तपरक मस्नवियाँ धार्मिक क्षेत्रमें ही सम्मीलित होंगी।

(२) मस्नवियोंका दूसरा वर्ग पुराणकथाओंका है। भारतीय साहित्यमें पौराणिक कथाएँ अगणित है। लेकिन दक्खिनीमें ऐसी पुराणकथाओंकी बड़ी त्रुटी है। भारतमें पाई गई इस्लामी संस्कृति बहुतकुछ अरब परम्परा और सीमित रूपमें ईरानी परम्परापर आधारित है। अरबोंने हालही में जहालत से यअ़नी अज्ञानयुगसे मुहम्मद पैगम्बरके अवतारके बाद नए युगमें शक ५४४ में पदार्पण किया। अरबोंमें पुराणकथाओंकी परम्परा बहुतही सीमित और कम मात्रामें है। भारतकी इस्लाम परम्परा ईरानी सांस्कृतिक परम्पराकी वारिस

है। परंतु अरब पुरस्कृत ईरानी मुसलमानोंने ईरानकी प्राचीन पौराणिक परम्पराको तज दिया है। ईरानकी प्राचीन ज़रतुष्ट्रधर्मी और आर्य संस्कृतिकी परम्परा (शक ५७२ के पूर्वकी) मुसलमानोंके लिए अशेषतया त्याज्य है। इसलिए आधुनिक फ़ार्सी साहित्यमें और परिणामतः दक्खिनी हिन्दी और उर्दूमें भी ईरानी प्राचीन परम्परा दिखाई नहीं देती। यह परम्परा फ़िर्दौसीके शाहनामा बृहद्ग्रंथमें पूरी तरहसे दिखाई देती है। वह कुछ सीमित मात्रामें दक्खिनी आदिमें प्रतिबिम्बित हुई है। एवं च दक्खिनीमें और उर्दूमें भी पौराणिक कथानकोंकी संख्या बिलकुलही कम हैं। फ़ार्सी भाषामें मुसलमानोंके हाथों केवल पाँच दस पौराणिक कथानक शेष हैं। सुहराब व रुस्तुम, फ़र्हाद व शीरीन यह केवल ईरानी पौराणिक कथानक हैं। यूसुफ़ जुलैख़ा यह अरबीमूल पौराणिक कथानक है, जिसमें जुलैख़ा मिस्रदेशकी रूपमती, तिलोत्तमा राज्ञी थी। कथानक और अधिक नहीं दिखाई देते। किन्तु साहित्यिक संकेत अधिक मात्रामें पाए जाते हैं। उपर्युक्त कथानकोंपर आधारित, किसी फ़ार्सी कृतिके अनुवादरूप या स्वतंत्र कृतिके रूपमें अनेक मस्नवियाँ दक्खिनीमें लिखी गई हैं। उनको गिनवानेकी आवश्यकता नहीं है। लेकिन समूचे रूपमें ऐसी मस्नवियोंका प्रमाण अल्पही है।

इस्लामी संस्कृतिमें पौराणिक कथाओंका अभाव उर्दू लेखकोंको भी खटकता है। उन्होंने इसका स्पष्टीकरण प्रस्तुत करनेकी चेष्टाभी की है। महाकवि मुल्ला वजहीके गद्य ग्रंथ सबरसके पात्रों और कथानकका वर्णन करते हुए, पाकिस्तानके एक लेखक सय्यद जावीद अख़्तरने "क़ौमी जबान" नामी कराचीके एक मासिकके जून १९६७ के अंकमें यह विचार प्रस्तुत किए हैं। "सबरस ग्रंथ मालारूपक है। (Allegory) दुनियाकी क़रीब क़रीब हर भाषामें मालारूपकात्मक कथानक मिलते है। शायदही कोई मुल्क ऐसा हो जहाँ इस कलाक्षेत्रमें अपनी बुद्धिपरीक्षा न की गई हो। संस्कृतमें हितोपदेश, फ़ार्सीमें अन्वारे-सुहैली, अरबीमें इख़्वानुस्सफ़ा और अंग्रेजीमें पिल्ग्रिम्स प्रोग्रेस और हॅपी प्रिन्स आदि इसी प्रकारकी प्रसिद्ध साहित्यकृतियाँ हैं। इस सम्बन्धमें एक बात विशेष रूपसे उल्लेखनीय है। और वह यह कि जिन देशोंमें देवमाला अथवा पौराणिक कथाओंकी रूढ़ि रही है वहाँके साहित्यिकोंको इस प्रकारकी कहानियाँ लिखनेमें बड़ी सहूलत रहती है। उदाहरणार्थ, संस्कृत या हिन्दी साहित्यमें जहाँ सम्पत्ति और विद्याको रूपकात्मक बनानेकी आवश्यकता पड़ी, वहाँ पर लक्ष्मी और सरस्वतीके पात्र सादर कर दिए। अंग्रेजी और अन्य पाश्चात्य भाषाओंके साहित्यमें लेखकोंने ग्रीक पुराणों (Mythology) से सहायता ली है। और सुंदरताको जीवन प्रदान करना है तो व्हेनसका पात्र ले लिया। लेकिन इस्लामी राज्योंमें च्यूंकि मूर्तिपूजा धर्मविरुद्ध है, इस लिए मुसलमान लेखकोंको मालारूपकात्मक कहानियाँ लिखते समय विशेष कठिनाई प्रतीत करना पड़ती है। इसके अतिरिक्त यह कि वह 'प्रेम' को 'प्रेम' कहें और 'हुस्न' को 'हुस्न'। और कोई सुरत इन पात्रोंको जीवित करनेकी नहीं। स्पष्ट है कि इस प्रकार कहानीके तहमें दिलचस्पी और संघर्ष (Suspense) मौजूद नहीं रहते जो मालारूपककी एक विशेषता होती है, और यही कारण है कि इस्लामी मुल्कोंमें जो कृतियाँ इस कलाक्षेत्रमें लिखी गई हैं उनके पात्र ग़ैर-दिलचस्प और बेजान पुतले प्रतीत होते है।"

यहाँपर पौराणिक कथाओंके अभावके लिए मूर्तिपूजाके न होनेका कारण बतलाया गया है। यह कार्यकारणभाव ग़लत तथैव अनैतिहासिक है। पौराणिक कथाएँ किसी संस्कृतिमें निर्माण होनेका मुख्य कारण उस संस्कृतिकी सहस्रावधि वर्षोंकी प्राचीनता है।

अगर कोई संस्कृति प्राचीन न हो तो उसमें पौराणिक कथाएँही कहाँसे पैदा होंगी? भारतीय इतिहासमें पांडव, कौरव, रामकृष्ण आदि पात्र ऐतिहासिक माने जाते हैं। परन्तु वह इतने प्राचीन हैं कि वह अब पौराणिक कथापात्रोंमें समाविष्ट हो गए हैं। अनेक भारतीय ऋषियोंका यही हाल है। वह ऐतिहासिक होनेके बावजूद अब अनैतिहासिक और पौराणिक माने जाते हैं। इस्लाममें मूर्तिपूजा न होनेपर भी, कुछ पौराणिक पात्र, फ़ार्सी और उर्दू अदबमें अवश्यमेव उपलब्ध हैं, जो ईरान या ईजिप्तकी संस्कृतिसे इस्लामने लिए हैं। अन्वारे-सुहैली, भारतीय पंचतंत्रके अनुवादसे अनुवादरूप रूपान्तरही है। अरबी अलिफ़ लैलाकी कहानियाँ पंचतंत्रके अनुवादरूप कलीला व दमना से ली गई हैं। दक्खिनी और उर्दू साहित्यमें जितनाभी कथासाहित्य उपलब्ध है वह अधिक तर भारतीय कथापरम्पराओंपर आधारित है।

(३) तीसरा वर्ग सामाजिक कथानकोंका है। फ़ार्सी और दक्खिनी वा उर्दूमें इन्हीं कथानकोंकी भरमार है। अत्यधिक संख्यामें यही सामाजिक कथानक हैं। इब्न निशातीका फूलबन, नुस्रतीका गुलशने-इश्क़, ग़वासीका सैफ़ुल्मुल्क और बदीउलजमाल इत्यादि मस्नवियाँ सामाजिक कथानकोंपर आधारित हैं। जो पाठक दक्खिनीके अंतरंगसे सुपरिचित हैं उनके लिए यह बात नई नहीं है कि फूलबन, गुलशने-इश्क़, सैफ़ुल्मुल्क व बदीउलजमाल यह केवल दूरसे ही फ़ार्सी वा अरबी नाम दिखाई देते हैं। जब हम थोड़ीसी गहराईमें पहुँचते है तो स्पष्ट हो जाता है कि यह सब कथाएँ भारतीयमूल प्राचीन कथाओंपर आधारित हैं। हमारा संपादित फूलबन हिन्दी पाठकोंके सामने है। फूलबनके कथानक और गौण कथाओंकी चर्चा हमने वहाँपर प्रस्तुत की है। गुलशने-इश्क़ यह केवल नामही अभारतीय है, परन्तु पूरा कथानक और काव्यका सब वायुमण्डल केवल भारतीय है। इस काव्यकी काव्यवस्तु मंझनकृत मधुमालती (लेखनकाल शक १४६७—हिजरी ९५२) के कथानकपर आधारित है। मंझनकी कृतिका संपादन डॉ. माताप्रसाद गुप्तने शक १८८३ में प्रकाशित किया है। लेकिन सांस्कृतिक दृष्टिकोनसे कथावस्तुकी चर्चा नहीं पाई जाती। ग़वासीकी प्रथम कृति मैना सतवंती, मुल्ला दाऊदकी हिन्दी जगतकी सर्वप्रथम उपलब्ध मस्नवी चंदायन (शक १२९९) के कथानकपर—जो भारतीय लोककथा है—आधारित है। ग़वासीने काव्यका नामभी भारतीय रखा है। उसकी दूसरी कृति सैफ़ुल्मुल्क और बदीउलजमालमें ग़वासीने नाम तो अरबीमूल बना दिया। लेकिन काव्यके शरीर और आत्माको बदलना उसके बसके बाहरका काम था। वह उसके हाथों न बन पानेकी बात थी। केवल नाम और कतिपय फ़ार्सी अरबी शब्दोंके सिवा—जो तद्भवरूपोंमें प्रयुक्त हैं—उस काव्यमें अभारतीय कुछ नहीं। कथावस्तु, भाषा (मराठीसे प्रभावित) और सांस्कृतिक वायुमण्डलमें यह मस्नवी केवल भारतीय जीवनका चित्रण हैं। वह हिन्दीमें प्रकाशित है, परन्तु सांस्कृतिक दृष्टि इस संपादनमें अप्राप्य है। दूसरे अच्छे संपादनकी आवश्यकता है। यही मानदण्ड वजहीके क़ुतुब-मुश्तरी और सबरसको लग जाते हैं। वहभी भारतीय वायुमण्डलमें लिख गए हैं। ग़वासीका तोतीनामा एक फ़ार्सी कृतिके अनुवादरूप संस्कृत शुकसप्ततिका दक्खिनीमें अनुवाद है। एवं च हम देखते हैं कि दक्खिनीकी प्रमुखतर कृतियाँ अवधी, राजस्थानी आदि भाषाओंमें प्राप्त कृतियोंके समान, केवल भारतीय परम्पराकी उपज हैं। फ़ार्सी लिपिके अनभिज्ञोंकी अरबीमूल ग्रंथनामोंसे बिचक कर अलग रहनेकी कोई बात उन कृतियों नहीं है। डॉ. ग्यानचंद जैनके "उर्दूकी नयी दास्तानें" (अंजुमने-तरक़्क़ीए-उर्दू, कराची, शक १८७६) उर्दू ग्रंथसे कथावस्तुके मूलस्रोतका अंदाजा पाठकोंको हो सकता है। दुर्दैवसे डॉ. जैन दक्खिनीके काव्यरूप कथावस्तूओंकी चर्चा नहीं कर सके।

## ऐतिहासिक कथानक

सब आधुनिक आर्य भारतीय भाषाओंका विचार करते समय, दक्खिनी हिन्दीकी एक महनीय विशेषता सामने आ जाती है। वह यह कि इन सब भाषाओंमें केवल दक्खिनी हिन्दीही ऐसी भाषा है जिसने सर्वप्रथम ऐतिहासिक मस्नवियोंका निर्माण किया। ब्रज, अवधी मैथिली, राजस्थानी भाषाओंमें, जहाँतक हमको मअ़लूमात हैं, कोई ऐतिहासिक मस्नवियाँ— इतिहासपर आधारित आख्यानक काव्य, नहीं लिखी गई हैं। लेकिन उपरोक्त थोडेसे विहंगमावलोकनसे यह बात सामने आई है कि दक्खिनी हिन्दीने इस क्षेत्रमें महनीय कार्य किया है। सर्वप्रथम इस क्षेत्रमें **नवरस** ग्रंथका उल्लेख किया जा सकता है। वास्तवमें यह द्वितीय इब्राहीम आदिलशाह (शासनकाल शक १५०२–१५४८) के ६०–७० पद्यों और गीतोंका संग्रह है जिसमें इतिहासकी मूल्यवान् सामग्री मिल जाती है। विशेषकर सांस्कृतिक पहलूओंपर इस काव्यसे काफ़ी प्रकाश पडता है। यह पद्य शक १५२२ में संगृहीत हुए। अब्दुलका **इब्राहीमनामा** शक १५२५ में (हिजरी १०१२) लिख गया। वास्तवमें इस काव्यमें इतिहास थोडाही क्यों न हो लेकिन मूल कथावस्तू तो ऐतिहासिकही है। यही बात बाणभट्टके हर्षचरितम्को भी लागू होती है। इसके पश्चात् हसन शौक़ीका **फ़तहनामए निज़ामशाह** ग्रंथ है जो शक १५४८ (हिजरी १०३५) में लिखा गया है। इसकी चर्चा ऊपर आ गई है। विजयनगर साम्राज्यके विरोधमें मुसलमानी सत्ताओंके एकत्र आ कर घड़ा हुआ तालीकोटका रणसंग्राम इस मस्नवीका काव्यविषय है। इस काव्यविषयकी कहीं बू भी दूसरी भाषाओंमें दिखाई नहीं देती। इस ग्रंथका परिचय हमने भारतीय इतिहास काँग्रेस और महाराष्ट्रेतिहास परिषदके अधिवेशनोंमें अंग्रेजी और मराठी भाषामें इतिहासविदोंको करा दिया है। उसके साथ इतिहाससाधनभूत अन्य दक्खिनी ग्रंथ भी हैं। यह हमारा प्रबंध मराठी त्रैमासिक पत्रिका "इतिहास आणि संस्कृति" क्रमांक ८, शक १८८८ में प्रकाशित हो चुका है। दुर्दैव है कि फ़तहनामए–निज़ामशाहकी मूल एकमेव हस्तलिखित प्रति कराचीमें गिरवी पड़ी हुई है। इसके ३९ वर्ष पश्चात् लिखा गया महाकवि नुस्रतीका **अ़लीनामा** महाकाव्य, मस्नवी दक्खिनी हिन्दीका अनेक पहलूओंसे भूषण है। इतिहाससाधन की दृष्टिसे यह अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। उसमें भाषावैज्ञानिक सामग्रीका भी भाण्डार पड़ा हुआ है। उर्दूमें उसकी केवल संहिता प्रकाशित हो चुकी है। नुस्रतीकी दूसरी छोटीसी मस्नवी **तारीख़े-इस्कंदरी**भी इतिहासका मूल्यवान् साधन है। हमारी संपादित उसकी संहिता अब हिन्दी पाठकोंके सामने आ गयी है। यह मस्नवी शक १५९४ में लिखी गई। दक्खिनीमें लिखा गया—**जंगनामए आ़लिम अ़ली ख़ान और निज़ामुल्मुल्क,** एक मस्नवी ग्रंथ शक १६४२ में लिखा गया है। काव्य महत्त्वपूर्ण नहीं लेकिन उससे औरंगाबाद, उसका आसमन्त और कुछ ऐतिहासिक घटनाएँ, सामने आ जाती हैं। इस कालके पश्चात् टीपू सुल्तान आदिके इतिहास लिखे गए हैं, लेकिन वे उर्दूमें हैं।

## एक कथानक

दक्खिनी हिन्दीके कथानकोंपर सोचते समय, यह बात याद आती है कि दक्खिनीके कवियोंमें एक विशिष्ट कथानक विशेष कविप्रिय रहा है। वह है ऐसे प्रेमियोंका जिसमें युगुलमें से युवती हिन्दु हुआ करती है और युवक मुसलमान। दोनोंके प्रेमकी परिपूर्णता होना अशक्य है, इस लिए युवक तड़प तड़प कर मर जाता है। पश्चात् युवतीपर प्रेमका प्रभाव होता है। वह प्रेतसे मीलित होती है। वहभी मर जाती है, दोनों प्रेतोंको अलग करनेकी चेष्टा होती है। प्रेत वियुक्त नहीं होते। एकही क़बरमें दफ़नाए जाते हैं।

इस मुख्य घटनापर दक्खिनीमें दो और उर्दूमें सात मस्नवियाँ लिखी गई हैं। उस कथानकने फ़ार्सी कवियोंको भी प्रभावित किया है। फार्सीमें इस विषयपर तीन मस्नवियाँ लिखी गई हैं। यह सब भारतके साहित्यिक हैं। इस विषयपर लिखी गई सबसे पहली मस्नवी **चंदरबदन व महयार** है जो शक १५८० के लगभग बीजापूरके कवि मुक़ीमीके हाथों लिखी गई। उसमें महयार नामी मुस्लिम युवा चंदरबदन नामी हिन्दु युवतीको न पा सकनेपर मर जाता है। उसकी प्रेतयात्रा युवतीके घरपर से ले जाई जाती है। प्रेत वहाँ रुक जाता है और स्थानसे हिलता नहीं। लड़की आकर प्रेतको फूल चढ़ाती है। प्रेत अब स्थानसे उठाया जाता है। लड़की प्रेतयात्रामें जाती है और अन्तमें प्रेतसे मीलित होकर मृत हो जाती है। दोनों प्रेतोंको अलग करनेकी चेष्टा व्यर्थ बन जाती है। दोनोंको एकही क़बरमें दफ़नाया जाता है। इसी कथानकका उपयोग कर मुहम्मद बाक़र आगाह वेलोरीने शक १७२१ में एक मस्नवी **'नुदरते इश्क़'** (प्रेमका अनोखापन) के नाम लिखी। शक १७०८ में सैफ़ुल्ला नामी कविने भी एक मस्नवी लिखी है। शक १७३४ (हिजरी १२२७) में ब्रीजापूरके एक उर्दू कवि चंदा हुसेनी वाक़िफ़ने लिखी। हैद्राबादके एक उर्दू कवि अब्दुल्क़ादर शाकिरने **"गुल्जारे शाकिर"** (शाकिरका उद्यान) नामी काव्य शक १८२५ में लिखा। इन छः कवियोंने उपरोक्त कथानकका ज्यों के त्यों उपयोग किया है। निम्न तीन कवियोंने कथानककी मुख्य आत्मा क़ायम रख कर अन्य बातोंमें भेद कर दिया है। लेकिन कथाका उद्देश्य वही रहता है। उर्दू साहित्यके एक उच्च श्रेणीके कवि मीर तक़ी मीरने **दर्याए-इश्क़** (प्रेम सागर) के नामसे एक मस्नवी शक १७३२ के पूर्व लिखी। वाला नामी एक ईरानी सरदारने **तालिब व मोहिनी** नामसे एक मस्नवी शक १६६० के लगभग हैद्राबादमें लिखी। इस मस्नवीमें वालाने दक्खिनीके भवितव्यके सम्बन्धमें कुछ कथन किया है। उसपर हमारा एक निबन्ध मराठवाडा विद्यापीठ पत्रिकामें (श्रावण १८८६) में प्रकाशित हो चुका है। शक १७६५ में अन्वर नामी कविने **शमए-इश्क़** (प्रेमदीप) नाम से एक मस्नवी इसी कथानकपर लिखी है।

फ़ार्सीमें इस कथानकपर तीन मस्नवियाँ लिखी गई हैं। सर्वप्रथम आतिशी बीजपूरीने लेखनी उठाई। आतिशी दक्खिनीके कवि मुक़ीमी बीजापूरीका समकालीन है। अकबरूद्दीन सिद्दीक़ीने मुक़ीमीकी मस्नवी **चंदरबदन व महयार**का सम्पादन (हैदराबाद, शक १८७८) किया है। उसके अनुसार आतिशीने फ़ार्सी कथा मुक़ीमीके पश्चात् लिखी है। इसके बाद किसी कवि 'इश्क़' ने एक फ़ार्सी मस्नवी लिखी। कोई कवि कासिम अली बेग अख़गर हैदराबादीने हाल हालमें और एक मस्नवी इसी कथानकपर लिखी है।

इन तमाम मस्नवियाँका मुख्य उद्देश धर्मप्रचार है। यह प्रचार बड़ी प्रछन्न रीतिसे कभी संकेत कर, कभी अंगुलिनिर्देशनसे और कभी खुलंखुल्ला किया गया है। इस सम्बन्धमें हम केवल मुक़ीमीकी सर्वप्रथम मस्नवी चंदरबदन व महयारका ही उल्लेख करते हैं। मुक़ीमीने चंदरबदनके पिताके मूँहसे यह वाक्य कहलवाया है।

**गुलामी में हिन्दु हुं कमतर गुलाम**
**तिरे साथ फिर मैं करूं क्या कलाम। २८३**

इस कथनका मुख्य उद्देश स्पष्ट है। आगे चल कर कवि कहलवाता है—

**मुसलमान कूं तू शरफ़—हक़ दिया**
**यो हिन्दु जनम सब में कमतर किया। २९०**

आशय और भी स्पष्ट है। अन्तमें चंदरबदन अपने प्रेमीसे अन्तिम मीलन कर लेना निश्चित करती है। लेकिन इसके पूर्व कवि लड़कीके मुखसे यह कहलवानेको नहीं भूलता।

**सुनी जो शरीअ़त क़बूली उने**
**सिदक़ ल्या कूं कलमा सो बोली उने।** ४८८

शाकिर कवि बिलकुल हालका है। इससे पता चलता है, मुस्लिम सूफ़ियोंके समानही, दक्खिनीके कवियोंकी दृष्टि और लेखन इस्लाम धर्मप्रचारके लिए नित्यही अभिमुख और पोषक रहते आया है। यह कथानक केवल काल्पनिक और कविनिर्मित है। आधुनिक डॉ. क़ादरी ज़ोर, सिद्दीक़ी आदि टीकाकारोंने उसको ऐतिहासिकता प्रदान करनेका अव्यापारेषु व्यापार किया है। लेकिन यह सब वंध्याप्रयत्न हैं। सब कवियोंका मूलस्थानभूत कथानक मुक़ीमीका चंदरबदन व महयार काव्य है। परन्तु इस काव्यमें वह कथानक ऐतिहासिक होनेकी ओर कोई आधार वा इशाराभी प्राप्त नहीं है। इसलिए उसके कविनिर्मितही होनेमें कोई संदेह नहीं।

उन्मादक प्रेमका शिकार बने युवयुवती युगुल आजभी धर्मके बंधनोंको तोडते हुए दिखाई देते हैं। ऊपर हिन्दु युवतियोंका व्यवहार मुसलमान कवियोंने काव्यविषय बना कर अपनी हेतुपूर्तिके लिए प्रयुक्त किया है। इसकी दूसरी बाजूभी विद्वानोंको ज्ञात है। मुसलमान युवतियाँ हिन्दु युवकोंपर अनुरक्त होनेके उदाहरणभी कम नहीं हैं। संस्कृत मध्यकालीन इतिहासके अभ्यासक जगन्नाथ पंडित और उनका प्रसिद्ध संस्कृत काव्य गंगालहरीसे भली भाँति परिचित है। यह पंडित कवि मुग़ल सम्राट जहांगीरकी आस्थानीमें संबद्ध था। उसका एक यवनी यअ़नी मुसलमान युवतीसे प्रेमसंबद्ध होना सर्वप्रसिद्ध है। जगन्नाथ पंडितके गंगालहरी काव्यपर दो टीकाएँ लिखी गई हैं। एक टीका शक १७५८ में सामराज अग्निहोत्रीने मेदिनी टीकाके नामसे लिखी है। उस टीकामें अग्निहोत्रीने बतलाया है—

**अथ काशीस्थः कश्चिज्जगन्नाथरायनाम पंडितो धनार्जनार्थे यवनभूपतिं सिषेवे। तदा स्वगृहे वसन् सन् यवनेशात्मजासङ्गं चकार। तत्संगत्येव सर्वस्वायुः क्षपितं, यवनेशदुहितया सह काशीमागत्य शुद्धं कुरुतेति विद्वज्जनं प्रति प्रार्थितम्...... पश्चान्निर्विण्णः सन् स्वकृतगंगालहरीस्तोत्रेण गंगामस्तौषीत् तेन प्रसन्नया गङ्गया जलरूपेण प्रति लोकमेकैकं सोपानमिव द्विपञ्चाशत्सोपानान्यतिक्रम्य यवनेशात्मजया सह जगन्नाथं स्वोदके नीत्वा मोक्षं प्रापितमिति सर्वलोके प्रसिद्धम्।**

इसी काव्यपर शक १७८८ में सदाशिव नामी पंडितने और एक टीका लिखी है। उस ग्रंथमें भी उपरोक्त घटनाका अनुरोध किया गया है। इससे यह सत्य प्रतीत होता है कि जगन्नाथपंडितराज यवनीसुखानुरक्त हो गया था। जगन्नाथपंडित सम्बन्धी उपरोक्त घटानाके लिए देखिए भाण्डारकर प्राच्य संशोधन मंदिरके संचालक, डॉ. पी. के. गोडेके भारतीय विद्या, बम्बई खंड ४, विभाग १, नवम्बर १९४२ और राजस्थान भारती, बिकानेर भाग २, अंक १, जुलाई १९४८ के प्रबंध।

दूसरा एक ऐसाही प्रेमप्रकरण शक १५७८ के लगभगका इतिहासनिविष्ट है। उसका पता **चिमनीचरित** नामी संस्कृत काव्यसे मिल जाता है। यह काव्य भट्टोजी दीक्षितके एक शिष्य नीलकण्ठ शुक्लने शक १५७८ में लिखा है। दीक्षित स्वयं **शब्दशोभा** नामक व्याकरण ग्रंथके रचयिता हैं, जो शक १५५९ में परिपूर्ण हुआ था। इस चिमनीचरित काव्यमें चिमनी काव्यकी नायिका है। एक अलहबिरदी खान मुग़ल सम्राट शाहजहानके कालमें

शासनीय सेवामें नियुक्त और एक सेनानी था। उसके चरित्रकी, कडियाँ डॉ. गोडेने इस संस्कृत काव्य, नासिकके समीप, सातमाला पर्वश्रेणीके इंद्राई, चांदोर और घोडप गडोंपर खुदाए गए शिलालेखोंमें प्राप्त जानकारीसे जमाई हैं। चिमनी नायिकाका अहलबिरदीखानसे नाता इस काव्यमें इस प्रकार वर्णित है—

**यासावासीदलहबिरदीज्येष्ठबन्धोस्तनूजा**
**भार्यात्वं चालहबिरदीज्येष्ठसूनोरयासीत्।**
**याता ख्यातिं जगति चिमनीत्याख्यया या गवाक्षे**
**दैवादेशात् क्वचिदथ दयादेवमेषा ददर्श। ५२।**

इससे मालूम होता है कि चिमनी अहलबिरदी (अल्लावर्दीखान) के बड़े भाईकी पुत्री थी और अलहबिरदीके ज्येष्ठपुत्रसे बिहाई गई थी। गोया चिमनी अल्लीवर्दीखानकी भतीजी और स्नुषा थी। उपर्युक्त श्लोकमें उल्लेखित दयादेवसे चिमनीका प्रेमसम्बन्ध था। काव्यसे यह ज्ञात होता है। दयादेव शर्माको अल्लावर्दीखानके अन्तःपुरमें महिलाओंको पढ़ानेका काम सोंपा गया था। दयादेव शर्मा युवा और सुमनोहर रूपयष्टीका स्वामी था। समय बीतनेपर चिमनी और युवा शर्मामें प्रेम संवर्धित हुआ। काव्यमें अल्लावर्दीखानके बड़े भाई मुख़लिस ख़ान और चिमनीके पति जाफ़रखानके उल्लेखभी किए गए हैं जो अन्य ऐतिहासिक साधनोंसे सत्य निर्धारित होते हैं। इस प्रेमकहानीमें नायिका दयादेवसे मअ़लूम करना चाहती है कि क्या वह हिन्दु था?

**हिंदू क्वाद्य व्रजसि हृदयं कुत्र मे चोरयित्वा**
**लब्धोऽसि त्वं कथमपि मया मृग्यमाणश्चिरेण। ८७।**

दयादेव उत्तर देता है कि वह ब्राह्मण है और अपना जनेवा निकाल कर बतलाता है—

**विप्रोऽहं तत् प्रणयपदवीं तेऽधिगन्तुं न योग्यो**

चिमनी कहती है—

**मैवं ब्रूयाः पुनरपि सखे योग्य एवासि यस्मात्**

डॉ. पी. के. गोडेने बतलाया है कि प्रेमसम्बन्ध सत्य और ऐतिहासिक प्रतीत होता है। डॉ. गोडेने, फ़ार्सी और दक्खिनी वा उर्दू साहित्यसे अपरिचित होनेसे, यह पृच्छाभी की है कि उन्हें यह मअ़लूम नहीं कि क्या फ़ार्सी साहित्यमें इसका उल्लेख है या नहीं।

इस प्रकरणकी अधिक जानकारीके लिए पाठक देखें—डॉ. पी. के. गोडेका प्रबन्ध—चिमनीचरितकी ऐतिहासिक पृष्ठभूमि, पूना ओरिएंटालिस्ट, खंड ६, एप्रिल १९४१ और जनवरी १९४२, पृष्ठ १४९–५८।

## और पंछीबाछा

शेख़ सनआं नामी एक सूफ़ी साधु मक्का नगरमें रहा करते थे। वह बड़े वैराग्यसंपन्न, निष्काम और भगवद्भक्त थे। उनके चार सौ शिष्य थे। वह पचास वर्षोंतक मक्कामें भक्तिमार्गका प्रचार करते रहे। किन्तु किसी प्रसंगवशात् एक ख्रिस्तधर्मी युवतीके प्रेमपाशमें जकडे गए। उन्होंने मक्काका त्याग कर रोमका मार्ग सिधारा। अपनी प्रेयसीके प्रेमके लिए उनको अपने इस्लाम धर्मको तज देना पडा, क़ुरआन जलाना पड़ा और सूकरोंकी देखभाल

करनी पड़ी। वह रोमही में रहने लगे। लेकिन अपने शिष्यों और स्वधर्मीयोंके आग्रहपर शेख़ सनआं वापिस मक्का पहुँचे और फिर इस्लामका स्वीकार किया। लेकिन उनसे अपनी प्रेयसीका वियोग सहा न गया। वह फिरसे प्रेयसीके पास पहुँच गए। उसी समय प्रेयसी इस दुनियासे चल बसी थी। शेख़ सनआंभी अपनी प्रेयसीसे चिरमीलन के लिए इस नश्वर जगत्से चल बसे।

शेख़ सनआं एक ऐतिहासिक व्यक्ति थे। उनका मृत्युवर्ष शक १०८१ दिया गया है। पहले इस मामलेका उल्लेख और वर्णन शेख़ फ़रीदूद्दीन अत्तार नामक फ़ार्सी कविने अपनी एक मस्नवी **मन्तिक़ु-त्तैर**में किया है। कहा जाता है कि अत्तारका देहान्त शक ११४३ (हिजरी ६१८) में हुआ था। इस मस्नवीमें अत्तारने सूफ़ी भक्तिमार्गके सच्चे प्रेमके प्रश्नोंकी चर्चा पक्षियोंके संवाद रूपमें प्रस्तुत की है। इसी प्रेमका वर्णन करते हुए शेख़ सनआंके प्रेम प्रकरणका वर्णन किया है। अत्तारकी इस मस्नवीका अनुवाद वजदी नामी कविने दक्खिनी हिन्दीमें किया है। वजदीने अपनी ४००० बैतोंकी मस्नवीका नाम **पंछीबाछा** रखा है। च्यूं कि मूल काव्यमें सब पंखी किसी एक श्रेष्ठ पक्षीको अपना मार्गदर्शक राजा बनाना चाहते थे, इसलिए वजदीने अपने काव्यका नाम पंछीबाछा रखा है। डॉ. ज़ोरने इदारे-अदबियाते-उर्दूके हस्तलिखितोंकी वर्णनसूचीमें मूल ग्रंथका लेखनकाल हिजरी ११४६ दिया है। अब यह मस्नवी सालारजंग दकनी पब्लिशिंग कमिटीकी ओरसे हैदराबादसे शक १८८१ में प्रकाशित हुई है। वजदीकी दो मस्नवियां हैं जो प्रकाशित नहीं हुईं। वजदीने इस कथाका अन्त इस प्रकार किया है। (पृ. ७४)—

**वह तो इतनी बात कर ख़ामोश हुई**
**इस जहां फ़ानी सिते रू-पोश हुई।**
**चूं गई वो त्यूं हमीं भी जाइंगे**
**फिर को इस दुनिया मने ना आइंगे।**
**इश्क़ का तो इस वज़अ् का है धंदा**
**शेर मर्दां का सचा यो ही फंदा।**

शेख़ सनआंके इस प्रकरणके औरभी उल्लेख मिलते हैं। क़ुत्बूद्दीन फ़ीरोज़ बीदरी नामी कविने—जिसका उल्लेख इसके पूर्व किया गया है, अपने छोटेसे काव्य पिरतनामेमें किया है। वह कहता है—

**मगर शेख़ सनआं हुवा पारखा**
**हुवा दीन खो, काफ़िरां सारखा**
**भुल्या देख तरसा की यक पूतनी**
**लगी लंग, पूजन लग्या भूतनी**
**सुरा पीव, क़ुरआन ले जालिया**
**चरा ख़ूक, दोज़ख़ अपस घालिया**

ईरानके राष्ट्रकवि हाफ़िज़ शीराज़ीने (मृत्यु शक १३११—हिजरी ७९१) शेख़ सनआंके इस धर्मत्यागकी निन्दा नहीं की है। परन्तु हाफ़िज़ने सनआंके इस कामको सच्चे प्रेममार्गके आचरणके प्रतीकरूप वर्णन किया है। उसने कहा है, "अगर तू सच्चे प्रेमके मार्गका पथिक है तो जननिंदा और किंवदन्तीकी तू चिन्ता न कर। शेख़ सनआंने अपनी कफ़नी मद्यपियोंके घरमें गिरव रखी थी।"

## ४. अब्दुल और उसकी भाषा

कविवर अब्दुलके बारेमें हमारे मअलूमात बहुतही सीमित हैं। उसके पूर्व जीवन या उत्तर जीवनकी हमको कोई जानकारी नहीं है। उसका पूरा नाम या उसके ख़ानदानका भी सही सही पता चलता नहीं। कुछ उर्दू लेखकोंने उसका पूरा नाम अब्दुलगनी बतलानेकी चेष्टा की है। अरबी भाषापर आधारित नामसंज्ञाओंको ग्रहण करनेकी आंतरिक इच्छासे पैदा हुआ यह अज्ञानपूर्ण प्रयत्न है। अलीगढ़ तारीख़े-अदबे-उर्दूके संबंधित विभागके लेखक डॉ. नज़ीर अहमदने इब्राहीमनामेके निम्नलिखित द्विपंक्तिसे अब्दुलगनी नाम पढ़नेकी हास्यास्पद चेष्टा की है। बैत है—

**तू अब्दुल किती सिफ़त कर शह बयाँ**
**रही है सो भर कर ज़मीं आसमाँ।**

"अब्दुल्किती" शब्दको उन्होंने प्रतिलिपि लेखकका प्रमाद बतला कर उसको 'अब्दुल-ग़नी' पढ़नेका प्रयत्न किया है। डॉ. नज़ीरने कविके इस सीधेसाधे वाक्यको ग़लत पढ़कर कुछ अलग अर्थ निष्पन्न करनेका ढारस किया है जो अनावश्यक और अयोग्य है। इस बैतमें अब्दुल और किती शब्द बिल्कुल अलग अलग हैं। उनको जोडनेकी कोई आवश्यकता नहीं। सरल अर्थ है कि अए अब्दुल तूं बादशाहका किती, कितना गुण वर्णन करेगा, उसके गुणोंसे आकाश और पृथ्वी भरी पड़ी हैं (देखिए पृष्ठ २५८)। डॉ. नज़ीरका यह कहना सत्य है कि कविने अपना कविनाम अथवा तख़ल्लुस अब्दुल प्रयुक्त किया है। यही उसका नाम हो सकता है। यह कविनाम निम्न बैतोंमें प्रयुक्त हुआ है—

**सो अब्दुल सिफ़त यक ज़बां क्यों करे**
**चिरी बूंद पीते न दरिया सरे** (बैत ३६)
**अगर जीब हर बाल होएँ हज़ार**
**न अब्दुल सिफ़त कर सके यक बिचार** (बैत ४९)
**उन्ही शाह उस्ताद कर सौ नज़र**
**बुलाया जो अब्दुल कू सिर हात धर** (बैत ९३)
**कह्या शाह उस्ताद अब्दुल सूं सुन**
**तूं हर यक ज़बां कर शिअर बात ख़ुन** (बैत १००)
**यहीं बच्न अब्दुल जो हैं काच से**
**तुं कर शाह उस्ताद तिस पाच से** (बैत ११२)
**यों अब्दुल सिफ़त शाह दरिया भऱ्या**
**सुन्हावन किता कौ ज़बान यक कऱ्या** (बैत २१७)
**तू अब्दुल किती सिफ़त कर शह बयान्**
**रही है सो भर कर ज़मीन् आसमान्** (बैत ६८७)
**ख़ुदा या तू अब्दुल बचन फूल कर**
**भंवर-आरिफ़ों चित् सूं मक़बूल कर** (बैत ७१२)

अब्दुल फ़ार्सी अरबी भाषाओंका कोई बड़ा भारी विद्वान् नहीं मअलूम होता। उर्दू-दक्खिनी हिन्दी, फ़ार्सी भाषाओंमें कवियोंके चरित्र और उनके साहित्यका परिचय करानेकी परम्परा बहुत पुरानी है। किसी उर्दू या फार्सी भाषाके ऐसे साहित्येतिहासमें अब्दुलका

कहीं उल्लेख नहीं हुआ है। यह तज़्किरे उसके नामका उल्लेख नहीं करते। स्वयं अब्दुलने भी उसके फ़ार्सी-अरबी न जाननेकी बात अपनी इस मस्नवीमें कह दी है। वह कहता है—

**ज़बां हिंदुई मुज सो, हूं दिहलवी**
**न जानूं अरब और अजम मनस्वी। ( बैत ९९ )**

अब्दुल कहता है कि वह दिहलवी है। इसलिए उसकी भाषा हिन्दुई है। वह अरब और अजम मस्नवी नहीं जानता। यहाँपर डॉ. नज़ीरने और एक ग़लती कर रखी है। वह कहते हैं, "लेकिन ख़ुद उसने इतिराफ़ किया है कि वह सिवाय 'हिन्दुई' (हिन्दवी) और 'दिहलवी' के दूसरी कोई ज़बान नहीं जानता।" यहाँपर डॉ. नज़ीरने 'दिहलवी' शब्दको भाषावाची मान लिया। यह सत्य नहीं है। 'दिहलवी' शब्द उसका स्थानवाचक नाम है। स्थानोंपर से ऐसे उपनाम बनानेकी ईराण भारतकी यह प्राचीन परम्परा है, जैसे क़ज़्वीनी, बरनी, अस्तराबादी, माथूर आदि। वह कहता है कि मैं दिल्लीवाला हूँ और इसलिए मेरी भाषा हिन्दुई है। अब्दुलने दिल्लीकी भाषाको दिहलवी नहीं कहा। वह उस भाषाको **हिन्दुई** कहता है। वह यह भी कहता है कि वह अरब अथवा अजमकी मस्नवी नहीं जानता। अजम अरबी भाषाका शब्द मूलत: विदेश, परदेशके लिए प्रयुक्त होता था। लेकिन अरबस्थानसे बाहर पड़े अरबोंको पड़ोसी विदेश—ईराणसे घनिष्ठ सम्बन्ध प्राप्त रहा। दोनों एक दुसरेको प्रभावित करते रहे। इसलिए कालातीतमें अजमका अर्थही ईरान देश हो गया। यहाँपर अजमका यही अर्थ अभिप्रेत है। स्वर्गीय मौलाना शिबली नुअमानीका प्रसिद्ध उर्दू ग्रंथ 'शिअरूल अजम' ईरानका काव्य, ईरानी काव्य, सर्वज्ञात है।

अब्दुलने, ईरानी परम्परा अर्थातही भारतीय मुसलमानी साहित्यकी परम्पराके अनुसार इब्राहीम आदिलशाहका वर्णन किया है। उसमें कविने कहा है —

**न मुज शाह उस्ताद सा हौर कौ**
**देवू जिस में उपमा नहीं जोर कौ। ७०**

इसका अर्थ यह कि अब्दुलको बादशाहके समान कोई उस्ताद या गुरु नहीं था। गोया अब्दुल इब्राहीमको गुरु मानता था। स्वयं बादशाहने जगद्‌गुरुकी उपाधि ले ली थी। अब्दुल तो उसका आश्रितही था। इब्राहीम उसका गुरु होही जाता है। परन्तु अब्दुलने यहाँपर सा-समानका शब्दभी प्रयुक्त किया है। मानो यह वर्णन उपमाके तौरपर है। वस्तुस्थिति यह लगती है कि अब्दुल दिल्ली निवासी था। एक कविके नातेसे इब्राहीमके आश्रयमें आया था।

इब्राहीमके पोते अली आदिलशाहके आस्थानी कवि महाकवि नुस्रतीने भी अलीको अपना गुरु बतलाया है। गुल्शने-इश्क़में (अध्याय ७.३) वह कहता है—

**मुज उस्ताद उस्तादे-आलम अछे**
**जिता अिल्म, अजबर जिसे जम अछे।**

लेकिन हम कह सकते हैं कि नुस्रतीने यह ढंग नरेशसे अपना आदर व्यक्त करनेके लिए अपनाया है। अलीनामा ग्रंथ के एक क़सीदे में (अध्याय १५.२८६) वह कहता है—

**हक़्क़ा कि मैं तुज हात का दर-अस्ल पाल्या झाड़ हूं**
**परवर्दा तूं कयता ककर शायिस्ता हूं इस बार का।**

नुस्रतीने अलग स्थानपर बतलाया है कि कवित्व ईश्वरकी देन है। (इस विषयपर देखिए राष्ट्रवाणी, पूना, फरवरी १९६६)।

यहाँ अ़ब्दुलका कथनभी बादशाहके लिए आदर बतलानेके लिएही है। इब्राहीमको अ़ब्दुलका गुरु मानना फ़ज़ूलसी बात है।

**लेखनकाल**

अ़ब्दुलके इस काव्यके लेखनकाल सम्बन्धीभी विद्वानोंमें मतभेद पैदा हो बैठा है। वास्तवमें संदिग्धताकी कोई बात, कमसे कम, इस विषयमें नहीं है। इसका कारण यह कि स्वयं अ़ब्दुलही ने काव्यान्तर्गत काव्यलेखन तिथिका उल्लेख किया है। वह कहता है—

**बचन फूल गुंद यूं बिराहीम नाम**
**किया सहस पर बर्स बारा तमाम** (बैत ७११)

यहाँपर यों तो कविने स्पष्टतया बतलाया है कि उसने इब्राहीम नामेकी फूलमाला एक हज़ार बारा में गूंदी है। सरल अर्थ यह होगा कि उसने यह काव्य हिजरी १०१२ में लिखा। परन्तु जो दो पाण्डुलिपियाँ आज उपलब्ध हैं उनमें किसी लिपिकारने यह शीर्षक-सुर्ख़ी बढ़ा दी कि, "दर तवारीख़ ख़त्मे-किताब इब्राहीम नामा शुहूर १०१२" इसपर डॉ. इथापेदेवीको यह ग़लतफ़हमी हुई कि संहितामें दिया गया सन हिजरी कालका नहीं हैं। किन्तु वह शुहूर कालगणनाका है। उन्होंने अपने प्रबन्धमें इस तथ्यको सिद्ध करनेके लिए कई पन्ने ख़र्च किए हैं। और यह बतलानेकी चेष्टा की है कि यह काव्य शुहूर सन १०१२ अथवा हिजरी १००४ में लिखा गया।

तारीख़े-अदबे-उर्दू (अलीगढ़) के इस भागके लेखक स्व. डॉ. नज़ीरने उपरिनिर्दिष्ट शीर्षक और काव्यबैत दोनोंका उल्लेख कर यह कहा है कि यह ग्रंथ हिजरी १०१२ (इ. स. १६०४) में लिखा गया (देखिए पृष्ठ २६०)। उन्होंने इस बातका ज़िक्रभी नहीं किया कि शुहूर और हिजरी काल दोनों एक कैसे हो सकते है जब कि दोनोंमें आठ सालोंका अंतर है। हमने एक प्रबन्धमें यह बतलाया है कि दक्खिनी हिन्दीकी मस्नवियोंमें जहाँ कहीं कालनिर्देशन होता है, वह हमेशाही केवल हिजरी कालगणनामें ही होता है। दक्खिनीके साहित्यिकोंने साहित्यनिर्माणको एक धार्मिक कर्तव्यकी पूर्ति माना है और इसी भावनासे मस्नवियोंमें हिजरी कालका ही उल्लेख किया जाता है (देखिए नवाए-अदब, उर्दू त्रैमासिक, अक्तूबर, सन १९६४)। सामान्यतः तो हिजरी, हिजरत आदि शब्दोंके उल्लेखसे इस कालगणनाको स्पष्ट किया जाता है। कई उल्लेख ऐसेभी मिलते है कि उसमें हिजरी शब्द प्रयुक्त न हुआ हो। तो भी किसी विद्वान्‌ने उन उल्लेखोंको शुहूर वा फ़सली कालगणना बतलानेकी चेष्टा नहीं की। कभी कभी, जैसा कि अ़ब्दुलने प्रस्तुत इब्राहीम नामेमें किया है, हिंदी भाषामें वर्षवाचक कालसंख्या दी जाती है। परन्तु कभी कभार फ़ार्सीकी अबजद पद्धतिसे कालसंख्या बतलाई जाती है। दोनों पद्धतियोंमें हिजरी कालगणनाही अभिप्रेत वा अध्याहृत है। वह अन्यतः होनेका कहींभी संकेत नहीं पाया जाता। अतः एव इस सत्यमें कोई बाधा नहीं कि अ़ब्दुलने अपनी मस्नवी इब्राहीम नामा हिजरी १०१२ में अर्थात् शक १५२५ में लिख पूरी की थी।

**भाषानाम**

हम ऊपर देख चुके हैं कि अ़ब्दुल अपनी भाषाको हिन्दुई कहता है। फ़ार्सी लिपिमें उसका उच्चारण हिन्दवीभी हो सकता है। लेकिन हिन्दवी उच्चारण असम्भव और ऐतिहासिक परम्.राके विरुद्ध दिखाई देता है। मअ़लूम ऐसा होता है कि इस भाषाका नामकरण

मुसलमानोंके हाथों हुआ है। इस शब्दका उल्लेख सर्वप्रथम मुसलमान साहित्यिकों या सूफ़ी सन्तोंके लेखोंमें मिलता है। च्यूं कि फ़ार्सी भाषा मुसलमानोंके व्यवहारकी थी, इसलिए दिल्लीकी भाषाको, जो वहाँके हिन्दुओंकी बोलचालकी भाषा थी, बोलनेवाले हिन्दुओंपर से, मुसलमानोंने हिन्दुई कहा। यही इस भाषाका सर्वप्रथम और पुराणतम नाम है। फ़ार्सी लिपिमें लिखित ग्रंथोंसे उच्चारनिर्धारणमें कोई सहायता नहीं मिलती। दोनों उच्चारण हो सकते हैं। आराब, ऱ्हस्वदीर्घादि उच्चारणचिन्ह क़हीं भी प्राप्त नहीं हैं। यह फ़ार्सी लिपिकी ही त्रुटि है। हालमें कुतुबशतक नामी एक खड़ीबोलीका नागरी लिपिबद्ध ग्रंथ डॉ. माताप्रसाद गुप्तने भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशनमें शक १८८९ में प्रकाशित किया है। इस ग्रंथमें डॉक्टर महोदयने कुतुबशतकके वार्तिकके प्राप्त कुछ भागको भी प्रकाशित किया है। इस वार्तिकका प्रतिलेखनकाल शक १५८७ (संवत् १७२२) प्राप्त है। इस वार्तिकमें हिन्दुई भाषाका उल्लेख किया गया है (देखिए, पृष्ठ २०३)—

**बीबी बिवानां कौं फारसी । हिन्दुही च्यारौं ही हकीकति। तरीक बेद की। कुरांन की।**

इस वार्तिकमें आगे चलकर लडकेका नामकरण बतलाया गया है। पृष्ठ २०४ पर यह वाक्य है—

**कि ना, यारौ बडा भाई ह्यंदू छोटा भाई मुसलमान ।**
**हिन्दूई मौं पण्डित नाम रषौ ।**

इससे पता चलता है कि फ़ार्सी लिपिबद्ध इस शब्दका वास्तव उच्चारण हिन्दुई है। न कि अन्यथा।

विद्वानोंने कई बार यह बात निःसंदिग्ध रूपसे कही है कि अमीर ख़ुस्रौने (मृत्यु शक १२४७) इस भाषाको हिन्दी कहा है और इस विधानकी पुष्टिके तौरपर ख़ुस्रौकृत नुह सिपिहरको आधार बतलाया जाता है।

यह सत्य है कि ख़ुस्रौने अपनी भाषाको हिन्दी कहा है। ख़ुस्रौने इस सत्यकी ओर अंगुलीनिर्देशन किया है कि भारतमें सब लोग यहाँकी कई भाषाएँ जानते थे, उसमें वर्णन कर, बातचीत कर सकते थे। नुह सिपिहरमें वह कहता हैं (देखिए पृष्ठ १६६)—

**हस्त दुव्वम आँ कि ज़ि हिन्द आदमियान**
**जुमला बि-गोयन्द ज़बान्हा बिह बयान ।**

ख़ुस्रौ शिकायत करता है कि भारतके बाहरके कुछ विदेशी लोग हमारी इस हिन्दी भाषाको नहीं जानते, गोया उनके होंट सिए हुए रहते हैं—

**लेकिन अज़ अक़्साए-दिगर हेच कसे**
**गुफ़्त न-यारद सुख़्ने-हिंद बसे**
**हस्त ख़ता व मुग़ल व तुर्क व अ़रब**
**दर सुख़्न-ई हिन्दीए-मा दोख़्ता-लब**

इससे ज़ाहिर है कि ख़ताके गण, मुग़ल, तुर्क, अ़रब आदि दूरदेशस्थ लोक हमारी हिन्दी नहीं जानते थे, उनके होंट सिए रहते थे। पठान, बलूच, अफगान, ख़ुरासानी आदिके सम्बन्धमें ख़ुस्रौका मौन भी महत्त्वपूर्ण है। भारतीय सब अन्य भाषाओंको ख़ुस्रौने हिन्दुई

कहा है। ग्रियर्सन आदि कुछ विद्वानोंने खुस्रौने इस भाषाको हिन्दुई कहनेका भी उल्लेख किया जाता है। लेकिन यह पूर्णसत्य नहीं है। खुस्रौके भारतीय भाषासर्वेक्षणके सम्बन्धमें एक लेख हमने हालमें सम्मेलन पत्रिका, प्रयागमें प्रकाशित किया है (देखिए भाग ५३, मार्गशीर्ष शक १८८९)। वहाँपर इस विषयकी चर्चा की गई है। यहाँपर हम खुस्रौके दो-तीन संबंधित श्लोक उद्धृत करते हैं (पृष्ठ १७९-१८०)—

**सिंदी व लाहोरी व काश्मीरी व कबर [कनर]**
**धोरसमन्दरी व तिलंगी व गुजर।**
**मअ़बरी व गौरी व बंगाल व अवद**
**दिहली व पैरामन-श अन्दर हमा हद।**
**ईन हमा हिंदूईस्त कि जि अय्यामे-कुहन**
**आ़मा ब-कार अस्त ब-हर गूनह सुख़न।**

यहाँपर खुस्रौने सिंधी, पंजाबी, काश्मीरी, कन्नड, धोरसमद्री, तेलुगु, गुजराती, तमिल, गौडी (उडिया), बंगाली, अवधी और दिल्ली और उसके आसमन्तकी भाषा, इन ग्यारह भाषाओंका उल्लेख किया है। बारहवीं भाषा कबरका नामनिर्धारण, पाठकी अशुद्धिके कारण मौजूदा हालातमें कठिन है, किन्तु वह कनर हो सकता है। धोरसमन्दरी तुळु या और कोई कन्नड बोली हो सकती है। यहाँपर खुस्रौने दिल्ली और उसके आसमन्तकी भाषाका शब्द प्रयुक्त किया है (खुस्रौ उसीको हिन्दीभी कहता है)। अन्तिम श्लोकमें खुस्रौने कहा है कि यह सब हिन्दुई हैं। गोया इन सब भाषाओंको खुस्रौ हिन्दुई कहता है। याद रहे कि उसकी इस हिन्दुईमें तमिल, तेलुगु और कन्नडभी शामिल है। गोया वह सब भारतीय भाषाओंको हिन्दुईमें समाविष्ट करता है। वह कहता है कि वह जनसाधारणको उपयुक्त हैं और उनमें हर प्रकारका साहित्य प्राप्त है।

अमीर खुस्रौके समकालीन और उनके गुरुबंधु हज़रत रोशन चिराग़ दिहलवी नामी सूफ़ी साधू थे। उनका देहान्त शक १२७८ होना पाया जाता है। उन्होंने अपने ग्रंथ ख़ैरूलमजालिसमें इस भाषाका हिन्दुईके नामसे उल्लेख कर, उसके एक-दो वाक्य उद्धृत किये हैं (देखिए अलीगढ़ तारीखे़-अदबे-उर्दू, खंड प्रथम, पृष्ठ १७)। वाक्य इस प्रकार हैं—

**अ़ली मौला चूं दीद, आगाज़ कर्द ब-ज़बाने-हिन्दूई।**
**"अरे मौलाना यह बड़ा होसी," यअ़नी 'अए मौलाना ईं मर्द बुज़ुर्ग ख़्वाहिद शुद'।**

अ़ली मौलाने जब यह देखा तो हिन्दुई भाषामें उसने आरम्भ किया, "अरे मौलाना यह बड़ा होगा।" अर्थात्, "अए मौलाना यह मर्द बुज़ुर्ग होगा।" दूसरे वाक्यमें भी जबाने-हिंदुई, हिन्दुई भाषाका शब्द प्रयुक्त हुआ है। इससे ज्ञात होता है कि खुस्रौके ज़मानेमें इस भाषाका नाम हिन्दुई समझा और कहा जा रहा था। ख़्वाजा बन्दे नवाज़ गेसूदराज़ दक्षिणमें दक्खिनी हिन्दीके आद्य गद्यलेखक और साहित्यिक माने जाते हैं। उनकी कुछ गद्य रचनाएँ प्रकाशित हैं। उनका देहान्त शक १३४४ (हिजरी ८२५) में हुआ। लेकिन उनकी रचनाओंमें इस भाषाके नामकी ओर कोई संकेत नहीं होता। कदमराव और पदम इस भाषाकी सर्वप्रथम मस्नवी है। कविकी कृति शक १३९३–हिजरी ८६६ की है। ग्रंथ अभी अप्रकाशित होनेसे निज़ामीका कहना अप्राप्य है।

**दक्खिनी नाम**

क़रेशी बीदरी बहमनी राज्यके उत्तर कालका कवि है। वह महमूद शाह बहमनी नरेश (शक १४०४ से १४४२) के राज्यकालमें जीवित था। उसने अपनी एक मस्नवी भोगफलमें इस भाषाको सर्वप्रथम दक्खिनी कह कर याद किया है।

**सो इस शाह के दौर बीदर मुक़ाम**
**यो शाअि़र किया नज़्म दखनी तमाम।**

इस क़ुरेशीने इस भाषाको हिन्दूई भी कहा है। वह कहता है—

**बरीद शाह महमूद के दौर बी**
**कए हिन्दुई को क्या कवन फ़ारसी।**

इससे अंदाज़ा हो सकता है कि इस भाषाको हिन्दूईके नामसे पुकारा जाता था। लेकिन कुछ दाक्षिणात्य विशेषताओंके कारण क़ुरेशी बीदरीने उसे दक्खिनी कहना पसन्द किया।

शाह अश्रफ़ नामी सूफ़ी साधूकी एक मस्नवी नवसरहार प्राप्त, परन्तु अभी अप्रकाशित है। उसने यह मस्नवी शक १४२६ (हिजरी ९०९) में लिख पूरी करनेका उल्लेख स्वयं अश्रफ़ही ने किया है। वह अपनी भाषाको हिन्दूई ही कहता है।

**नज़म लिखी मौज़ूं आन**
**यों सब हिंदुई कर आसान।**

और आगे चल कर वह कहता है

**यक यक बोल ए मौज़ूं आन**
**तक़रीर हिन्दुई सब बखान।**

सूफ़ी बहाऊद्दीन बाजन (मृत्यु शक १४२९–हिजरी ९१२) एक सूफ़ी साधू गुजरातके रहनेवाले थे। उनका देहान्त बुर्हानपूरमें हुआ। स्व. महमूद शीरानी और अन्य विद्वानोंने बतलाया है कि इस भाषाको वह हिन्दुई और दिहलवीभी कहते थे। उनके काव्यके कुछ शीर्षकोंमें हिन्दूई और अन्योंमें दिहलवी लिखा गया है।

बीजापूरके सूफ़ी सन्त शाह मीराँजी (मृत्यु शक १४८५–हिजरी ९७०) के कुछ श्लोकोंका उल्लेख इसके पूर्व हो चुका है। शाह मीराँ पहले, सर्वप्रथम साहित्यिक हैं जिन्होंने हिन्दी शब्दका भाषाके अर्थमें प्रयोग किया। उनके पूर्व लोगोंने उसको हिन्दुईके रूपमें याद किया था। वह कहते हैं—

**यह हिंदी बोलूं सब — इस अरतों के सबब।**
**यो देखत हिन्दी बोल — पन मअ़नी हैं निपतोल।**

मीराँजीके पुत्र बुर्हानूद्दीन जानमभी एक अच्छे कवि थे। उनका देहान्त शक १५२१ (हिजरी १००७) में होना पाया जाता है। उन्होंने अपनी भाषाको अपने पिताके समान, साफ़ तौर

पर हिन्दी कहा है। अब शककी पंधरहवीं शतीके अन्तमें हिन्दुई शब्द जाता रहा और उसका स्थान हिन्दी शब्दने ले लिया। वह कहते हैं—

**अ़ैब न राखें हिंदी बोल**
**मअ़नी तो चक देख धुंडोल।**

आगे चल कर वह लिखते हैं—

**हिन्दी बोलों किया बखान**
**जे गुरुपरसाद था मुंज ग्यान।**

खड़ीबोलीने दक्षिणापथमें ढाई सौ सालोंकी यात्रा पूरी कर ली थी। इस भाषामें पर्याप्त प्रवाह पैदा हो चुका था। दक्षिणमें वह आ़म तौरसे हिन्दीके नामसे प्रसिद्ध थी। कुछ कविसाहित्यिक उसको दक्खिनीभी कह लेते। गोवलकुण्डेके नरेश मुहम्मद क़ुली क़ुतुबशाह (मृत्यु शक १५३३–हिजरी १०२०) और उसका दरबारी कवि अहमद दकनी इस भाषाको हिन्दुईही कहा करते थे। इसकी पश्चात्की शतीमें दकनी, दखनी शब्द अधिक रूढ हुआ। यही सिलसिला शक १७५० तक जारी था जबसे कि उर्दू नाम प्रसृत हुआ। बीजापूरके प्रथितयश कवि हाशमी (देहान्त शक १६२०–हिजरी ११०९) कहता है—

**दखनी सलीस जग में क्या शिअ़र है तुम्हारा**
**बोले हैं ख़ूब बहुति च ग़ज़लां बी कई जनानी।**

**गर्वोक्तिका अभाव**

दक्खिनी हिन्दीके कवियोंमें साधारणतया गर्वोक्तिसे काम लेनेकी रीति आ़म है। वह हर छोटेमोटे कविमें पाई जाती है। इस समय यह बात याद दिलानेकी आवश्यकता इस लिए है कि इसी कालमें इस लांछनास्पद दुष्ट प्रथाका प्रादुर्भाव हुआ है। इसी दशक, दो दशकोंमें द्वितीय इब्राहीम आदिलशाह, अ़ब्दुल, अहमद दकनी (गोवलकुण्डा, जीवितका, साधारणत: शक १५३३–हिजरी १०२०), मुहम्मद क़ुली क़ुतुबशाह (मृत्यु शक १५३३–हिजरी १०२०), मुल्ला वजही (जीवित शक १५५८–हिजरी १०४५) आदि साहित्यिक इस भाषामें साहित्यका निर्माण कर रहे थे। उपरोक्त कवियोंमें सिर्फ़ मुल्ला वजहीने अपनी प्रथम मस्नवी क़ुतुब मुश्तरीमें अपनी काव्यशक्ति और अपने काव्यकी अपूर्वतापर गर्वोक्तिका आविष्कार किया हैं। उसने यह मस्नवी शक १५३१ (हिजरी १०१८) में, अ़ब्दुलकी काव्यकृतिके केवल छ: साल बाद लिखी है। यूं देखा जाए तो वजही एक उत्कृष्ट कवि और शैलीवान् गद्यलेखक है। उसका सबरस ग्रंथ अपूर्व है। उस ज़मानेमें (लेखन काल १५५८) उसकी यह कृति अपूर्वही है, आजभी वह दक्खिनी हिन्दी और हिन्दी भाषाके लिए ललामभूत है। भारतीय साहित्यमें सेकड़ों, नहीं हजारों कविसाहित्यिक हैं जिनकी कृतियोंमें अपूर्वता ज़रूर है। लेकिन इन भारतीय साहित्यकोंमें कविकी गर्वोक्ति कहीं दिखाई नहीं देती। शायद कविकुल शिरोमणि कालिदासने उनको शिर ऊपर उठानेका मोक़ा नहीं दिया। कालिदासके काव्य, नाटक, महाकाव्य श्रेष्ठतर होनेके बावजूदभी, रघुवंशके

प्रास्ताविकमें उसने अतीव नम्रता और विनयकी भूमिका तज नहीं दी। विद्वानों और समीक्षकोंको उसने अपनी कृति परख लेनेकी प्रार्थना की है।

**तं सन्तः श्रोतुमर्हन्ति सदसद्व्यक्तिहेतवः।**
**हेम्नः संलक्ष्यते ह्यग्नौ विशुद्धिः श्यामिकापि वा। १.१०**

यह भारतीय साहित्यकी परम्परा है। इस श्रेष्ठ परम्पराका अतिक्रमण क्वचितही दिख पड़ता है। यही परम्परा दक्खिनी हिन्दीमें इस कालतक बराबर चालू और प्रचलित थी। दक्षिणमें वजहीके पहले कई कवि हो गुज़रे हैं। लेकिन किसीने अपनी कृति अन्योंकी अपेक्षा श्रेष्ठतर होनेका दावा नहीं किया। ब्रज, अवधी, राजस्थानी भाषाओंमें भी वजहीके पहले कई कवियोंने रचनाएँ की हैं। लेकिन उनमें यह गर्वोक्ति नहीं मिलती। दलमऊके दाऊदकी चंदायन, जायसीकी पद्मावत, चतुर्भुजदासकृत मधुमालतीवार्ता (लेखनकाल शक १४१५), मंझनकृत मधुमालती (लेखन शक १४६७–हिजरी ९५२) इस सम्बन्धमें लक्ष्य हैं। जिस मुहम्मद क़ुली क़ुतुबशाहके युवराज होनेका वजहीने बड़ा अच्छा काव्यमय वर्णन किया है वह क़ुलीभी इस गर्वोक्तिकी बीमारीसे मुक्त था। क़ुलीके काव्यका संकलन उसके उत्तराधिकारी क़ुतुबशाही नरेश सुल्तान मुहम्मदने किया है। इस संकलनकारने कुलीके इस रोगसे मुक्त रहनेका अगत्यपूर्वक उल्लेख किया है। जो इस बीमारीमें पड़ कर जर्जर हो गए उनका भी उल्लेख किया है। सुल्तान मुहम्मदकी यह प्रस्तावना दक्खिनी भाषामें ही है। वह कहता है—

**कहे नैं कहीं शिअ्र में वस्फ़ अपस**
**जो अच शिअ्र के फ़न में ईता सरस।**

**जो भी कुई अछे शाअिर इस घात वो**
**तो बिन वस्फ़ अपस के म रय सात को।**

**अगर कम तो पच्चास हैं बैत चार**
**कहे बाज अपस वस्फ़ सीते सिंगार।**

**रह्या जाय ना शाअिरां मन मनें**
**बिन आ के वस्फ़ शिअ्र के फ़न मनें।**

**जो ख़ासा है यो शाअिरां का हर येक**
**न रें बिन कह वस्फ़ बैतां कितेक।**

**मगर शाह कहे बैत पच्चास हजार**
**धरे वस्फ़ अपस सो कहन बहुत आर।**

(ज़ोरकृत क़ुल्लियाते—क़ुली क़ुतुबशाह, हैद्राबाद शक १८६८, पृष्ठ १५) अर्थ :—उसने (क़ुली क़ुतुबशाह) अपने गुणवर्णनमें कोई पद्य नहीं लिखा, हालाँ कि वह काव्यकी कलामें इतना प्रवीण था। जो कोई इस श्रेणीके कवि होते हैं वह अपने काव्यगुण वर्णनपर लिखे बिना नहीं रहते। अगर किसीने पचासको चार कम श्लोकभी लिखें, तो भी अपनी श्रेष्ठता कहे बग़ैर उसका लेखन पूरा नहीं होता। अपना गुणवर्णन किए बग़ैर कवियोंके मनको रहा नहीं जाता। इस नरेश कविकी यह विशेषता थी कि उसने पचास हजार श्लोक (बैत) लिखे, लेकिन अपने गुणवर्णनपर कुछ लिखनेमें उन्हे बड़ी शरम, लज्जा लगती थी।

इसके विरुद्ध मुल्ला वजहीकी गर्वोक्ति, या दर्पोक्ति देखने योग्य है।

**न निपजे न निपज्या है गुन ग्यान में**
**सो तोती मुंज ऐसा हिन्दुस्तान में। २७८**

**कि बातें यो सुन कर मिरे ग्यान क्याँ**
**रह्या थक हो क़मन्याँ ख़ुरासान क्याँ। २७९**

**जिते शाअ़िरां शाअ़िर हो आइंगे**
**सो मुंज तें तरज शिअ़र का पाइंगे। २८०**

इतना कह करही वजहीकी लेखनी रुक नहीं जाती। वह आगे चल कर इसी अंदाजमें और कहता है—

**न होसी हुनर इस वज़अ़ किस सिते**
**न करसी क़दम कोइ अंगे इस सिते। ३०३**

**दखिन में जो दखनी मिठी बात का**
**अदा नैं किया कोइ इस धात का। ३०६**

इस प्रकारकी कला किसीसे निर्माण न हो पाएगी। मैंने जो पदचिन्ह निर्माण किए हैं, उनसे आगे कोई भी पैर नहीं उठा सकेगा। इस दक्षिण देशमें इस मीठी और मधुर दक्खिनी वाणीमें किसीने इस प्रकार निर्मिति नहीं की है। आगे तो उसने कमालही कर दिया—

**गुहर यो मिरे यों लगे झमकने**
**कि पानी हो गय मोती संसार मने। ३१८**

**अगर ग़ोते लक बर्स ग़ौवास खाए**
**तो यक गोहर इस धात अमोलिक न पाए। ३१९**

**यो मोती नहीं वो जो ग़ौवास पाएँ**
**यो मोती नहीं वो जो किस हात आएँ। ३२०**

मेरे काव्यमौक्तिक जब झलकने लगे तो उसका परिणाम यह हुआ है कि संसारके सब मोती गिल कर पानी हो गए। अगर कोई ग़ौवास (समुद्रमें ग़ोता लगा कर मोती निकालने-वाला) एक लाख वर्षभी ग़ोते लगाता रहे तो इस मूल्यका एकभी मोती उसके हाथ न लगेगा। यह ग़ौवासोंको मिलनेवाले मोती नहीं हैं, यह ऐसे मोती नहीं कि अन्य किसी के हाथ लगें। डॉ. ज़ोर और अन्य समीक्षकोंने कहा है कि यहाँपर शब्द ग़ौवाससे, अब्दुल्ला क़ुतुबशाहके आस्थानी कवि मुल्ला ग़ौवासीकी ओर इशारा है। वजही और ग़ौवासी समकालीन और एकही दरबारसे संबंधित थे।

फ़ार्सी और उर्दू भाषामें इस कविगर्वोक्तिको तआ़ली (अपना बढ़कपन बतलाना) कहते है। अब्दुलके काव्यमें इस गर्वोक्तिका अभाव है। वह इस बीमारीका शिकार नहीं हुआ है। उसने सिर्फ़ इतना संकेत किया है—

**अगर लक अमोलिक रतन जोत होए**
**न बिन जोहरी तिस पछाने तो काई ।। ११०**
**हन्या काच हौर पाच यक तोल है**
**वलेकिन बुझनहार थे मोल है । १११**
**यहीं बच्न अब्दुल जो हैं काच से**
**तूं कर शाह उस्ताद तिस पाच से । ११२**

अगर कोई रत्न लाख मूल्यका क्यों न हो, जब तक रत्नपारखी न हो उसको कोई पहचानता नहीं। काच मणि और पाचू दोनों हरे होते हैं। परन्तु परीक्षकसे उनका मोल अलग अलग होता है। मेरे यह काचके समान बोल बादशाहके प्रवीण हाथोंमें पाच बन जाएंगे। मअ़लूम होता है कि यह अभारतीय प्रथा दक्खिनी हिन्दीमें फ़ार्सीके चिरसहवाससे आई हुई है।

**बचनवर्णन**

अब्दुलकी मस्नवीमें बचनका वर्णन छटवें प्रकरणमें (बैत ११३ से १३३) किया गया है। अगले प्रकरणमें लेखनी, पत्र और अक्षरोंका वर्णन है। ऐसा प्रतीत होता है कि अब्दुलने यह वर्णन भारतीय परम्पराके अनुसार किया है। फ़ार्सी मस्नवियोंमें बुद्धि (अक्ल) और विद्या (अ़िल्म) का वर्णन कवियोंने किया है (देखिए ई. जी. ब्राऊन, ईरानका साहित्यिक इतिहास, खण्ड २, पृष्ठ ३१९)। सनाई नामी (जीवित शक १०७२) कविने अपनी मस्नवी हदीक़तुल्हक़ीक़त (सत्यका उद्यान) में बुद्धि और विद्याका वर्णन किया है। भारतीय परम्पराके अनुसार यह वर्णन गणेश और सरस्वती-शारदाके वर्णनोंके समान और समान्तर हो सकते हैं। भारतीय परम्परामें यह दोनों देवता बुद्धि और विद्याके प्रतीकात्मक प्रतिनिधि हैं। दक्खिनी हिन्दीके मस्नवी-लेखनमें अब्दुलही पहला कवि है जिसने बचनका वर्णन प्रस्तुत किया है। हो सकता है, यह फार्सी कवियोंके बुद्धि और विद्याके वर्णनके अनुसरणमें हो या गणेश और सरस्वतीके। सरस्वती वाणीकी देवता है। सरस्वतीको वाग्देवीही कहा जाता है। वाक्का ही अनुवाद बचन शब्दमें किया गया प्रतीत होता है। चतुर्भुजदास ने अपनी मस्नवी मधुमालती वार्ता शक १४१५ में लिखी। उसमें केवल एकही बैतमें गणेश और सरस्वती का वन्दन किया गया है।

**वर विरंचि तनया वर पाऊं संकर पूत गणपति मनाऊं।**

मंझनने अपनी मस्नवी मधुमालतीमें फ़ार्सी परम्पराकी देवतास्तुतिके सिवा किसी औरका वर्णन नहीं किया हैं। मुल्ला वजहीकी प्रथम मस्नवी (शक १५३१–हिजरी १०१८) क़ुतुब-मुश्तरीमें बचन-वर्णन नहीं किया गया है। वजहीने अलबत् श्रेष्ठ काव्यके गुणोंकी चर्चा की है और अपना काव्य श्रेष्ठ होनेका दावा भी किया है। गोवलकुण्डाके राजकवि ग़ौवासीकी तीन मस्नवियाँ प्राप्त व प्रकाशित हैं। उसने अपनी पहली मस्नवी

मैना सतवंतीमें बचन वा सुख़नका वर्णन नहीं किया। लेकिन उसने अपनी द्वितीय मस्नवी सैफ़ुलमुलूक और बदीउल-जमाल (लेखनकाल शक १५४८—हिजरी १०३५) में सुख़नका वर्णन प्रस्तुत किया है। वह कहता है—

**क़ुलम काफ़ व नून थे जो निकला बहार**
**तो पहले बचन कूं किया आशकार।**

**बचन का पडा नाद सीरों मने**
**किया ठार आ जीव के तन मने।**

**जो कुछ राज़ पर्दे में हैं ग़ैब के**
**जो कुछ हैं छिपे भेद लारैब के।**

**वुते सब बचन में समाते अहैं**
**बचन में च थे भार आते अहैं।**

काफ़ व नून याने अरबी भाषामें कुन अर्थात् ऐसा बने, हो। ईश्वरकी इस इच्छासे कि ऐसा हो, लेखनी बाहर आई, गोया, बचन, वाणी, वाक् पैदा हुई। मनुष्यके मस्तिष्कमें वह नाद निर्माण हुआ। उसने उसके मनमें, आत्मामें प्रवेश किया। अज्ञातके पर्देमें जो कुछ गूढ था वह आविष्कृत हुआ। ईश्वरी भेद खुल गए। वह सब बचनमें समा गए हैं। वह सब वाणीमें से ही बाहर आते हैं।

भारतीय साहित्यमें भी वाणीको ईश्वरका आविष्कारही माना गया है। वाणीको वाग्ब्रह्म कहा जाता है। ज्ञानेश्वरीमें श्रीगणेशके वर्णनमें कहा गया है—

**हे शब्दब्रह्म अशेष। ते चि मूर्ति सुरेख।**
**जेथें वर्णवपु निर्दोष। मिरवत असे। १.३**

आगे चल कर श्रीसरस्वतीके वर्णनमें ज्ञानदेवने कहा है—

**आता अभिनववाग्विलासनी। जे चातुर्यकलाकामिनी।**
**ते शारदा विश्वमोहिनी। नमिली मियां। १.२१**

अब्दुलने अपने बचन-वर्णनमें इसी ढंगको स्वीकार किया है। वह कहता है—

**बचन बीज है अक़्ल के मूल का**
**बचन बास है अक़्ल के फूल का। ११८**

**बचन रूप ला हक़ किया जग रचन**
**बचन जोत परकट हो क़ुदरत रतन। ११९**

इन वर्णनोंमें बहुत कुछ साम्य दिखाई देता है। निश्चित रूपसे इस विचाराभिव्यक्तिमें आदान-प्रदान होना पाया जाता है।

**ग्रन्थसार**

इब्राहीमनामा काव्यका विभाजन शीर्षकोंसे किया गया है। यह शीर्षक फ़ार्सी भाषामें लिख गए हैं। औंध प्रतिमें, जो हमारे लिए संहितानिर्धारणके लिए मूल मानी गई है, ४४ शीर्षक पाए जाते हैं। सालारजंग प्रतिमें शीर्षक २९ के पश्चात् (बैत ६१६–६१७) एक शीर्षक सीसफूलके वर्णनमें पाया जाता है, किन्तु वह औंध प्रतिमें अप्राप्य है। इसी तरह औंध प्रतिमें प्रथमतः ईशस्तुतिके लिए कोई शीर्षक प्राप्त नहीं है। इस प्रकार गोया सब शीर्षकोंकी संख्या ४६ है।

अए ईश्वर! तू मुझे अब ऐसी वाणी दे जिससे मेरे कुछ शब्द अमल्य साहित्य बनें। इस विश्वमें तूही भरा हुआ है। तूंने ही यह विश्व निर्माण किया और तेरेही रूपसे यह विश्व भरा हुआ है। जो जीवमात्र गुप्त था वह तूंने ही आविष्कृत किया। तेरेही कारण समुद्रके जीवतंतु जीवन धारण करते हैं। तूंने ही सूर्यका दीप जलाया और रातका पर्दा भी खड़ा किया। तूंही जीवमात्रके आत्माका सूत्र हाथमें पकड़कर इस विश्वका संचालन करता है। प्राणिमात्रकी बुद्धि कुंठित है कि वह स्वरूपदर्शन करानेमें हतबुद्ध है। आज तक कितनेही राजा और शूरवीर हो गए लेकिन किसीको तेरी तलाश न होने पाई। बिस और अमृतकी वर्षा करनेवाले चंद्रसूर्यरूपी दो पात्र उसीने ही निर्माण किए। अगर विश्व मृत हो गया तो उसी पात्रके अमृतस्रवनसे फिर जीवित और प्रफुल्लित हो उठता है। अगर त्रिलोकका जीवमात्रभी तेरा वर्णन करने लगे तो भी तेरे व्यक्तिमत्वका एक अक्षरभी वर्णन नहीं कर सकता। तो यह अब्दुल, एकही जिव्हा होनेपर क्या वर्णन कर पाएगा? चिड़ीके बूँद पी जानेसे समुद्र सूखा थोडाही बन जाएगा? (बैत १–३६)।

इसके बाद कविने मुहम्मद पैग़म्बरकी प्रशस्ति (नअ़त) लिखी है (बैत ३७ से ५०) इस जगत्का गुसाईं आदितः अकेला था। उसने मुहम्मदको पैदा किया और अन्य लाखों शरीर उत्पन्न हूए। उसीके कारण ईशभक्तिकी शरीअ़त आदि चार अवस्थाएँ पैदा हुई। उसीसे जगत्के दिलपर सत्यका प्रकाश पडा। सूर्यने ईमान, श्रद्धाका रूप धारण किया। मुहम्मदने ही इश्क़ (ईश्वरभक्ति) को सत्यरूपमें समझ लिया। मुहम्मदही अन्तिम पैग़ंबर सिद्ध हुआ। अगर एक एक बालमें हज़ार जिव्हा हो तोभी यह अब्दुल उसका वर्णन नहीं कर पाता। अपने साथ अपने सहाय्यक और संतति लेकर उसने पंचायतन प्रदान किया। इसके पश्चात् (बैत ५१–६०) कविने पैग़ंबरके चार सहाय्यक वा साथी अबू बकर, उमर, उस्मान और अ़लीकी प्रशंसा की है। यह प्रथम चार ख़लीफ़ा हैं। प्रथम ख़लीफ़ाकी विशेषता उसकी सत्यप्रियता, दुसरेकी न्यायप्रियता, तिसरेकी सभ्यता और चौथे अ़लीकी उदारता और शूरता कविने वर्णन की है। उसके बाद कविने सय्यद मुहम्मद बन्देनवाज़ गेसू दराज़का —जो दक्षिणके सबसे ऊँचे दर्जेके सूफ़ी साधु हैं, गुणवर्णन प्रस्तुत किया है (बैत ६१ से ६८)। कविने ख़्वाजा बन्देनवाज़को सब ईश्वरभक्तोंका शिरोमणि बतलाया है। मुसलमानी परम्परामें सच्चे सूफ़ीको शाह कहते ह। बन्देनवाज़का भक्तिक्षेत्रमें राज्य अपूर्व है। जब इस शाहने चाहा तो उसने फ़ीरोज़शाह बहमनी जैसे बलिष्ठ राजाको गद्दीसे दूर किया और अहमदशाह बहमनीको सिंहासन प्रदान किया। अपना काव्य सुरस बनानेके लिए कविने उसका आशीर्वाद चाहा है।

चौथे शीर्षकमें कविने फार्सी मस्नवीसे अनुसारित दक्खिनी हिन्दीकी मस्नवीकी परम्पराके अनुसार सामयिक नरेश और काव्यनायक द्वितीय इब्राहीम आ़दिलशाहका गुणगान किया है

(बैत ६९ से ९९)। अब्दुलने बादशाहको ईश्वरांश बतलाया है। राजाके ईश्वरांश होनेकी कल्पनाको फ़ार्सी और अ़रबी साहित्यमें ज़िलूल्ला, ज़िल्ले-अल्लाह, ज़िल्ले-सुबहान कहते हैं। इस संकेतका इतिहासपरक विवरण भूमिकामें (पृष्ठ ४७) कुछ विस्तारके साथ किया गया है। अब्दुलने कहा है—

**अथा रूप मख़्फ़ी जो सुबहान का**
**हो परगट जगत शक्ल सुल्तान का। ७२**
**लक़ब शाहे-आ़दिल बिराहिम मिलाए**
**किया हर्फ़ नौ रूप मिल कर ख़ुदाई। ७३**

शाहे-आ़दिल बिराहिम इन नौ अक्षरोमें यह ईश्वरांश आविष्कृत हुआ है। जो नौ प्रकारके रस इस संसारमें निर्मित हैं वह सब इस नरेशमें पाए जाते हैं। उन रसोंको ईश्वरने इस नरेशके रूपसे व्यक्त किया है। इस नरेशके गुणपुष्पोंकी माला मैं क्यों कर गूंद सकता हूँ। इस नरेशके पास विद्या और लक्ष्मी दोनों निवास करती हैं। इसके समान कोई राजा आजतक नहीं हो पाया। प्लेटोके समान विद्वत्ता धारण करनेवाले कई गुणीजन इस राजाके दरबारमें मौजूद हैं। यह राजा जगत्‌गुरु है। उसका स्पर्शमणि जिसको स्पर्श कर जाता है उसका लोहकण सुवर्ण बन जाता है। इस राजाका काव्य (किताबे-नौ-रस) तो संसारमें सदा याद रहेगाही (बैत ९६)। कवि पूछता है कि वह किस भाषामें चरित्रलेखन करे। वह दिल्ली का निवासी और उसकी भाषा हिन्दई है। वह फ़ार्सी-अ़रबी काव्यपरम्परासे अनभिज्ञ है (बैत ९७–९९)।

काव्य और काव्यलेखन सम्बन्धी बादशाहके मार्गदर्शनका उल्लेख आगे चल कर (बैत १०० से ११२) कविने पेश किया है। काव्य किस भाषामें लिखा जानेकी पृच्छा करनेपर इब्राहीम आ़दिलशाहने उत्तर दिया कि तुम किसीभी भाषामें अपना काव्य कह सकते हो। काव्यकी कला हर देशमें एकही प्रकारकी है; क्यों कि काव्यकी आत्मा प्रेम है और प्रेमका स्वरूप सर्वत्र एकही होता है। अलबत बातोंका रूप अलग अलग हो सकता है, वह छपन्न प्रकारकी हो सकती है। राजाने कहा कि तू जिस देशकी भाषा बोलता है उसी भाषामें तू अपना काव्य प्रस्तुत कर। काव्यके बोल तुम किसीभी ज़बानमें ले लो, लेकिन उनमें अर्थरत्नोंको जड दो। तू अपना काव्य काव्यगुणोंसे ऐसा सालंकृत कर दे कि विद्वानोंकी नज़रमें सब गुणदोष खुल जाएँ। काच और पाचकी परख रत्नपारखियोंसे ही बन पाती है।

अब (बैत ११३ से १३३) कविने वाणी (सुख़न) और काव्यशब्दोंका वर्णन प्रस्तुत किया है। यह वर्णन भारतीय परम्पराके सरस्वतीवर्णनके ढंगपर किया गया है। सृष्टिके सब वस्तुमात्र और जीवमात्रके विकासका गूढ वाणीसे ही आविष्कृत होता है। सृष्टिका आदि और अन्त वाणीही के आधीन है। शब्दसे ही त्रिलोकका ज्ञान हो सकता है। ज्ञान गोया एक महासमुद्र है, दिल उसकी ऊर्मियाँ हैं, बुद्धि उस अगाध समुद्रमें ग़ोते लगाती है और जिव्हाके ज़रिए होंटोंके किनारे अर्थरत्न बाहर पड़ते हैं। रत्न और वाग्रत्नमें बड़ा फ़र्क़ है। रत्न तो पत्थर हैं और खदानमें से निकलते हैं। लेकिन वाग्रत्न तो दिलकी गहराईसे अमोलिक रूप धारण कर बाहर आते हैं। इसके प्रश्चात् कविने कागद (काग़ज़) और वर्णोंकी प्रशंसा की है (बैत १३४ से १४४)। बुद्धि शिकारी है, दिल तलवार, चिंतन धनुष्य, वचन बाण और कान हिरन हैं। उस हिरनकी नाभीसे कस्तूरी निकल पड़ती है और उसकी सुगंधसे विद्वान् संतुष्ट हो जाते हैं।

### ग्रन्थारम्भ और नरेश वर्णन

अब ग्रंथका आरम्भ होता है (बैत १४५ से १९६)। इब्राहीम नामा ग्रंथका कवि आरम्भ करता है। बादशाहके गुणोंसे दुनिया भरी पडी है। स्वर्ग, मृत्यु और पाताल लोकोंमें उसके गुणोंने सरोवरका रूप धारण किया है। राजाके गुणोंका एक महान् वृक्ष बना हुआ है। उस वृक्ष की जड़े पृथ्वीधारी कच्छ और शेषको लग कर वह बेचैन हैं। इस झाडका विस्तार आठ दिशाओंमें ज़मीन और आकाशमें फैला हुआ है। राजाको कविने चंद्र और सूर्यकी उपमा दे, उनके समान प्रकाशमान् वर्णन किया है। लेकिन आगे चल कर (बैत १७०) कहता है कि मैं राजाको चंद्र और सूर्यकी उपमा कैसे दूँ। सूर्य तपता है तो उसका तेज संसारको दाहक बन जाता है और चंद्र कलाक्षीण और कृष्णमुख बन जाता हैं। सूर्य बारह कला तपता है और चंद्रको सोलह कला होती हैं। इस प्रकार चंद्रसूर्यकी २८ कलाएँ होती हैं। परन्तु राजा तो चौसष्ट कलाओंका (विद्या) स्वामी है। राजाकी सुंदरताकी कहानी सुनो। ईजिप्तका सुंदरशिरोमणि यूसुफ़ इसकी सुंदरता देखकर हैरान होकर रह गया। यूसुफ़की सुंदरतापर एक जुलैखा लुब्ध हो गई। इस राजाको देखकर विश्व लुब्ध हो गया है। वह न्यायनीतिसे राज्य चलाता है। उसकी न्यायप्रियतापर चिडी अपना घोंसला बहरीके आंखमें बनाती है। इस राजाकी दिगंत कीर्ति हो जानेसे ऐसा लगता है कि फिरसे सिकंदर (अलेक्झांडर) राज्य करने आया है। अथवा प्रतीत होता है कि खुस्रौ अनुशीरवान (सासानी वंशका राजा) राज्य कर रहा है।

अब (बैत १९७ से २१७) इब्राहीमकी उदारताका वर्णन आया है। राजाकी उदारतारूप मेघवर्षाने संसारके दरिद्ररूपी अग्निको बुझा शान्त कर दिया। राजाके दानरूपी जलधाराओंने इस पृथ्वीको दुभंग कर दिया। राजाकी उदारतासे फिरसे बलि और कुन्तीपुत्र कर्णके नाम ज़िन्दा हो गए।

### बिद्यापुर नगर

बीजापूर शहरको (बैत २१८ से २२५) अब्दुल कविने बिद्यापूर नगरके नामसे याद किया है। बीजापूरका भाषिक मूल विद्यापुरही है। बीजापूरकी कन्नडभाषी जनता अबभी अपने इस नगरको बिजपूरके नामसे ही पुकारती है। इब्राहीम आदिलशाहने इस नगरको अपने नवरस ग्रंथके एक गीतमें बिद्यापुरी नगरी कहा है। द्वितीय अली आदिलशाहके दरबारी इतिहास लेखक नूरूल्लाने अपने फ़ार्सी इतिहास ग्रंथमें उस नगरको कई बार बिद्यापूर कहा है। अब्दुलने इस काव्यमें बिद्यापूरका उल्लेख ११ बार किया है। पृथ्वीयुवतीका बिद्यापूर गोया शीर्ष है। आगे (बैत २२६ से २६८) अब्दुलने नगरके परिधीरूपकोट, उसके अराबों (दारूखाने), क़िलेके तट, बुर्ज (हुलमुक), महल, बाजार, आदिका वर्णन किया है। शहरके अतराफ़में कोटके मजबूत तट बने हुए हैं। तटपर स्थान स्थानमें बुर्ज और अराबे लगे हुए हैं। उसके अन्दर बादशाहका प्रासाद-महल खड़ा है। इस नगरमें सब वेश और सब देशके लोग रहते हैं। नगर धनसंपत्तिसे इतना परिपूर्ण है गोया लगता है कि यह स्वर्गकी छायाही है। शहरमें घर बिलकुल हवादार हैं। शहरमें तरह तरहके बाज़ार हैं। इनमें हर प्रकारके रत्न, मोती, जवाहर आदिका क्रयविक्रय होता है। यहाँका गगन ढंढोरा पीटता है कि (जि, जे) दुनियाके दु:खी लोक यहाँ आकर सुखसे रहें। बैत २५१–२५५ में कविने परिसंख्या अलंकारसे यक्त नगरके सुखी जीवनका चित्रण पेश

किया है। शहरमें छप्पन देशके व्यापारी रहते हैं। जोहरियोंके सामने रत्नोंके ढेर पड़े रहते हैं। बाज़ारोंमें ख़ुशबू महकती है। रातके समय दुकानोंमें पंचमुखी दीप जलते हैं। हर प्रकारके लोक बाज़ारोंमें घूमते दिखाई देते हैं। बाज़ारोंमें नर्तिका और कलावंत युवतियाँ घूमनेका वर्णन (बैत २६९ से २९५) कविने प्रस्तुत किया है। अगर कोई कलावंतन कोई वाद्य बजाती हैं तो स्वर्गके लोग सुनने जमा होते हैं। अगर वह नाचने लगती हैं तो इन्द्रकी सभा आदियोंकी बुद्धि खो जाती है। उनके रूप और शृंगार अतुलनीय हैं। उन्होंने कई जोगी जंगमोंको अपने प्रेमपाशमें बद्ध कर रखा है (बैत २८५)। उन पात्रोंको संगीत, कोकशास्त्र, कला आदिका सब ग्यान है।

कुछ बैतोंमें (२९६ से ३११) कविने राजाके दरबारका वैभव वर्णन किया है। महाद्वारके किवाड सोने और चांदीके बने हुए थे। हर प्रकारके बाजे बजन्तर वहाँपर बज रहे थे। दरबारमें अनेकानेक अश्वपति, गजपति, राऊत, नरपति आदि मौजूद थे। महाद्वारपर मदमते हाथी झूम रहे थे। ऊंटोंके झुंड बाहर खड़े थे। उसी प्रकार उत्तमोत्तम घोडोंकी सेना मौजूद थी। इसके बाद कविने नौरस प्रासादका वर्णन किया है (बैत ३१२ से ३४५)। जिस प्रासादमें नरेश रहता था उसका नाम नौरस महल था। उस महलमें नौ रंग भरे हुए थे। पृथ्वीतलका कोई राजप्रासाद इस नौरस महलकी बराबरी नहीं कर सकता था। महलको अपूर्वतासे शृंगारित किया गया था। महलके खंबोंपर रत्न जड़े हुए थे। फ़र्शके चबूतरोंमें रत्न शोभायमान थे। दीवारोंपर विविधरूपकी चित्रकारी की गई थी। दीवारोंपर लिखावटें भी मौजूद थीं।

कुछ बैतोंमें (३४६ से ४०४) कविने राजाके दरबारकी शोभावर्णन की है। नरेशके दरबारको एक उद्यानके मालोपमाके रूपमें वर्णन किया गया है। अलग अलग रंगके पोशाख किए हुए सरदार गोया इस उद्यानके पौधे हैं। दरबारमें खुशबू महक रही थी, जिससे स्वर्गके देवदूत हैरान रह गए। इस दरबारमें विविध प्रकारके विद्यावन्त लोग मौजूद थे। वह हर सूक्ष्म बातके समझनेवाले थे। यह सब काव्यमय वर्णन कविने प्रस्तुत किया। इसमें कोई ऐतिहासिकताकी बात नहीं है। आगे कविने (बैत ४०५ से ४२७) बादशाहके शिकार खेलनेका वर्णन किया है। शिकारके लिए निकलते समय राजाकी आज्ञासे निशान, भेरियाँ बजीं। उस कारणसे दुनियामें हलचल मच गई। इसीका काल्पनिक, और अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णन कविने किया है। राजा लश्करके साथ शिकारको निकलता है। कविने अब (बैत ४२८ से ४५०) सेनाका वर्णन प्रस्तुत किया है। सेनामें मदोन्मत्त हाथी थे। हाथी डोंगरके समान दिखाई देते थे। अम्मारीसे रेशमी डोरिया ऐसी लटक रही थीं गोया डोंगरपर पानीके झरे (निर्झर) बहते हैं। कभी कभी हाथीके पाँवमें ऐसी जंजीरें लगी हुई थीं जैसे डोंगरोंपर साँप होते हैं। कविने घोड़ोंका वर्णन किया है। घोड़ोंके वर्णनमें बोर, कुम्मेत, तेज़ी यह तीन अरबी घोड़ोंके प्रकार बतलाए हैं। अन्य प्रकारके घोडे हैं कड्डे (भूरे रंगके), हाँसिली, अबलक, मतकसी, पंचकल्याण। घोडोंके रंग हैं दीनारी, संदल, कबूत, सारंग, मुश्की। वहाँपर अरबी, ईराक़ी, बदख़शानी, कच्छी घोडे मौजूद थे। कुछ घोडे मृगलोचनी और कुछ कानक़तरे थे। घोडे अत्यंत वेगवान् और शिक्षित होते थे कि जहाँ सवार ले जाना चाहता था वहाँपर फौरन पहुँच जाते। घोडोंको अलग अलग पोशाकोंसे सजाया गया था। यही घोडे बादशाहका जीवनाधार थे। अब (बैत ४७३) सैनिकोंका वर्णन प्रस्तुत है। बैत ४७३ अधोरा है।

मअलूम होता है कि यहाँपर सैनिकवर्णन खण्डित हो गया है। इस वर्णनमें केवल एकही जोड़ प्राप्त है। ऐसा लगता है कि यहाँ ग्रंथके कुछ पृष्ठ नष्ट हो गए हैं। इसी शीर्षकमें बादशाहकी मंजिल अर्थात् दरबारका वर्णन किया गया है।

कुछ बैतोंमें ( ४७४ से ४९७ ) राजाके कीर्तिसौरभका वर्णन है। बादशाह एक महान् सौरभशाली वृक्ष है। उद्यानवाटिकाकी वृक्षवल्लियाँ वायुसे पूछती है कि यह सुगंध किस वस्तुका है। वायुने बतलाया कि यह बिद्यापूरके बादशाहरूप वृक्षका सुगंध है। उस राज-वृक्षके अनंत गुणरूपी पानपत्तियाँ हैं। उसको बुद्धिमत्तारूपी फल लगे हुए हैं। उस राजाके आस्थानमें कई विद्वान् बैठे हुए हैं। ऐसा राजा दुनियामें कभी नहीं हुआ।

आगले बैतोंमें ( ४९६ से ५१६ ) बादशाहरूपी वृक्षको देखनेके लिए नैसर्गिक उद्यानके झाड़ बीमार हो जानेका अब्दुलने रूपकात्मक वर्णन किया है। उस उद्यानका राजा बनस्पति था। वसंत ऋतुने उस राजा और उसके वृक्षोंकी बीमारीका निदान करनेके लिए भंवर-वैद्यको भेजा। वैद्यने कहा कि इन वृक्षोंको प्रेमकी बीमारी है। उस बादशाहरूप वृक्षसे मिलनेके अतिरिक्त यह आरोग्यसंपन्न नहीं बनेंगे।

कुछ ( ५१७ से ५४६ ) बैतोंमें उद्यानमें वसंत ऋतुका पदार्पण होता है। अब पूरा उद्यान हराभरा और मनोहारी बन जाता है। दक्षिण देशके बिद्यापुरनगरमें बसनेवाले जगत्गुरु उपाधिधारी बादशाहको देखनेके लिए वसंत ऋतुरूप बनस्पति राजा अपनी वृक्षवल्ली-रूपी सेनाको लेकर मिलने जाता है। आगेके बैतोंमें ( ५४७ से ४६६ ) वसंत नरेशकी आदिलशाहसे भेंटका वर्णन है। बनस्पति राजाका बादशाहने बड़ा सम्मान किया। इसके बाद (बैत ५६७ से ५८९) आदिलशाहने बनस्पति राजासे कहा कि आइए, हम दोनों मिलकर वसंतमेला खेलें। एक तरफ़ तुम अपनी वृक्षवल्लियोंकी वनश्री लेकर आवो, दूसरी ओर हम अपनी रानियोंके साथ सजधज कर आएंगे। बनपत्त राजा इसके लिये राज़ी हो गए। रानियोंका साजसिंगार देखकर बनोद्यानके पशुपक्षी आश्चर्यचकित रहे। यह नौरोज़का त्यौहार था। इसके पश्चात् (बैत ५९० से ६०९) आदिलशाहकी बरसगांठ मनाई जाती थी। इस जशनके लिए सब विद्यावंत इकठ्ठा जमा होते थे। एक महलमें ऊँचे ऊँचे मंडप लगाए गए थे। उसमें विद्यावंत, गुणीलोक, गायन (गवय्या) जन, क़व्वाल, मीरज़ादे जमा थे। उन्होंने सबदसोहला मनाया। दूसरी ओर उत्तमोत्तम नर्तकियाँ (पातर, पात्र) जमा हो गई थीं। अब (बैत ६१० से ६४४) कविने उनके अंग उपांगों और पहने हुए अलंकारोंका वर्णन किया है। नर्तकियोंके तैल अत्तरोंका वर्णन करनेके बाद, कविने उनके वादनयंत्र और वादनका वर्णन किया है। इन पात्रोंने सात सुरोंमें बावीस तान छत्तीस रागिनियोंके राग सुनाए। उन्होंने लघु, गुरु, द्रुत, और प्लुत मिला कर गा दिखाया। नृत्योंमें नर्तकियोंने चौसट भेद दिखलाए। यह गायननर्तन इतना अप्रतिम रहा कि इंद्रसभा उसके सामने पोच रही। आदिलशाह इन्द्रसे कई बातोंमें श्रेष्ठ होनेका वर्णन कविने (बैत ६७१ से ६८१) प्रस्तुत किया है। आदिलाशाहने इस एक जशनके लिए जो रूपया ख़र्च किया उतना ख़र्च अन्य सब राजा अपने पूरे जन्म (जरम) में भी नहीं कर पाते (बैत ६८३)। आगे चलकर हमेशाके लिए बादशाह बरसगांठ मनाए, इस प्रकारका आशीष कविने प्रस्तुत किया है (बैत ६८४ से ६८६)। अए, अब्दुल तू बादशाहका कितना वर्णन करेगा ? उपान्त्य बैत(७११) में काव्यलेखनका वर्ष लिखा है। यह वर्ष एक सहस्त्र और बारह अर्थात् हिजरी सन १०१२ है। अन्त्य बैतमें ईश्वरसे प्रार्थना की है कि उसका यह काव्य विद्वानोंको पसन्द आए।

## ५. भाषावैज्ञानिक विशेषताएँ

हिन्दी भाषाका विकास अधिकतम मुसलमानोंके हाथों हुआ है। इसमें मुसलमान साहित्यिकोंके ईरानी उर्दू लिपिमें लिख गए कई हज़ार ग्रंथ, प्रकाशित अथवा हस्तलिखित अवस्थामें प्राप्त हैं। नागरी लिपिमें लिखा हुआ अब शायद एकही छोटासा ग्रंथ कुतबशतक प्राप्त हुआ है। अब वह प्रकाशित है। उस पुस्तकका वायुमण्डल देखनेसे ज्ञात होता है उसका लेखक मुसलमानही है। जो मुसलमान बाहरसे भारतमें आए उनकी मातृभाषा ईरानी थी। इन मुसलमानोंमें काफ़ी संख्यामें तुर्क थे जिनकी भाषा तुर्की थी। परन्तु जब वह यहाँपर पहुँचे तो उनपर ईरानी संस्कृति और ईरानी भाषाका पूरा पूरा प्रभाव जम गया था। भारतमें केवल तूज़्के-बाबरी या बाबरका आत्मचरित्र यह ग्रंथ तुर्की भाषामें लिखा गया। दूसरा ग्रंथ तुर्कीमें उसकी बहनने लिखा हुआ हुमायून का चरित्र है। अन्य सब साहित्य ईरानी अर्थात् फ़ार्सी भाषामें पैदा हुआ है। भारतमें आए मुसलमानोंमें अरब जातीयोंकी संख्या उड़दमें सफेदीके समान थी। भारतमें राजव्यवहारमें अरबी भाषाका उपयोग कभीभी नहीं हुआ। केवल मुसलमानोंने मस्जिदोंमें क़ुरआनकी आयतें आदि लिखवाईं। कहीं कहीं शिलालेखोंमें अरबी भाषाका प्रयोग मिल जाता है। परन्तु वह बहुतही कम मात्रामें है।

हिन्दी वा दक्खिनी हिन्दी अ़रबी-ईरानी-उर्दू लिपिमें लिखी गई। भारतमें मुसलमान शासकोंकी राजभाषा ईरानीही रही। परन्तु ईरानी भाषा जिस कालमें भारतमें पहुँची उस समय उसका बाह्यरूप और अन्तरंग अरबीसे काफ़ी प्रभावित था। ईरानी भाषामें अ़रबी शब्दोंका अनुपात काफ़ी बढ़ गया था। फ़िर्दौसी जैसे महाकवियोंने इस प्रवृत्तिको रोकनेका भरसक प्रयत्न किया। लेकिन वह इसमें असफल रहे। इस प्रश्नकी कुछ चर्चा इसके पूर्व हो चुकी है। अब केवल अ़रबी ईरानी शब्दोंके हिन्दीमें पाए गए शब्दानुपातकी ओर देखना है। अरबोंका भारतमें कोई सम्बन्ध न होनेके बावजूदभी, च्यूँ कि ईरानी भाषामें जो अरबी शब्द मौजूद थे वहभी ईरानी शब्दोंके साथ हिन्दीमें प्रयुक्त होते रहे। लोकजीवनसे सम्बन्धित कुछही तुर्की शब्द हिन्दीमें आ पाए हैं। वहभी केवल ईरानी भाषाके माध्यमसे। अरबी और तुर्की शब्दोंका हाल एकही है।

अब देखना यह है कि अ़रबी-ईरानी आदि शब्दोंके सम्बन्धमें हिन्दी भाषाने किस प्रकारका व्यवहार किया गया। आज उर्दू भाषामें जो अ़रबी-ईरानी शब्द प्रयुक्त होते हैं, उनका लेखन अ़रबी वा ईरानी भाषाओंमें उनके प्रयुक्त रूपोंके समानही होता है। गोया अ़रबी ईरानीके मूल शब्द उसी रूपमें लिखे जाते हैं जो उनका रूप मूल भाषामें है। परन्तु यह प्रवृत्ति बिलकुल नई है। यह प्रथा लगभग देढ़ दो शतियोंके पूर्व उर्दू साहित्यिकोंमें शुरू हुई। दिल्लीनिवासी सिराजुद्दीन ख़ान आर्ज़ू और उनके समसामयिक इसके प्रवर्तक थे। इसके पूर्व अ़रबी-ईरानी शब्दोंको अपभ्रष्ट वा सारूप्यीकृत रूपमें हिन्दी वा दक्खिनी हिन्दीमें प्रयुक्त किया जाता था। इस प्रथाके मूलप्रवर्तक दक्खिनीके कवि मुल्ला नुस्रतीको मानना चाहिए, क्यों कि उसने बड़ी संख्यामें इन शब्दोंका प्रयोग अपनी भाषामें किया और उनको अ़रबी-ईरानीके मूल स्वरूपके अनुसारही लिखा। उसका देहान्त शक १५९६ में हुआ। परन्तु उसके पश्चात्भी सौ वर्षोंतक पुराना ढंगही चलता रहा। नुस्रतीका प्रभाव दक्खिनी हिन्दीमें अन्य लेखकोंपर, इस मैदानमें, बहुतही कम रहा।

**सारूप्यीकरण**

सभी भारतीय भाषाओंका यह स्वभाव है कि वह विदेशी शब्दोंको अपने संस्कारोंसे संस्कारित कर अपनाती हैं। यह प्रवृत्ति प्राचीन कालसे चलती आ रही है। मेनँड्रोस विशेष संज्ञाका रूप भारतीय भाषामें मिलिंद बना। अलेक्झांडरका भारतीय रूप बना अलसन्द। मध्य और नव्य आर्यभारतीय भाषाओंने कठिन संस्कृत शब्दावलीके लिए यही नियम बना रखा। अनेक शब्दोंके प्राकृत, अपभ्रंश आदि भाषाओंमें रूप अलग अलग बनते रहे। कुक्षि शब्दका मध्यदेशमें कूख रूप बना तो मराठी भूमिमें वह कूस बना। यही नियम अन्य भाषाएँभी विदेशी शब्दोंके लिए लागू करती हैं। अ़रबी भाषाने पोतक संस्कृत शब्दको स्वीकार कर लिया, परन्तु उसका रूप फ़ूतह बना दिया। कंकायातरह (गंगायात्रा), बरामह (ब्राम्हण), कस्तरियह (क्षत्रिय), शूदरियह (शूद्र), बयशियह (वैश्य), आदि शब्द अरबी भाषामें जा पहुँचे हैं। यह सभी भाषाओंकी अपनी अपनी निजी प्रवृत्ति होती है। कभी कभी लिखावटमें तबदीली कर ले कर शब्दोंको अधिक सहज रूप दिया जाता रहा है। यह प्रवृत्ति अ़रबी भाषा और ईरानीमें विशेष रूपसे दिखाई देती है।

जब ईरानी शब्द हिन्दी भाषामें आ गए तो हिन्दी भाषाने भी उपरोक्त नियमही उन शब्दोंको लागू किया। पाँच शतियोंतक हिन्दी और दक्खिनी हिन्दीमें उच्चारानुसारी लेखन बनता आया है। भारतका भाषाविषयक वायुमण्डल विशेष है। भारतके मुसलमान अ़रबी वर्णमालाके से, सीन, साद इन तीनों वर्णोंके उच्चारमें कोई भेद नहीं करते थे और आजभी नहीं करते, नहीं कर पाते। ज़े, ज़ाल, ज़ाद और ज़ोय इन चार वर्णोंके उच्चरणमें कोई फ़र्क़ नहीं है। केवल ज़े वर्णसे निर्वाह हो सकता है। क़ाफ़ वर्णका उच्चारण क़ होता है और ख़े वर्णका ख़। दक्षिणी हिन्दीके साहित्यिक इन उलझनोंमें पडेही नहीं। उनको लिखना था, आत्माविष्कार करना था, मनोंमें आशाएँ थी, दिलोंमें उमंगें थीं, जीवनमें जिंदा-दिली थी। उन्होंने इन कृत्रिम बंधनोंको उठा कर फेंक दिया। जैसा उच्चारण किया वैसाही उन्होंने शब्दोंको लिपिबद्ध किया। यही परम्परा और परिपाठी फोर्ट वुइल्यम कॉलेजके आश्रयपर आए साहित्यिकोंतक जारी थी। अ़ब्दुल तो बहुत पूर्वका कवि है। उसने इस पुरानी और परंपरापुनीत प्रवृत्तिको ही अपनाया है। इस प्रवृत्तिको भाषिक परिभाषामें सारूप्यीकरण कह जा सकता है।

अ़रबी, ईरानी और तुर्की भाषाओंसे आगत शब्दोंके बारेमें कहा जा सकता है कि सारूप्यीकरण का अधिकतर प्रभाव अरबी शब्दोच्चारोंपर ही हुआ है। उसके एक दो कारण हो सकते हैं। ईरानी भाषा संस्कृत भाषाकी भगिनी और नव्य आर्यभारतीय भाषाओंकी सगोत्र होनेसे उसके शब्दोंके उच्चारणमें मूलभूत अन्तर नहीं है। दूसरी बात यह कि ईरानीके निजी वर्णोच्चार नागरी लिपिके उच्चारोंसे मिलतेजुलते है। अरबी वर्णमाला और उसके उच्चारण मूलतःही भिन्न होनेसे इसी भाषाके शब्दोंमें सारूप्यीकरण अधिक दिखाई देता है। तुर्की शब्दोंका अंश विशेष लक्षणीय नहीं है।

इब्राहीम नामा ग्रंथके ७१२ श्लोकार्धोंमें कुल ५००–५५० विदेशी शब्द प्रयुक्त हुए हैं। उनकी सूची अन्तमें दी गई है। जो पाठक उर्दू लिपि और ईरानी, उर्दू भाषाओंसे परिचित हैं उनको यह सारूप्यीकरण सहजगम्य बनेगा। उर्दू लिपिसे परिचयभी इसमें लाभदायक होगा। अ़ब्दुल कविने उच्चारणके अनुसार अ़रबी, ईरानी शब्दोंका लेखन किया है। यहाँपर यह बातभी याद रहे कि जैसेही दक्खिनी हिन्दी विकसित होते गई, उसको परिनिष्ठित

रूप प्राप्त होता गया, ईरानी शब्दोंका अनुपात बढ़ता गया है। उत्तरकालमें अरबी ईरानी शब्दोंका लेखन मूलानुसारी बनानेकी प्रवृत्तिभी बढ़ती गई। जिन हस्तलिखितोंकी प्रतियाँ उत्तरकालीन हैं उन ग्रंथोंमें नए शब्दोंके प्रविष्ट करनेकी प्रवृत्तिभी स्थान स्थानपर दिखाई देती है। कुछ सारूप्यीकृत अरबी ईरानी शब्दोंका यहाँपर उल्लेख करना योग्य होगा। सारूप्यीकृत शब्द और कोष्ठकमें मूल वर्णोच्चार और बैतका क्रमांक दिया गया है। मज़मून (ज़े ९४, ११५–१२४), अब्दुल (अलिफ ३६), ऐबू हुनर (वाव वर्णका लोप ९९, १०४), ग़वास (सीन १२३), रज़ा (ज़ॆ ५६९), अराबा (अलिफ २२६), फ़ाम (ह वर्णका अ ८९), मरम (ह वर्णका लोप १९५), झार (ज़हर शब्दका अपभ्रष्ट रूप, ज़ वर्णका लोप १६५), ख़त्त (तोय वर्णका द्वित्व ३४३, ३४४, ६१२), आला (ऐन और या वर्णोंका लोप ४८२, ५५३), सरू (सर्व शब्दका अपभ्रष्ट रूप ५४१, ६१२), सायत (अैन वर्णका लोप और उसका य, ७९), मेज़वानी (ब ध्वनिका रूपांतर व ध्वनिमें ५९०, ५९१), नहात (नहायत ७०३) आदि।

दक्खिनी हिन्दीके कवि वजही, ग़ौवासी, अब्दुल्ला क़ुतुबशाह, शाही (द्वितीय अली आदिलशाह) आदि कवियोंपर लिखे गए लेखोंमें हमने इस प्रश्नकी चर्चा कर उदाहरणभी दे दिए हैं। यही प्रवृत्ति सर्वत्र दिखाई देती है। दक्खिनी हिन्दींकी भारतीयताका यह एक विशेष अंग कहा जा सकता है।

**समासपद्धति**

पुरानी हिन्दीके साहित्यिकोंकी यहभी विशेषता है कि ईरानी शब्दोंका प्रयोग करनेके बावजूदभी ईरानी परम्पराकी इज़ाफ़त पद्धतिका कहीं उपयोग नहीं किया। शाहे-ईरान, शामे-वतन, गोरे-ग़रीबाँ आदि इज़ाफ़तोंका उपयोग नुस्रतीके व्यतिरिक्त अन्य कविसाहित्यिकोंमें नहीं है। अगर कहीं हैभी तो बहुतही कम। लेकिन उसका उपयोग उत्तरोत्तर बढ़ता गया है। अब वह उर्दू भाषाका विशेष लक्षण माना जा सकता है। अब्दुलके इस ग्रंथमें एकभी उदाहरण ऐसी इज़ाफ़तका नहीं मिलता। परन्तु वस्तुस्थिति इसके उलटी है। अब्दुलने संस्कृत और अन्य भारतीय भाषाओंकी समास-पद्धतिका स्वीकार किया है। अब्दुलने जिस प्रकार आर्यभारतीय शब्दोंके समास प्रयुक्त किए हैं उसी प्रकार उसमें एक शब्द आर्यभारतीय और दुसरा ईरानी, ऐसे सामासिक शब्दभी मिलते हैं। इतनाही नहीं ईरानी इज़ाफ़तको त्याग कर, उसने दोनों ईरानी शब्दोंका समास प्रयुक्त किया है। पहले प्रकारमें सहस आंक ( सहस्राक्ष-इन्द्र, बैत ६७६ ), कंठमाल (२४१), सीस-फूल (२४३), नगररूप (२४५), पाय-दल (५४३), बचन-फूल (७११), बरस-गाँठ (६८४), मंज-धार (६८९), सोने-पहाड (४४४), जय-माल (१६६), नयन-आंसू (२५१), आदि उदाहरण मिलते हैं। दूसरे प्रकारमें जोत-मअनी (१०४), मुक-महाल (११४), भंवर-आरिफ़ (७१२) लुक़मान-बुद (८८), ग्यान-नज़र (१३१), मज्लिस-बचन (११७), शह-राज (६७४), शाअिरी-बोल (१०२), कंवल-दिल (२९५), शहर-समन्द (३०४), शह-रथ (३८७), मुशक-रास (३९२), झाड-लश्कर (५४६), शह-रूप (६७३), आदि उदाहरण लक्ष्य हैं। तीसरे प्रकारमें नबी-आल और मअशूक़-नाज़ (बैत ६३) लक्ष्य हैं। ईरानी परंपरामें पहलेकी इज़ाफ़त नबीबो-आल होती और दूसरेमें नाज़े-मअशूक़ शब्द बनता। परन्तु अब्दुलने भारतीय परिपाटी अनुसृत की है। आलम-फ़ुनून ( आलमके फ़ुनून १२० ), महल-शाह (महले-शाह ६७८), शाह-महल (महलेशाह ३१२), शह-सिफ़त (सिफ़ते शह ७०९), इशक़-शाह (शाहे-इश्क़ ३९०),

शाह-दरबार (दरबारे-शाह ६०५) आदि उदाहरण लक्ष्य हैं। यहाँपर उपरोक्त उच्चारणोंके सिवा अन्य उच्चारण अशक्य है, वरन् वृत्तभंगका दोष आ जाता है। इस महत्त्वपूर्ण वस्तुस्थितिको न पा कर उर्दू पण्डितोंने इससे यह क़यास बांधा है कि ऐसे स्थानों पर निःप्रत्यय विभक्ति प्रयुक्त है। निःप्रत्यय विभक्ति ज़रूर होती है। परन्तु ऐसे शब्दोंको उसमें प्रविष्ट नहीं करना चाहिए।

इस काव्यके ७१२ बैत-श्लोकार्ध हैं। हमने हर बैतके शब्दोंका सरासरी प्रमाण देखनेका प्रयत्न किया। यह प्रमाण १२.६ पडता है। इस प्रकार इस काव्यमें प्रयुक्त शब्दोंकी कुल संख्या ९,००० के लगभग होती है। हमने उपर बतलाया है कि काव्यमें लगभग ६०० अ़रबी ईरानी शब्दोंका उपयोग हुआ है। अगर अ़रबी-ईरानी शब्दोंका प्रतिशत अनुपात देखा जाए तो वह ५–७ से अधिक होने नहीं पाता। केवल अ़रबी शब्दोंको देखा जाए तो यह दो ढ़ाई तक होता है। इससे अंदाज़ा होता है कि शककी सोलहवीं शतीके आरम्भमें अ़रबी-ईरानी शब्दोंका अनुपात बहुतही कम है। इसपर यह बातभी ध्यानमें रहे कि जब कोई धार्मिक विषय वर्ण्य हो तो ऐसे शब्दोंकी संख्या अधिकतर होती है। सामान्य लौकिक विषयोंके वर्णनमें यह शब्द औरभी कम होते हैं। यही स्थिति महान् विषयोंपर लिखनेवाले नुस़्रती जैसे बड़े साहित्यिकोंमें भी पाई जाती है।

**कुतबशतकमें**

कुतबशतक यह गद्यपद्य हिन्दी पुस्तिका लगभग शक १४०० के समीपकी लिखी हुई बतलाई जाती है। इब्राहीम नामेसे वह सौ सव्वा सौ वर्ष पूर्वकी है। लेकिन हमारा ख़याल है कि वह इससे भी अधिक पूर्वकी है। इस पुस्तकमें केवल १०० अ़रबी-ईरानी शब्द प्रयुक्त हैं। और उसमें सारूप्यीकरणका प्रभाव अधिकतर पाया जाता है। यह अधिकता ध्वन्यंतरमें विशेष रूपसे पाई जाती है। सारूप्यीकरणका यह अंग कालनिर्धारणमें महत्त्वपूर्ण समझा जा सकता है। इसके कुछ उदाहरण यहाँ प्रस्तुत है। कोष्ठकमें दिए गये अंक अनुच्छेदोंके हैं। अरदास (अर्ज़दाश्त १०८, १११), अवाज (आवाज़ ५६), आसिख (आ़शिक़ ७३), इयार (यार ७४), कइंमति (क़ीमत ११०), कुसादा (कुशादह ५९), खइर (ख़ैर ७५, १०७), खथा (ख़ता १८), जमा (जुमअ़ह २०, २२, ३९, ४६), जिमी (ज़मी ७३, ११४), जुहरी (जोहरी ११०), णजरी (नज़र ५६), तमासा (तमाशा ५९), तरकसबंद (तर्कशबंद ७५), दरेस (दर्वेश २१, २३, २६, ३९, ४६), दावल (दावर ५, १९ आदि), दाणस (दानिश ७१), दुनी (दुनिया ४१, ७४), दुसमण (दुश्मन ७४), नदरि (नज़र ४५, ५०, ५६), निवाज (नमाज़ २४, ३८), निसीब (नसीब ६८, ६९), फुरमाण (फर्मान ४, २८, ५९ आदि), मसीति (मस्जिद २०, २२, २९, ४६, ७२), सयताण (शैतान २०, ५१), सहणाई (शहनाई ७६), सहर (शहर २, ४७), सा (शाह ७७), सादानई (शादियाना २४, ७५, ११३), साख (शाख़ २२), साहा (शाह ७४), सुरताण (सुल्तान २), सुकराणा (शुकरानह ७४), सोर (शोर ५१, ५९)।

एपिग्राफीया इंडो-मोस्लेमिका सन १९१३–१४ में हरियाना प्रदेशका एक संस्कृत प्रस्तर-लेख मुद्रित है। उसके अन्तमें हिन्दी भाषाके एक दो वाक्य आ गए हैं। वह हिन्दीके आद्य भाषिक रूपोंकी दृष्टिसे अतीव महत्त्वपूर्ण हैं। यह लेख विक्रम संवत् १३३७ अर्थात्

शकसंवत् १२०२ का है। शायद यह हिन्दी भाषाका सर्वप्रथम प्रस्तरोल्लेख हो। वाक्य है– "किआशन्दीण शुरिताण रजि हरीआण इ देश है ।। पंच कोश ढिली अहु पथि पोलंम पवेश ह ।।" यहाँ गियासूद्दीन शब्दका सारूप्यीकृत रूप किआशन्दीण और सुल्तानका शुरिताण दृष्टव्य है। यहभी विशेष बात मअलूम होती है कि दिल्लीका प्राचीन नाम ढिली था। अरबी लिपिसे परिचित पाठक जानते हैं कि उर्दूमें ढ वर्णको डाल और ह वर्णोंके जोडसे लिखा जाता है। यही दिहली शब्दका मूल है। उसका मूल और दुरुस्त उच्चारण ढिली है न कि दिली। प्रत्नलेखके संस्कृत भागमें उसका उच्चारण ढिल्ली दिया गया है। नवागत और सामान्य लौकिक जीवनसे अपरिचित लोगोंने उसको दिहली कर पुकारा। दूरदेशस्थ विदेशी अंगरेजोंने ह ध्वनिको द ध्वनिसे मिला कर पढ़नेकी बजाए, उसको दिहली पढ़ा और लिखाभी जो मूल उच्चारण नहीं है। इस लेखकी अंतिम पंक्ति (२२), शायद अक्षर घिसे जानेसे, अच्छी तरहसे पढ़ी नहीं गई है। उसमें ३० शब्द आ गए हैं। नहीं मअलूम कि इस लेखका अधिक शुद्ध वाचन प्रकाशित हुआ है या नहीं।

**भाषिक स्वरूप**

दक्खिनी हिन्दीके उद्गम और विकासके सम्बन्धमें डॉ. श्री. श्रीराम शर्मा, हैदराबाद, डॉ. बाबूराम सक्सेना और स्व. डॉ. माताप्रसाद गुप्तके ग्रंथोंमें काफ़ी लिखा जा चुका है। साधारणतया यह प्रामाणिक बना हुआ है। इस लिये यहाँपर छोटीमोटी बातोंके पुनरुच्चारकी आवश्यकता नहीं है। इब्राहीम नामेमें जो भाषिक विशेषताएँ पाई जाती हैं उनका ही यहाँपर किंचित् उल्लेख किया जाता है।

ध्वनियोंके सम्बन्धमें उपरोक्त तीन ग्रंथोंमें चर्चित विषयोंसे अलगसी स्थिति इब्राहीम नामेमें विशेष नहीं पाई जाती। परन्तु मूर्धन्य ध्वनियोंके सम्बन्धमें एक बात लक्ष्य है। श्री. बाबूराम सक्सेनाजीने कहा है कि, "उत्तर भारतकी बोलचालमें जहाँ एकही शब्दमें दो मूर्धन्य ध्वनियाँ पास पासके अक्षरोंमें आती हैं, वहाँ दक्खिनीमें पहलीके स्थानमें दन्त्य ध्वनि आ जाती है, जैसे— ताँटा (टंटा)" आदि। इब्राहीम नामेमें डंडा (बैत ६५१), डाटना (१०६, १०८), डाड (१३९), धंदूरा (२४९), धूंधना (१०३, १३१) और धंदूरा (२४९) शब्द प्रयुक्त है। परन्तु यहाँपर पहली ध्वनि दन्त्य ध्वनि नहीं बनी है। अन्तिमके दो शब्दोंमें लिपिकारोंकी ग़लती दिखाई देती है। ध वर्ण ड और ह के जोडसे बनता है। ईरानीमें ड वर्ण न होनेसे तत्कालीन ईरानी लिपिकी परम्पराके अनुसार दाल वर्णपर लगाया जानेवाला तोय नहीं लिखा जाता था। यही परिपाठी बहुत कालतक चली आ रही थी। वास्तवमें इन दो शब्दोंको ढूँढना और ढंडूरा पढ़ना चाहिए। अन्य शब्दोंको देखते हुए यही उच्चारण दुरुस्त हो सकते हैं। इससे मअलूम होता है कि यह नियम इस काव्यमें नहीं अपनाया गया है। यह शक्य भी है, क्यों कि अब्दुल दिल्लीनिवासी और हिन्दीभाषी है। उसका बीजापूरमें वास्तव्य दरबारकी हदतक ही सीमित रहा हो। अब्दुलके पूर्वकालिक दक्खिनीके कवियोंमें यह दन्त्य ध्वनियाँ पाई जाती हैं। शाह मीराँजी आदि अनेकोंकी कृतियोंमें यह नियम पाया जाता है।

कुतबशतक ग्रंथमें भी अब्दुलके समानही स्थिति दिखाई देती है। ठंढ (अनुच्छेद १०१), ढंढिनी (३३), ढुंढना (२९) यह शब्द इस पुस्तकमें मिलते हैं। इससे मअलूम होता है कि इब्राहीम नामा और कुतबशतक उत्तरी हिन्दीके ग्रंथ है। वह दक्खिनी हिन्दीसे इस विशेषतायें

भिन्न हैं। दूसरी बात यह निश्चित होती है कि प्रथम मूर्धन्य ध्वनिको दन्त्य ध्वनिमें परिवर्तित करनेकी प्रवृत्ति उसने मराठी भाषासे अपनाई है। यह मराठीमें पुराण कालसे चालू है, जैसे तंटा, धुंडणे, तुटणे, धुंडाळणे, दाटणे, दपटणे, थंड-थंडी आदि।

संज्ञाके सम्बन्धमें डॉ. बाबूराम सक्सेनाने बतलाया है कि (पृष्ठ ४६) साहित्यिक खड़ी बोलीमें व्यंजनान्त पुलिंग संज्ञाओंका अविकारी विभक्तिक एकवचन और बहुवचन दोनोंमें एकही रूप रहता है, पर दक्खिनीमें बहुवचनके लिए अविकारीमें भी आँ जोड दिया जाता है। डॉ. सक्सेनाजीका यह नियम दक्खिनीके लिए ठीकही है। परन्तु अब्दुलने इस काव्यमें खड़ीबोलीकी परम्परा अपनाई है, दक्खिनीकी नहीं। उसने अकारान्त पुलिंग संज्ञाओंमें बहुवचनके लिये कोई प्रत्यय नहीं लगाया, जैसे गान (गवय्या, बैत ६७९), जनावर (बैत ४८७), झार (बैत ३५७, ४७५, ६०५-१३), तिर्लोक (४०७), दाक (५४४), दांत (३५०, ४३४), थाल (३५३), पर्वत (४३५), पहार (४३१), फूल (३८८), महाबत (५३२), मानिक (३६१, ३६५), रत्न (३८२), लोक (३८४, ६०१), हस्त (हाथी ४५०) आदि।

हिन्दीमें आकारान्त पुलिंग संज्ञाका बहुवचन अंतिम आ ध्वनिको ए में बदल कर बनाया जाता है। ईरानी भाषाके ऐसे पुलिंग शब्द जिसके अन्त है हो और जिनका उच्चारण उर्दूमें पुर्ज़ह या पुर्ज़ा होता है उनका बहुवचन हे को ए से बदल देनेसे बनता है। खड़ीबोलीने अब्दुलके ज़मानेमें ऐसे विदेशी शब्दोंके लिए यह नियम निर्धारित किया था, जसे पुर्ज़े ( ३५६ ), दीदे (३६२, ५६४), चश्मे (४१९), गाशे (४४४), रत्न आले (५५३), हौज़ख़ाने (५६२) आदि।

अकारान्त स्त्रीलिंग संज्ञाओंका बहुवचन आँ जोड कर बनाया गया है, जैसे फौजाँ (४२७), मौजाँ (४२९), मेख़ाँ (४३७), पातराँ (६०८), छालाँ (५४४)। मालूम होता है कि अब्दुलने किरन शब्दको स्त्रीलिंग माना है। उसका बहुवचन किरनाँ ( ३६६, ३९१ ) प्रयुक्त किया गया है। यह प्रथा कुतबशतकमें भी पाई जाती है (देखिए पृष्ठ २९), जैसे वाटचाँ (३८), वात्यां (३९), आवाज़्यां (५६)। दक्खिनी हिन्दीमें भी यही प्रवृत्ति दिखाई देती है।

डॉ. सक्सेनाके अनुसार साहित्यिक खड़ीबोलीकी इकारान्त-ईकारान्त स्त्रीलिंग संज्ञाओंमें इस अविकारी विभक्तीके बहुवचनमें याँ जुडता है। उसी तरह दक्खिनीमें भी। परन्तु इब्राहीम नामेके इस काव्यमें इसके वैकल्पिक रूपभी मिलते है। उर्दू लिपिके सदोष होनेसे ईकारान्त संज्ञाओंके रूप दक्खिनीमें ढूंढ निकालना अशक्य और असम्भव है। मूर्त्याँ और मूर्तियाँका उर्दू लिपिमें भेद पाना असम्भव है। परन्तु यह भेद काव्यमें अक्षरोंके लघुगुरु भेदसे जाना जा सकता है। दक्खिनीमें यह दोनों रूप प्रयुक्त होते है। इस काव्यमें भी यही स्थिति दिखाई देती है, जैसे ( काव्यमें लघुगुरुत्वके लिहाज़से ) तिवास्याँ ( ३४८ ), डाल्ह्याँ (४८४), दिवटचाँ (३९१), लकऱ्याँ (४०५), सख्या (सख्याँ ४२१), बागुल्या (बागुल्याँ ४३६), जंजीऱ्याँ (४४१), कंचल्याँ (४४२), ख़वुश्यां (५२५), कऱ्याँ (५३१), छतऱ्यां (५३६), राऩ्यां (५६८) आदि।

डॉ. सक्सेनाजीने बतलाया है (पृष्ठ ४६) कि साहित्यिक खड़ीबोलीकी विकारी विभक्तिके बहुवचनमें सब संज्ञाओंमें ओ या यों जोडा जाता है। पर दक्खिनीमें ओं रूप अपवाद है, सब कही-आँ-याँ रूपही मिलता है। परन्तु अब्दुलके इस काव्यमें अधिक प्रवृत्ति ओं-यों रूपोंकी पाई जाती है, जैसे आरिफ़ोंके (१२६), आरिफोंकी (१०९), शाहोंके (२३९), मोतियों, फलोंकी (२५३), डोंगरों थें (४४०), आँख्यों सूं (४९९), झाडोंकी (५०५), अंबल्यांके झाड (५४०) आदि। इसका कारण यह प्रतीत होता है कि ऊं, हूं अथवा ओं यह तृतीया चतुर्थी वा पंचमीका प्रत्यय था। इसके उदाहरण इस काव्य और दक्खिनीके प्रारंभिक साहित्यमें बहुतातसे मिलते हैं। परन्तु बादमें यह प्रत्यय विकारी रूपोंका दर्शक बना और इसके बादभी उन विभक्तियोंके प्रत्यय उसमें जोडे जाने लगे। प्रत्ययके रूपमें प्रयुक्त ऊं, हुं आदिकी चर्चा आगे आएगी।

श्री सक्सेनाके अनुसार, साहित्यिक खड़ीबोलीमें जहाँ संज्ञाको दुहरा देते हैं वहाँ दक्खिनीमें दुहराते समय पहली संज्ञाके अन्तमें ए-एं जोड देते हैं। परन्तु इस काव्यमें दक्खिनीकी प्रथा नहीं पाई जाती। अब्दुल ठार ठार (२४२, २६६), तास तास (२४४, २४९), हार हार (२६६), सात सात (२८१), थार थार (२९१, २९६, ३१७, ३८८, ४२४), नौ नौ (३७९), घर घर (३८९) आदि। परन्तु बड़े आश्चर्यकी बात यह कि कुतबशतकमें उपरोक्त दक्खिनीके रूप प्रयुक्त हैं, जैसे तबीबई तबीब ४२, ओखदइ ओखद ४२, हत्थइ हत्थ ५६, पावहं पाव ७४, तीन्ही तिन्नि ९५; खोजई खोज १०६ यह लक्ष्य हैं।

सर्वनाम शब्दोंकी बहुरूपता इस काव्यमें भी मिलती है। कुतबशतकमें पाया गया हूं (मैं) का रूप इस काव्यमें नहीं पाया जाता। हम, हमें, हमन, हमना आदि रूप उत्तमपुरुष बहुवचनमें मिलते हैं। अन्य पुरुषोंमें भी साधारणतया दक्खिनीके सभी रूप मिलते हैं। अन्य पुरुषके एकवचनमें ओ, वो (वह) रूप मिलते हैं। दक्खिनीमें वह रूप नहीं मिलता, जो रूप मिलते हैं वह हस्तलिखितोंके आधुनिकीकरणके कारण हैं। अन्य पुरुषमें कौ (७०, ९४, १९५, २१७, २३६, २५३ आदि), कौन्ह (१२६) आदि रूप लक्ष्य हैं।

**विभक्ति**

(१) कुतबशतककी भाषामें डॉ. माताप्रसाद गुप्तने प्रथमा विभक्तिके लिए (पृष्ठ ३३-३५) उ परसर्गका उपयोग होनेका उल्लेख नहीं किया है। परन्तु निम्न उदाहरण देखा जाए जिसमें तुम सर्वनामको 'ऊं' परसर्ग जोडा गया है:—

**तुमुं तरकसबंद अर इयार बाणई**
**दुनिया दाणसवंद बड़े वषाणई।** (अनु. ७५)

उर्दू लिपिके कारण उ परसर्गका निश्चित करना बड़ा कठिन होता है। परन्तु जब लेखनमें शब्द वाव वर्णसे लिखा जाता है तो इस बातका पता चलता है कि उस शब्दमें उ प्रयुक्त है। प्रस्तुत काव्यके बैत क्रमांक ९६ में शाहू शब्द वाव वर्णके साथ लिखा गया है। परन्तु वृत्तके अनुसार शब्द शाहु होना चाहिए। उसी प्रकार संहितामें लिखा गया है। परन्तु उर्दू लिपिमें शाहू वाव वर्णके साथ लिखा जानेके कारण यह निश्चित होता है कि यह मूल शब्द शाहू है।

निश्चित है कि यहाँपर शाह शब्दको प्रथमा विभक्तिका उ परसर्ग लगाया गया हैं। बैत ३८९ और ४०१ में लोहू शब्दका प्रयोग हुआ है। बैत इस प्रकार हैं—

**चुवे बूंद लोहू जो आंख्यों थें ढल**
**वही जो दीवे हो घर घर सो जल । ३८९**
**पकड सुरिज चुंगल सूं नक किर्न रात**
**दिस्या लाल लोहू शफ़क़ गगन धात । ४०१**

लोहू शब्द दोनों बैतोंमें वाव वर्णके साथ लिखा गया है। और वृत्तके अनुसार लोहू शब्दका हू दीर्घ होना चाहिए। उसी सूरतमें वृत्त ठीक होगा। बैत क्रमांक ५०२ में झारु (झार, झाड) रूप प्रयुक्त हुआ है। **सुन्या यू खबर झारु बनपत्तराव।** (५०२) यह निश्चित रूपसे प्रथम विभक्तिका रूप है और ऊ प्रयुक्त हुआ है। अनुस्वार अनावश्यक है। बसन्तरावु शब्द बैत क्रमांक ५०४, ५१५, ५२४, ५२७, ५४८, ५५० और ५५१ में, बावु शब्द बैत ५६१, ५६५ आदिमें और रावु शब्द बैत ५६७, ५६९ आदिमें प्रयुक्त हैं। औंध प्रतिमें जो इस संपादनकी संहिताके लिए ली गई है, सब शब्दोंमें अन्त्यवर्ण वाव पेश चिन्हसे लिखा गया है। इन उदाहरणोंसे स्पष्ट हो जाता है कि इस काव्यमें भी प्राकृत, अपभ्रंश, ब्रज, मराठी आदि भाषाओंमें प्राप्त प्रथमा विभक्तिका उ, ऊ परसर्ग पाया जाता है। इसमें कोई संदेह नहीं है। सरू शब्द बैत ५४१ और ६१२ में प्रयुक्त हुआ है। वास्तवमें यह शब्द ईरानी भाषाका है और उसका मूल उच्चारण सर्व है। अब्दुलने उसका सारूप्यीकृत रूप सरू प्रयुक्त किया है। यह लक्ष्य है। लगता है कि इस शब्दके अन्त्याक्षर रु वर्णमें यही प्रथमा विभक्तिका ऊ लग गया है। यही सरु दक्खिनी हिन्दीके साहित्यिकोंने प्रयुक्त किया है। आजकी उर्दू भाषामें वह ईरानीके मूल स्वरूपमें प्रयुक्त होता है। इस झाडको मराठी भाषामें सरू के उच्चारणसे याद किया जाता है। मराठीमें वह मुसलमानोंके संपर्क और दक्खिनीके माध्यमसे ही आया हुआ है। इस लिए उकारान्त सरू शब्दभी प्रथमाके उ, ऊ परसर्गकी ओर संकेत करता है। यहभी याद रहे कि तृतीया, पंचमी, आदिके परसर्ग सूं में यह उ निहित है। क्यों कि सूं बना है समम् से। उसमें यह उ परसर्ग लगकर रूप बना समूं। और उससे सउं, सूं रूप व्युत्पन्न है। इसी सूं का हूं परसर्ग बना है।

(२) स्वर्गीय डॉ. माताप्रसाद गुप्तजीने (पृष्ठ ३३-३४) बतलाया है कि कुतबशतकमें प्रथमाके लिए इ, इं, ए, एं, आदि परसर्गोका प्रयोग हुआ है। अगर ध्यानपूर्वक देखा जाए तो यहाँ प्रस्तुत सब उदाहरण ऐसे हैं कि आजकी परिनिष्ठित हिन्दीमें उन परसर्गोंके लिए ने परसर्ग प्रयुक्त होता। आगे चलकर चर्चा की गई है कि कुतबशतकमें कहींभी ने परसर्गका प्रयोग नहीं हुआ है (पृष्ठ ३४–३५) जो बिल्कुल ठीक है।

इब्राहीमनामा काव्यमें भी यह परसर्ग ने–परसर्गके स्थानपर प्रयुक्त हुए हैं। परन्तु उन परसर्गोका रूप हीं है न कि इ, इं। यहाँपर इं, एं ध्वनिके लिए हीं, हें रूप बना हुआ है (बैत ६ में)।

**तुहीं तुज थें हो जगत सब सन्या**
**तुहीं रूप आलम ले अपना भन्या।**

पहले पादमें वाक्य होगा 'तुहीं सब जगत सन्या' और दूसरे पादमें वाक्य है 'तुहीं आलम भन्या'। इन दोनों स्थानोंपर हीं परसर्ग ने परसर्गके स्थानपर ही प्रयुक्त है। गोया

हीं प्रथमा विभक्तिका ही परसर्ग है। बैत क्रमांक ६३ के इस वाक्यमें 'उन्ही साच बूझ्या है मअशूक़ नाज़' उन्ही विभक्तिका रूप 'उसने' का समविभक्ति है। गोया उन्ही शब्द उनहीं शब्दका अपभ्रष्ट रूप है। बैत क्रमांक ९३ का वाक्य "उन्ही शाह उस्ताद कर सो नज़र" देखा जाए। इसमें प्रमुख वाक्य 'उन्ही नज़र कर' यह है। अर्थ होगा 'उसने नज़र कर के' उसका स्वरूपभी ने परसर्गके प्रयोगका ही है। इस परसर्गके इतनेही उदाहरण मुझे मिल सके। शायद और कुछ मिल जाएँ। परन्तु यह संख्या बहुतही विरल है।

कुतबशतकमें भी 'हु', 'हुं', 'हं', 'हूं' आदि परसर्ग ने परसर्गके लिए प्रयुक्त हुए हैं। परन्तु गुप्तजीने उनका उल्लेख नहीं किया है। यह वाक्य इस प्रकार हैं—

(१) **दरेस हु नजरि की दीया (४६)**
(२) **बीबी हुं रोवणां मांडचा (४१)**
(३) **अमहुं षइर करी (७५·१)**
(४) **तुमहं षइर करणा (७५·२)**
(५) **मुरग हुं बांग दई (८९·३)**
(६) **गाइण हुं ललित कई (८९·४)**
(७) **जिणइ दुनिया जाणी तिणहुं का लहणा (१०२·१४)**
(८) **अपई छिपी किनहुं छिपाई (१०६·३)**

इससे ज्ञात होता है कि कुतबशतकके समयमें ने परसर्गके स्थानपर केवल इ, इं, ए, एं, हं, हुं, हूं आदि परसर्गोंसे काम लिया जाता था। कुतबशतकमें ने परसर्गका उपयोग बिलकुल नहीं पाया जाता।

(३) इब्राहीमनामा ग्रंथमें उपरोक्त हीं परसर्गके अतिरिक्त ने परसर्गका भी प्रयोग किया गया है। बैत ४७ में उसका प्रयोग है। '**अिशक़भेद बूझ्या उन्ही ने तमाम**'। इसी प्रकार ने परसर्गका प्रयोग जोड क्रमांक ७४, ३७५, ४०३, ४९४, ६३३, ६९५, ७०२ और ७०३ में हुआ है। बैत क्रमांक ४७६ मेंभी वह है। परन्तु यह बैत क्रमांक ३७५ का केवल पुनर्लेखन है। इस लिए त्याज्य है।

आजकी परिनिष्ठित हिन्दीके अनुसार और कई स्थानोंपर इस 'ने' परसर्गका उपयोग होना चाहिए था। परन्तु 'ने' परसर्गका प्रयोग नहीं किया गया है। जहाँपर प्रयोग किया जाना चाहिए था ऐसे बैत क्रमांक हैं: ६३, ८०, १००, ११९, २१३, २४३, २८३, ३१९, ३२१, ३३०, ३४०, ३४५, ३४६ ३६७, ३८१, ३९१, ४१६, ४२०, ४२१, ४९३, ५०२, ५१८, ५२०, ५६६, ५६७, ५६९, ५७७, ५८६ और ६४७। यहाँपर के वाक्योंमें ने परसर्गका प्रयोग आवश्यक था, किन्तु वह नहीं किया गया है।

अखिल भारतीय प्राच्यविद्या परिषदके अलीगढ़ अधिवेशन, शक १८८८ में हमने एक प्रबन्ध पढ़ा था कि आजकी हिन्दी, उर्दूमें प्रयुक्त होनेवाला कर्तृवाचक ने परसर्ग, दक्खिनी हिन्दीके मराठी भाषासे बने चिरकालिक सहवाससे, मराठीस दक्खिनीमें आया है। इस प्रबन्धमें

ख़ाजा बन्देनवाज़के चार रिसाले, इब्राहीमनामा, सबरस आदि दक्खिनी ग्रंथ और मराठी भाषाके आद्य साहित्यग्रंथोंके प्रयोगोंकी तुलना की गई है। डॉ. सक्सेनाने कहा है कि (पृष्ठ ५४) कर्तृवाचक परसर्ग ने का प्रयोग अनियमित है। परन्तु मराठी प्रयोगोंसे तुलना कर हमने बतलाया है कि यह अनियमितता उस कालके मराठीके व्यवहारसे अनियमित नहीं है। गोया अनियमितता मराठीका अनुकरण है। अब यह प्रबन्ध अ. भा. प्राच्यविद्या परिषदके अलीगढ अधिवेशनके वृत्तान्तमें प्रकाशित हो चुका है (पृष्ठ ३४९)।

संत नामदेव महाराष्ट्रके एक महान् लेखक हो गुजरे हैं। उनका देहान्त शक १२७२ में बना। वे पंजाबमें कई वर्ष रह चुके हैं। उनके ६१ हिन्दी पद गुरुग्रंथसाहेबमें सम्मीलित कर लिए गए हैं। नामदेवकी अभंगावली और अन्य लेखनमें बहुत कुछ प्रक्षेप हैं। परन्तु इन पदोंमें प्रक्षेप कम पाया जाता है। अब नामदेवकी हिन्दी पदावली ग्रंथ डॉ. भगीरथ मिश्र और राजनारायण मौर्यके प्रयत्नोंसे पूना विश्वविद्यालयकी ओरसे (शक १८८६) प्रकाशित हुआ है। उसमें मूल संहिता निर्धारणका प्रयत्न किया गया है। इस ग्रंथमें निविष्ट पदावलीमें ने परसर्गका प्रयोग मिलता है। विशेष बात यह कि उसका रूप वही है जो ज्ञानेश्वरी, शिशुपालवध, रुक्मिणी-स्वयंवर आदि तत्कालीन ग्रंथोंमें मिलता है। उस परसर्गका तत्कालीन रूप नि है। नामदेव पदावलीके यह उद्धरण देखे जाएँ। श्रवननि सुनिबौ (पद ९.१, बिन्दीके बादका अंक है चरणका), तिनि थिति पाई (१३.४), इनि अनेक भरमाया (३९.१), नैननि जोत देखी (६१.४), जिनि गोविंद बिसरैं (८४.१), जिनि लह्या तिनि गुन दीठा (८७.१), नैननि पाया श्रवननि खाया (८७.१), अपनौ बिरद बिसर जिनि जाई (१२४.५), जिनि बागा बनाया (१३०.१), इनि लोगोनि मारि भगायो (१३१.१)।

खडी बोलीके आज उपलब्ध ग्रंथोंमें नामदेवकी पदावली सबसे अधिक पुरानी है। ख़ाजा बन्देनवाज़, कुतबशतक आदि साहित्य पश्चात्कालीन है। इस लिए नामदेवका ने परसर्गका उपयोग महत्त्वपूर्ण है। ने परसर्गकी इस नई सामग्रीको हमने, कलकत्तामें बने अ. भा. प्राच्यविद्या परिषदके अधिवेशनमें (शक १८८९, कार्तिक) एक प्रबन्ध द्वारा प्रस्तुत किया है (पृ. ३११)। अब वह वृत्तान्तमें प्रकाशित हो चुका है।

**बहुवचन** (अविकृत)

इस काव्यमें बहुवचनके लिए विशिष्ट संज्ञाओंम आँ परसर्ग जोडा जाता है। इसका उल्लेख उपर किया गया है। कुतबशतकमें भी यह आं परसर्ग बहुतायतसे प्रयुक्त हुआ है। आ परसर्ग भी कभी कभी प्रयुक्त होता है। इस परसर्गकी चर्चा करते हुए डॉ. गुप्तने कहा है कि, "यह आन फारसीका प्रत्यय प्रतीत होता है" (पृष्ठ २८)। हमारी रायमें यह दुरुस्त नहीं है। डॉ. श्रीराम शर्माने, बीम्सको आधार बनाकर यह बतलाया है कि वह संस्कृत प्राकृतसे आया है (पृष्ठ १६८)। भारतभर फैली हुई प्राकृत और अपभ्रंश भाषाओंको देखा जाए तो डॉ. गुप्तका यह केवल अनुमान है। वास्तवमें मुसलमानोंके भारतमें पदप्रक्षेपसे पूर्वभी बहुवचनके लिए कई नव्य आर्यभारतीय भाषाओंमें आं प्रत्यय प्रयुक्त होता था। हेमचंद्रके प्राकृत व्याकरणसे भी यह ज्ञात होता है कि प्राकृतमें अकारान्त नपुंसक संज्ञाओंके प्रथमा और द्वितीयाके रूप (उदारहणार्थ वन संज्ञा) वणाणि, वणाइं, वणाइँ होते थे। हेमचंद्रने अपभ्रंश भाषाके व्याकरणका भी ढाँचा दिया है। अपभ्रंशमें अकारान्त नपुंसक संज्ञाओंके प्रथमा, द्वितीयाके बहुवचन प्राकृतके समानही होते थे। उदाहरणार्थ, कमल संज्ञाके रूप थे—कमल, कमला,

कमलाइं, कमलाइँ। अपभ्रंशकालमें जब कि नव्य आर्यभारतीय भाषाएँ जन्म ले रही थीं, बहुवचनके लिए आं परसर्गका विकास हो गया था। वणाइं, वणाइँ रूपोंसे भी केवल वना, वनां रूप शेष रह सकते है।

उक्तिव्यक्तिप्रकरण अर्थात् प्रयोगप्रकाश (लेखन साधारणतया शक १०७०) कोशली अथवा अवधी भाषाका व्याकरणग्रंथ है। इसके भाषाविशेषोंका विश्लेषण डॉ. सुनीतिकुमार चाटुर्ज्याने प्रस्तुत किया है। उन्होंने बतलाया है (पृष्ठ ३४) कि नपुंसक बहुवचनके परसर्ग अ (ए-एं) का उल्लेख किया है। दामोदर पंडितने ऐसे रूपोंका संस्कृतीकरणभी दिया है। बम्हण (ब्राम्हणान्), तिल (तिलान्), चाणा (चाणकान्) आदि रूप प्रयुक्त हुए हैं। यह बात लक्ष्य है कि यह कोशलीका व्याकरण है। यह ब्रज या हिन्दीका नहीं है। इन उल्लेखोंसे इस बातकी ओर संकेत करना है कि ऐसे बहुवचनके रूप अपवाद रूपसे इस भाषामें जा पहुँचे थे।

मिलिन्दपन्हो यह पाली भाषाका ग्रंथ शककालकी पहली शतीका माना जाता है। विंटर-निट्झने इस ग्रंथके नामके और दो पाठ अपने साहित्येतिहासमें दिये हैं। उपरोक्त रूप प्रथमाका पुलिंग एकवचन है। दूसरा रूप मिलिन्दपन्हां बतलाया है और कहा है कि यह बहुवचन है। अर्थात् यह नपुंसकका बहुवचन है। इससे पता चलता है कि बहुत प्राचीन कालमें भी अकारान्त संज्ञाओंके बहुवचनमें आं परसर्ग लग जाता था। इस परसर्गको ईरानी (फ़ार्सी) परसर्ग आन् से संबंधित करना बिलकुलही अनावश्यक और ऐतिहासिकताके विरुद्ध है।

सभी हिन्दी बोलियोंमें नपुंसक लिंगका लोप हो गया है। इस लिए नपुंसकके परसर्ग पुलिंग संज्ञाओंको लग जाना सम्भवनीय बन गया है। द्वितीया विभक्तिके लिए इब्राहीमनामेमें कूं, कों, का परसर्ग जोडा जाता है। कुतबशतकमें भी यही परसर्ग प्रयुक्त हुआ है। एक स्थानपर नु परसर्ग प्रयुक्त होनेका उल्लेख डॉ. गुप्तने किया है (पृष्ठ ३६) यह ठीकही है। परन्तु उनका यह कथन कि 'नइ' भी द्वितीयाका परसर्ग है। दुरुस्त नहीं है। यह 'नइ' शब्द वास्तवमें सादानई शब्दका अविभाज्य अंग है। यह शब्द फ़ार्सी शब्द शादयाना शब्दका अपभ्रष्ट वा सारूप्यीकृत रूप है। सादानइ शब्द तीन स्थानोंपर (२४, ७५, ११३) प्रयुक्त है और उसका अर्थ है वाद्य, बजंतर जो विवाहके अवसरपर बजाया जाता है।

## तृतीया विभक्ति

कुतबशतकमें सुं, सूं, सौं, थी, तइं परसर्ग प्रयुक्त होनेका वर्णन किया गया है। यह सबही परसर्ग अब्दुलके इस काव्यमें प्रयुक्त हुए है। उनका विस्तरशः वर्णन करनेकी आवश्यकता नहीं है। इब्राहीमनामेमें यह बात विशेष है कि उसमें आजकी हिन्दीका से परसर्ग नहीं पाया जाता है। वह कुतबशतकमें भी नहीं है।

यह बात यहाँपर उल्लेखनीय है कि सुं, सूं कभी भी ने परसर्गके लिए प्रयुक्त नहीं होता था। वह केवल से परसर्गका पूर्ववर्ती है। परन्तु ऊं, हूं परसर्ग इब्राहीमनामा और कुतब-शतकमें से और ने दोनों परसर्गोंके पूर्ववर्ती हैं। ऊं हूं का प्रयोग ने के समानार्थमें होनेका उल्लेख ऊपर आही चुका है। इ, इं, परसर्ग से के अर्थमें प्रयुक्त होनेके कुतबशतकमें उदाहरण––दोहा पंचइ च्यारि १४, साहिबां अरगजइ भीनी हइ १०२, तबीबइ तबीब ४२, ओखदइ ओखद ४२, हत्थइ हत्थ ५६ आदि मिलते हैं। आजकी प्रौढतम उर्दूमें भी इस

इ, इं (से) प्रत्ययका उपयोग जीवित रह चुका है। यह वाक्य देखिए। दामे, दिरमे, सुख्ने दोस्त की इम्दाद करना। इस वाक्यमें दाम, दिरम और सुख्न शब्दोंमें ई परसर्ग मीलित है।

आजकी परिनिष्ठीत हिन्दीकी यह विशेषता है कि तृतीयाके परसर्गके सम्बन्धमें इ, इं, और सुं, सूं का कार्यक्षेत्र बिलकुल अलग अलग हो गया है। आजकल इ, इं, परसर्गके स्थानपर केवल ने का उपयोग होता है और सुं, सूं का काम से परसर्गसे बनता है। ने कर्तृवाचक तृतीयाके लिए प्रयुक्त होता है। से परसर्गसे क्रियाके साधनकी ओर संकेत होता है। यही स्थिति उर्दू भाषामें भी पाइ जाती है, जिसका वर्णन डॉ. शौकत सब्ज़वारीने एक प्रबन्धमें विस्तरशः किया है। (देखिए, लिसानी मसायल, कराची, १९६२, ने की सरगुज़श्त) इस सम्बन्धमें हमने अपने प्राच्यविद्या परिषदके (अलीगढ १९६६) प्रकाशित लेखमें चर्चा की हैं।

कुतबशतकमें हिन्दीके इस परसर्गका परिस्फुटन नहीं हुआ है। इ, इं, उ, ऊं, या हू, हूं यही परसर्गसंच ने और से परसर्गोंका कार्य पूरा करता है। ऊं, ओं परसर्गका ने के स्थानपर किया जाता कार्य ऊपर उल्लिखित है। इब्राहीमनामेमें भी ने और से परसर्गोंके दोनों काम ऊं, ओं से लिए जाते हैं। परन्तु ने परसर्गके लिए उसका उपयोग बहुतही सीमित और कम संख्यामें है। इसके विरोधमें से परसर्गके लिए उसका उपयोग अधिक प्रमाणमें पाया जाता है। कुछ उदाहरण हैं—पुकारे सो दर्दों (४१०), हुए हैबतों लोहू पानी झऱ्या (४१२), समुन्द जीब-मौजों करे यूं पुकार (४१५), कोई रत्न-मोत्यों मुरस्सा संवार (४७०), उडी बाव जा कर सो झारों मिली (४७४), दिसें हर जिनस हो सो फूलों निगार (५५७), हर एक झाड हाथों ले खुशबूइ तान (५६१), वैस्यां लाखुं नाचें सो शह के दुवार (६८०) इत्यादि। और प्रयोग—आंख्यों (१३१, २४८), हाथों (१७७, ५६१), लाखों (१७९), दर्दों (२५२), रश्कों (३२४), नजरों (३४०), रत्नों (३४२), लाखों (६८०) आदि।

इसी प्रकार सूं परसर्गका प्रयोगभी आम है। अधिक उदाहरणोंकी आवश्यकता नहीं एक-दो काफी हैं—अकल हात सूं चित धऱ्या फिक्र आन (बैत ६९), कहे बाव झारों सं मैं क्या करूं (बैत ४९६) आदि।

**चतुर्थी**

चतुर्थीके लिए साधारणतया कुं, कूं, कों, को परसर्गसंचका प्रयोग होता है। उदाहरण कई मिलते हैं—तुं दे मुज शिअ़र कों (बैत ६८), युहीं शाह मुज कूं सो तूं अब नवाज़ (बैत ६७), अपस कू चुने की भटी तन कन्या (३२४) आदि। कुछ बैतोंमें सूं चतुर्थी परसर्गके रूपमें भी प्रयुक्त पाया जाता है। जैसे, कहूं खोल मख़्फ़ी मैं तुज सूं यो राज़ (६७), कहे बावु झारों सुं मैं क्या करूं (४९६)। इस वाक्यमें—तूं कर शाह-उस्ताद तिस पाच से (११२), मुमकिन है कि तिस शब्दका उच्चारण तिसू हो। इसके कारण वृत्तभंग नहीं हो पाता। तिस अथवा तिसु शब्द चतुर्थ्यन्त प्रयुक्त हुआ है। विकृतरूप के लिए भी तिस्स (६९०) और तिस (७०१) शब्दोंका प्रयोग हुआ है और एक स्थानपर जहों अथवा जहूं चतुर्थ्यन्त है—

**जिहों देक जावें सो छिप नौ रतन** (बैत १२७)

और यह बिलकुल ठीकभी है। यहाँपर स का ह बन गया है, जो भारतीय भाषाओंकी नित्यप्रवृत्ति है।

**पंचमी**

पंचमी विभक्तिके लिए इब्राहीम नामेमें थे, थें, ओं, सूं आदि परसर्गोंका प्रयोग हुआ है। पंचमीकी तीन अवस्थाएँ पाई जाती हैं। (१) जब दो चीजोंमें तुलना की जाकर एकको दूसरीसे श्रेष्ठ बतलाया जाता है, तो हिन्दीमें केवल से परसर्गका उपयोग होता है। इसके लिए खड़ीबोलीमें थे परसर्ग प्रयुक्त होता है, जैसे रतन थे अधिक जान अत बच्न मोल (१२८) कि मुज रूप थे हो अधिक शह दक्खिन (१८२), एकस एक थें खूब विद्यावंत निगार (३७९) आदि। दूसरी सूरत यह कि जब एक स्थानसे गति आरम्भ होती है तो उसके लिए थे परसर्ग प्रयुक्त होता है। इसके उदाहरण इस काव्यमें बहुतायतसे मिलते है, जैसे तुहीं तुज थें हो जगत सब भन्या (बैत ६), सो उस थे हुवा रूप नौ रस अवतार (७५), हो शह दान की रास थे दानी जन (२०१) आदि। अन्य उपयोगोंके लिए देखिए बैत क्रमांक २४७, ३७५, ३८७, ३८८, ४९९, ७, ६६, ८०, १२२, १९ आदि। पंचमीके प्रयोगकी तीसरी स्थिति किसी स्थलको पहुँचनेकी है, जिसके लिए आजकल तक शब्द प्रयुक्त होता है। इस काव्यमें तक परसर्ग नहीं पाया जाता। अलबता तलक परसर्ग एक बार प्रयुक्त हुआ है और वहभी ओं परसर्गके साथ। वह है—कि जो तलकों दुनियां रह कर मंडान (बत ९७), लग (तक) भी प्रयुक्त है (४५)।

इसके अलावा थे, थें परसर्ग से के अर्थमें प्रयुक्त हुआ है, जैसे—वलेकिन बुझनहार थे मोल है (१११), लकाका थे कहकश धुवां रात जाल (३२५)। अन्य प्रयोग देखिए बैत १९६, ३४६, ३७३ आदि।

**सम्बन्धवाचक**

डॉ. सक्सेनाने कहा था कि साहित्यिक खडीबोलीमें सम्बन्धवाचक परसर्गके रूप केवल का, की, के हैं, पर दक्खिनीमें रूपबाहुल्य है। विशेषकर केरा, केरी, केरे रूपभी मिलते हैं, और स्त्रीलिंगके बहुवचनमें क्याँ रूप पाया जाता है। इस काव्यमें का, की, के तो मिलते हैं। स्त्रीलिंग बहुवचनमें की परसर्गका बहुवचन क्याँ भी पाया जाता है। परन्तु इस काव्यमें केरा-री-रे रूप नहीं पाए जाते। मज़ेकी बात कि यह रूप कुतबशतकमें भी नहीं है। गोया बात सिद्ध होती है कि यह रूप हिन्दी बोलीकी निजी उपज नहीं है। जैसे जैसे हिन्दी बोलीका कार्यक्षेत्र विशालतर बनता गया हिन्दीने अपना बढ़ता हुआ प्रपंच चलानेके लिए नए नए सिक्कोंका उपयोग करना ज़रूरी समझा। यह अवधी परसर्ग है। अवधी पहलेसे प्रौढ और मंझी हुई भाषा थी, विपुल साहित्यकी स्वामिनी थी। उस बृहत्साहित्यसे हिन्दी बोलीने केरा परसर्ग उठाया है। यह भी बात विशेष है कि नामदेवकी पदावलीमें भी केरा परसर्गके कुछ उपयोग मिल जाते हैं (५.२, ७५.५, १६४.३, अणेरी १४२.४ आदि)। यह और बात है कि नामदेवने चा, ची, चे परसर्गका उपयोगभी बरता है, और मराठी सर्वनाम मंझा, मुझा, तुझा, मंज्या रूपोंका भी उपयोग आ गया है। उक्तिव्यक्तिप्रकरण (कोशलीका प्रयोगप्रकाश) में भी केरा परसर्गसंच बहुतायतसे प्रयुक्त है जो सहज है।

इब्राहीमनामेमें विशेष बात यह देखी जाती है कि उसमें कुछ अंशमें न परसर्ग षष्ठीके लिए निश्चित रूपसे प्रयुक्त पाया जाता है। इसका उदाहरण 'महक बास बावन हर एक तर्फ भर' (बैत ५८८) लक्ष्य है। यहाँपर बाव शब्दकी षष्ठी न परसर्ग जो लग कर

बनी है। उसी प्रकार—किया पैन अभरन उनन आंग जर (५७४) में उनन शब्दका अन्त्याक्षर न यही परसर्ग है। इसके कई उदाहरण काव्यमें पाए जाते है। तुम्हन पास (८६), उनन तें (४६८), उनन चाल (४६७), उनन पावुं (६४३), उन विचार (५०५), उन्हन थे (४२८), तुम्हन दर्द (५०९), हमन ठावुं (५५१), हमन बन (५१९) आदि। यहाँपर कुछ तो विकृत रूपमें प्रयुक्त हैं, परन्तु उनन चाल, उनन पावुं, तुम्हन दर्द, हमन ठावुं, हमन बन आदि निश्चित षष्ठीके रूप हैं।

न परसर्गका यह प्रयोग उक्तिव्यक्तिप्रकरणमें बहुतायतसे प्राप्त है, इसकी चर्चा डॉ. चाटुर्ज्याने पृष्ठ ३५—३६ पर प्रस्तुत की है। यह परसर्ग नामदेव पदावलीमें भी प्रयुक्त है (१.२, १७.१, ६४.२, ६८.२, १०१.२, ८६.२, मंजन (मेरा) १०८.०१)। इस लिए इब्राहीम नाममें न परसर्गका प्रयोग प्राचीन परम्पराके सुवर्णकणोंके समान है। यह केवल परम्परापूतही है। प्राचीन आर्यभारतीय भाषाओंमें प्रयुक्त षष्ठीके बहुवचन नाम् परसर्गका यह शेष रूप है। मध्य आर्यभारतीय भाषाओंमें वह रूप णं परसर्गकी अवस्थामें प्राप्त था। नव्य भाषाओंमें वह केवल न रह गया है। उसीका रूप कुतुबशतकमें नु परसर्गके रूपमें मिलता है। परन्तु इसका निर्देश नहीं किया गया है। उदाहरण हैं—पाछइ का कीजइ तबीबीयां नु (५९.५), अंखि नु वट्टडी (३१.२), लाजनुं सोचणा (७३.५) और लाजनु संकुचि आया (१०८.५)।

इस काव्यमें षष्ठीके परसर्गके नाते ओं प्रत्ययका उपयोगभी हुआ है, जैसे—बैठे जौहरी ढिग ले रत्नों दुकान (बैत २६०)। अन्य उदाहरण हैं—दमाम्यों सबद-नाद बमंड भर (४०८), पकड हात डाल्ह्यों देखें भंवर नाड (५०८), चले भार घोड्यों (५३५), कोई बाल्यों दर्म्यान (६१०), पडे आए दर्या में सीप्यों मंझार (६८९) आदि। कुतुबशतकमें भी हिं परसर्गके रूपमें उसका प्रयोग आया है (देखिए पृष्ठ ३९)। उक्तिव्यक्तिप्रकरणमें भी उसका प्रयोग प्रचुरतासे मिलता है (देखिए पृष्ठ ३७, ३६)।

**अधिकरण**

सप्तमीके लिए इस काव्यमें, में, पर, उपर परसर्गोंके अलावा मझार, मंझार, मजार (१३३, ३१७, ३३१, ४३५, ४८०, ५९४ आदि) कई बार प्रयुक्त हुए हैं। बिच (३५६, ५८७, ६२८ (बीच), ५९५, ६००) परसर्ग उपयोगमें आया है। एक बार मान्ह भी प्रयुक्त हुआ है (२३८)। आश्चर्य है कि नीचे एक बार भी प्रयुक्त न हो कर, उसके बजाए तल परसर्ग कई बार (३८३, ५४५, ५९६, ६०० आदि) प्रयुक्त हुआ है। एक दो स्थानोंपर उसका रूप तल्हार (५९४, ५९५) भी पाया जाता है। इसके अलावा ईरानी परसर्ग म्यान (६१९, ६२१, ६३३ आदि) और दर्म्यान [ ३४१, ३९७, ४१३ (दरमियान), ४८१ (-मियान) आदि ] प्रयुक्त हुए हैं।

कुतबशतकमें म्यान वा दरमियान परसर्ग प्रयुक्त नहीं हुए हैं। उसमें केवल फ़ार्सी संज्ञाही प्रयुक्त हुई हैं। इस ग्रंथमें अरबी-ईरानी शब्दोंकी संख्या केवल सौही के लगभग है। परसर्गादिका प्रयोग उसमें नहीं हो पाया है। यह स्थिति इस सत्यकी ओर संकेत करती है कि अभी ईरानी भाषाका प्रभाव अधिक नहीं हो पाया था। यह कुतबशतकके अधिक पुराना ग्रंथ होनेका अन्तःप्रमाण है।

इब्राहीम नामेके कुछ प्रयोगोंको देखनेसे लगता है कि सप्तमीके लिए उ अथवा ओं परसर्ग प्रयुक्त हुआ है। उर्दू लिपिके दोषपूर्ण होनेसे उसका निश्चित लेखन और उच्चारण निर्धारित नहीं किया जा सकता। उदाहरणके लिए देखा जाए—अवल तीन लकऱ्यां निशानों जो घाल (बैत ४०७)। यहाँपर निशानों शब्दमें ओं परसर्ग मिला हुआ है। यहाँपर निःप्रत्यय प्रयोग नहीं है। उस शब्दका अभिप्राय है निशान, ढोलपर। गोया यह ओं प्रत्यय अधिकरण स्वरूपका है। यही स्थिति—पलूं रात खिस जा ज़मीन बुद्द बिसार (४१७), सिरों नालियर झार छतऱ्यां धरे (५३६), दिसे लाल सेंदूर कपालों जो लाल (४३२) आदि वाक्योंमें पाई जाती है। अधिकरणकी चर्चा करते हुए डॉ. चाटुर्ज्याने बतलाया है (पृष्ठ ३६) कि अधिकरणमें शब्दके अन्त्याक्षरके केवल सानुस्वार बनानेकी प्रवृत्ति दिखाई देती है। अकारान्त, इ-ईकारान्त आदि शब्दोंके सप्तमीके रूप केवल सानुनासिक बन जाते हैं। विद्वान् महोदयने इस प्रत्ययकी व्युत्पत्ति अधि, अंधि से बतलाई है (पृष्ठ १९)। शायद इस अं वा अ मूल प्रत्ययमें प्रथमा विभक्तिका प्रत्यय उ मिलकर जैसे कि आम प्रवृत्ति है, यह प्रत्यय उ-उं बना हो। उसीका प्रश्चाद्रूप हुं, हूं, ऊ, ऊं भी हो सकता है। सारांश यह कि खड़ीबोलीमें अधिकरण विभक्तिमें ऊं, ओं अथवा हूं परसर्ग प्रयुक्त होता था।

कुतकशतकमें सर्वत्र इ, इं, परसर्गका प्रयोग अधिकरणमें हुआ है। शायद यह परसर्ग इब्राहीम नामा काव्यमें भी प्रयुक्त हुआ हो। लेकिन उर्दू लिपिके अतीव दोषपूर्ण होनेसे इस इ परसर्गका पता नहीं चलता। जगतगुरु शब्द इब्राहीम आदिलशाहके नौ-रस ग्रंथ और प्रस्तुत काव्यके सिवा अन्य ग्रंथोंमें केवल जगतगुर लिखा गया है। वास्तवमें गुरु शब्दको पेशनामक चिन्हके साथ लिखा गया है। उसको गुरु-रू पढ़ना चाहिए। पश्चात्कालीन प्रतिलेखकोंने प्रमाद भी किए हैं।

**जु, जो उद्देश्यवाचक**

हिन्दीके अव्ययोंकी चर्चा आजतक काफ़ी हो चुकी है। उसकी चर्चा फिरसे करना ज़रूरी नहीं। केवल उद्देश्यवाचक जु, जो और कि अव्ययोंकी ओर पाठकोंका ध्यान आर्कषित किया जाता है। जु, जो अव्यय तमाम नव्य आर्यभारतीय भाषाओंमें प्रारम्भकालसे ही पाया जाता है। इतनाही नहीं उसका प्रयोग जं के रूपमें पाली, प्राकृत, अपभ्रंश भाषाओंमें भी सर्वत्र पाया जाता है। इस काव्यमें भी जु, जो अव्ययका प्रयोग कई बार किया है। दक्खिनी हिन्दीमें इस उद्देश्यवाचकका प्रयोग आरम्भसे ही मिलता है। परन्तु डॉ. श्रीराम शर्माने दक्खिनी हिन्दीके उद्भव और विकास ग्रंथमें इसका उल्लेख और चर्चा नहीं की है।

इब्राहीम नामा ग्रंथमें जो उद्देश्यवाचकका प्रयोग कई बार हुआ है—

**न बूझ्या कहीं उस सुतर का जो माव**
**रहे धूद बहुतेक ना सुद्द पाव । ११ ।**

यहाँपर जो उद्देश्यवाचक अव्यय है जो दो वाक्योंको जोड़ता है। पहला वाक्य है—कही उस सुतरका माव न बूझ्या। दुसरा वाक्य है—बहुतेक सुद्द ना पाव धूद रहे। जो अव्यय संस्कृत यद् अव्ययका प्राकृत रूप है। इस अव्ययका प्रयोग बैत क्रमांक ३२, ६०, ९०, ११२, १४४, २१८, ६५७ आदिमें भी हुआ है।

अशोकके प्रस्तरलेखोंकी प्राकृतमें, जो आम तौर पर पाली समझी जाती है, इस सं. यद् अव्ययका रूप यं पाया जाता है। मिलिन्दपन्हो (मिलिंदप्रश्न) प्रथम शताब्दी इसवीका पालीका ग्रंथ है। उसमें भी यद् अव्ययका रूप यं रूपही में पाया जाता है। 'अथ यं आत्थि योनकानं नानापुटभेदनं सागलं नाम नगरं' अथवा 'अथ सुरियो अत्थं गमिस्सति, यन्नूना' हं अन्तेपुरे सल्लपेय्यं' ति'। यहाँपर यह अव्यय यं रूपमें ही पाया जाता है। अशोकके लेख और मिलिंदपन्हो पर संस्कृतभाषाका बहुतही प्रभाव प्रतीत होता है। संस्कृतके कई व्याकरण रूप इस भाषामें मिलते है। गाहासत्तसई (गाथासप्तशती) ग्रंथभी प्रथम शती ईसवीका माना जाता है। पालीकी तुलनासे गाहासत्तसई अधिक प्राकृतमय है। उसमें तद्भव शब्दोंका प्रमाण अधिकतर पाया जाता है। इस ग्रंथमें सं. यद् अव्ययका रूप जं पाया जाता है जो निम्न गाथाओंमें प्रयुक्त हुआ है।

**सव्वस्सम्मि वि दद्धे तहवि हु हिअअस्स्य णिव्वुदि च्चेआ**
**जं तेण गामडाहे हत्थाहत्थि कुडो गहिओ । ३.२९**

**रसिअविअट्ठ विलासिअ समअण्णअ सच्चअं असोओसि ।**
**वरजुअइचलणकमलाहओ वि जं विअससि सएहणं । ५.५**

इसके अतिरिक्त इस ग्रंथमें जं (सं यत् अव्ययका प्रयोग ६.३४, ७.११, ७.१२) गाथाओंमें भी मिलता है।

प्राकृत भाषामें य और ज ध्वनियोंका अभेदत्व प्राचीन है। संस्कृत शब्दोंमें प्राप्त य ध्वनिका प्राकृतमें रूपांतर ज ध्वनिमें होता है। इसी प्रवृत्तिके अनुसार यद् अव्ययका रूप जं बना। इस रूपमें प्रथमा विभक्तिका प्रत्यय उ अथवा ओ जुड कर जु-जो रूप बना। आम तौर पर यह रूप निरनुस्वारही पाया जाता है।

दक्खिनी हिन्दीके सभी छोटे मोटे साहित्यिकोंमें जो उद्देशवाचकका प्रयोग दिखाई देता है। पूर्वकालिक कवियोंमें यह अधिक मात्रामें है। उत्तरकालिक काजी महमूद बहरीकी मस्नवी **मन लगनमें** (लेखन शक १६२२–हिजरी १११२) उसका प्रयोग इस प्रकार है।

**अब जिवने ते भला है मरना**
**बिहत्तर है जो बे-अजल गुजरना । ३३१ ।**

**बिहतर जो यो तन की थाट तुट जाए**
**जानो कि मिटी के माट फुट जाए । ३३२ ।**

अन्तिम बैतकी पहली पंक्तिमें जो (कि) और दूसरीमें कि उद्देश्यवाचक बहरीने प्रयुक्त किये हैं।

यह उद्देश्यवाचक मराठी भाषामें शक १५०० तक प्रयुक्त होता रहा। उसके बाद उसका उपयोग परित्यक्त हो गया। गुजराती भाषामें भी उसका प्रयोग लगभग उसी समयमें त्यक्त हो गया। परन्तु आजकलकी उर्दू भाषामें यह जो उद्देश्यवाचक आजभी कहीं कहीं प्रयुक्त होता जा रहा है। इक़बाल उर्दू साहित्यका महान् कवि है, जो युवावस्थामें राष्ट्रवादी था,

लेकिन युरपयात्रा करनेपर वह अखिल इस्लामनिष्ठ बना और अन्तमें उसने पाकिस्तान निर्मितिका समर्थन किया था। उसकी गजलों और कविताओंमें इस जो उद्देश्यवाचकका प्रयोग बहुतायतसे मिलता है।

**(१) लुत्फ़े कलाम क्या, जो न हो दिल में दर्दे–इश्क़।**

**(२) जीना वह क्या जो हो नफ़्से ग़ैर पर मदार।**

**(३) वाइज सबूत लाए जो मय के जवाज़ में**
**इक़बाल को यह ज़िद्‌ है कि पीना भी छोड दे॥**

**(४) सुख़न में सोज इलाही कहां से आता है**
**यह चीज वह है जो पत्थर को भी गुदाज़ करे॥**

**(५) अिक़ाबी शान से झपटे थे जो बे-बालो-पर निकले।**

**(६) हुए मदफूने–दरिया ज़ेरे–दरिया तैरनेवाले**
**तमांचे मौज के खाते थे जो बन कर गुहर निकले॥**

**(७) ग़ुबारे-रह गुज़र हैं कीमिया पर नाज़ था जिन को**
**जबीनें खाक पर रखते थे जो इक्सीरगर निकले॥**

यहाँपर यह बात विशेष लक्ष्य है कि आजकी गुजराती भाषामें जे उद्देश्यवाचकका लोप हो गया है। परन्तु संजान, सूरत, मुंबई आदिमें फैली हुई पारसी जातिमें, जिसकी मातृभाषा गुजरातीही है, आजभी इसका प्रयोग अव्याहत रूपमें होता है। इन्हींके संपर्कसे सूरती लोगोंमें भी इसका उपयोग पाया जाता है (देखिए डॉ. छो. र. नायकक्रृत गुजरातीपर फारसी भाषानी असर, द्वितीय संस्करण शक १८८७, पृष्ठ ३८९)। यही अवस्था उर्दू भाषाकी पाई जाती है। गुजराती लोगोंने, अपने सांस्कृतिक व भाषिक प्रभावके कारण पुराने जे उद्देश्यवाचकका त्याग किया, परन्तु इस प्रभावसे मुक्त वा वंचित पारसी गुटोंमें वह अभीतक जिन्दा है। उसी प्रकार जो हिन्दीभाषियोंमें परित्यक्त होनेके बावजूद, उर्दूभाषियोंमें––वह प्रमुख सांस्कृतिक और भाषिक परम्परासे वंचित रह जानेके कारण, यह जो अव्यय अभीतक प्रचलित रहता आया है।

**कुछ साधित शब्द**

इस काव्यमें लिखनहार (बैत ३५), बुझनहार (बैत १११) और देनहार (बैत ६५२) कृत्प्रत्यययुक्त प्रयुक्त हुए है। कुतबशतकमें भी अप्पणहार (अर्पण करनेवाला ९४) और भज्जणहार (१०४) शब्द प्रयुक्त हैं। परन्तु स्व. डॉ. गुप्तजीने उनकी व्युत्पत्तिकी चर्चा प्रस्तुत नहीं की है। डॉ. श्रीराम शर्माने इस संबंधमें कहा है––" हार (त) हार्नलीने इसका सम्बन्ध संस्कृतके 'अनीय' से बताया है। डाक्टर धीरेन्द्र वर्मा इस व्युत्पत्तिको संतोषजनक नहीं मानते। कुछ शब्दोंमें इस प्रत्ययके अर्थको ध्यानमें रखते हुए इस प्रत्ययकी व्युत्पत्ति हार<धार मानी जा सकती है" (पृष्ठ १५९)।

दामोदर पंडितविरचित उक्तिव्यक्तिप्रकरण अथवा प्रयोगप्रकाश-कोशली (अवधी) का व्याकरणग्रंथ डॉ. सुनीतिकुमार चाटूर्ज्या और आचार्य जिनविजय मुनि इन दोनों पंडितोंने

संपादित किया है। शब्दसिद्धिका विचार करते हुए उपरोक्त कृत्प्रत्ययके सम्बन्धमें डॉ. चाटुर्ज्याने कहा है—

"(*iii*) *aṇihāra* < MIA.-*aṇia* = OIA.-*anikā*, diminutive, + -*hāra* from OIA.-*dhāra* 'holder'; in the sense of 'doer' (the vowel-*i* in the element -*aṇi*-may have been due to the influence of a form like *paṭhanīya* = *paḍhaṇijja* or *paḍhaṇia*): e.g. *paḍhaṇihāra* (12/11, 20/20), *jaṇihāra* (*yāna*-12/11), *jewāṇihāra* (12/12) 'eater', *Soaṇihāra* (35/24)."

यहाँपर श्री. चाटुर्ज्याने करणिहार शब्द मध्यकालीन अर्थात् प्राकृत रूप करणिअ < सं. करणिका और धार, धारण करनेवाला शब्दोंसे व्युत्पन्न माना है। लेकिन यह व्युत्पत्ति, जैसा कि डॉ. वर्माने कहा है, संतोषजनक प्रतीत नहीं होती। दामोदर पंडितने करणिहार आदि रूपोंके संस्कृत पर्याय दिये है। उसके दिये हुये पर्याय भाषिक दृष्टिसे इन शब्दोंके स्त्रोतभूत नहीं माने जा सकते। इसके बावजूद भी इन शब्दोंकी व्युत्पत्ति निश्चित करनेमें पथप्रदर्शक बन सकते हैं। करणिहार शब्दको उसने करिष्यन् और करिष्यमाण माना है। पढणिहार शब्दको पठिष्यमाण शब्दका उत्तराधिकारी माना है। प्रतीत होता है कि हार शब्द माण शब्दका उत्तराधिकारी है। माण शब्दका प्राकृत रूप आण होना नित्यप्राप्त घटना है। इस आण का प्रयोगवशात् हाण होना मामूली परिवर्तन है। संस्कृत शब्दान्तर्गत न अथवा ण वर्णका र वर्णमें परिवर्तित होना भी प्राकृतमें नित्यकी घटना है। इसी इब्राहीम नामा काव्यमें सं. जन्म शब्दका जरम रूप तीनचार बार प्रयुक्त हुआ है। हसिरी (हासिनी) लज्जिरा (लज्जिनी-लज्जालु) इसी प्रकार बनते हैं।

इस दृष्टीसे माण प्रत्ययका अपभ्रष्ट रूप हार होना संभवनीय है। डॉ. चाटुर्ज्याने उपरोक्त उद्धरणके पूर्वमें कहा है कि (पृष्ठ २३) करण, पढण, जेंवण, जूझण, खेलण अथवा खेलणि, बाढणि आदि क्रियावाचक संज्ञा क्रियाओंसे बनती हैं,। तो सुझाव यह है कि इन क्रियावाचक संज्ञाओंको माण प्रत्ययका अपभ्रष्ट रूप हार जुड कर यह शब्द करणिहार, पढणिहार, जेंवणिहार खेलणिहार आदि शब्द सिद्ध हुए हैं।

इस भाषिक प्रक्रियाका महत्त्व इस लिए भी है कि मराठी भाषामें -णारा प्रत्यययुक्त कर्तृवाचक शब्द बनानेका नियम रूढ है। इसी नियमसे खाणारा (खानेवाला), जाणारा (जानेवाला) आदि शब्द बनते हैं। परन्तु ऐसे शब्द कर्पूरमंजरीमें नहीं पाए जाते। लगता है कि यह रूप हिन्दीसे मराठीमें रूढ हो गए हैं।

**तपिन्द**

इस काव्यमें तपिन्द (बैत ४६५) यह एकही शब्द प्रयुक्त है जो विशिष्ट साधन प्रक्रियासे बना है। उसका अर्थ तपनेवाला। उसमें कर्तृवाचक भाव है। कुतबशतकमें ऐसे कई शब्द मिलते है। जसे गिलंदा (८७), दिहंदा (८५), गहंदा (८६), फलंदा (८६), छिणंदा (८६), कहंदी (८२, ८४), सुहंदा (८), हसंदा (३४), लोअंदा (९३, ९५), देखंदा (९३), करंदा (१८, ३३, ३४, ९५, १०८), पडंदा (९६), मिलंदा (९८), परंदा (९९), सरंदा (१०३), लियंदा (१०४), हुअंदा (१०५, ११४) आदि। राजशेखरकी कर्पूरमंजरीमें ऐसे शब्दोंकी बहुतात है, जैसे पेच्छन्ती (२.३०), लहंती (२.३१), जंती (सं. या, यान्ति २.३१), एंती (सं. आगच्छंती २.३१), णमंती (२.३१), लंघअंती (२.३१) आदि।

संस्कृतके कर्तृवाचक क्रियाशब्दोंके रूप गच्छत्, नमत् आदिके बहुवचनके रूप गच्छन्तः, नमन्तः आदि रूपोंसे यह व्युत्पन्न हैं। हिन्दीके प्राचीन रूपोंमें यह शब्द अधिक रूढ हैं।

**सामंजस्य**

हिन्दीके आद्य साहित्यकी यह विशेषता है कि विशेष्यके बहुवचनके साथ उसके विशेषणका भी बहुवचन किया जाता है। डॉ. बाबूराम सक्सेनाने साहित्यिक खड़ीबोली और दक्खिनी हिन्दीके भेदोंको अपने ग्रंथ दक्खिनी हिन्दीमें (पृष्ठ ४७–४८) स्पष्ट किया है। उन्होंने केवल अविकारी और विकारी रूपोंकी चर्चा की है। संस्कृतमें विशेष्यकी विभक्ति विशेषणको भी मिलती है। इसी नियमका पालन खड़ीबोली और दक्खिनी हिन्दीमें भी होता है। आद्य मराठीमें भी यही नियम आरम्भमें स्वीकार्य रहा है। पंजाबी भाषामें भी यही प्रथा रूढ थी।

दक्खिनी हिन्दीकी इस विषयमें यह विशेषता दिखाई देती है कि उसमें विशेष्य विशेषणकी एकही विभक्ति रहनेके अतिरिक्त षष्ठीप्रत्यय का-की भी बदल जाता है। उसके साथ क्रिया रूप तो बदल जाताही है। इसीको हमने सामंजस्य कहा है। यह आद्य हिन्दीकी विशेषता मानी जा सकती है। डॉ. सक्सेनाजीने इसका उल्लेख नहीं किया, तो भी इसके उदाहरण प्रस्तुत किये हैं।

इब्राहीम नामा काव्यमें भी इस सामंजस्यके कई उदाहरण मिलते हैं। सबही कवियोंमें यह प्रथा विशेष कर स्त्रीलिंग विशेष्यके बहुवचनमें पाई जाती है। नीचेके बैत देखे जाएँ।

**खडे हैं अगत कर परदार बार**
**बेतां हात रत्नों कुंदन क्यां सवार। ३००।**

**पडे बहुत बाजार हर एक धिर**
**झबूत्यां मोत्यों क्या लडां रह जूं भर। २४२।**

**कि या है कि वो सोने की हर एक तलावो**
**कंवल क्यां कल्यां हो बत्यां मोम भावो। ३५५।**

**रहे जीब हर एक दांतों में धर**
**नव्यां कोपल्यां हो सो पडत्यां नजर। ५०१।**

यही सामंजस्य बैत क्रमांक २७३, ३०६, ३५७, ३९१, ५७५, ५९८, ६०८-९, ६८६ आदिमें मिलता है।

मुल्ला वजही हैदराबादीकी कृति कुतुब-मुश्तरी (लेखनकाल शक १५३१–हिजरी १०१८) में यह प्रथा प्रचुरतया मिलती है—

**जित्यां खूब खुश-शक्ल थ्यां सुंदऱ्यां**
**सो कर्नाट हौर गौड, गुजरात क्यां। ५९३।**

इस प्रश्नकी चर्चा हमने एक लेख ख़्वाजा बन्देनवाज़की गद्य कृति मिराजुल आशिक़ैनके भाषिक पहलूके विचारमें (नवाए-अदब, उर्दू, मुंबई, जुलै १९६६) की है। मराठी भाषामें

यह प्रथा बन्देनवाज़से ढाई सौ सालपूर्व चालू थी। शक १२२५ के लगभगके ज्ञानेश्वर, भास्करभट्ट बोरीकर, माहींभट आदियोंके साहित्यमें यह पाई जाती है। माहींभटकृत गद्य श्रीकृष्णचरित्रमें नीचेके वाक्य मिलते हैं–

१. **मग साष्टांगें दंडवतें घातैलीं ।** पृष्ठ ३८.३१
२. **एं फूलें कृष्णा तुजलागि आणिलीं ।** ४४.२८
३. **एं पीतांबरें वस्त्रें श्रीकृष्णाचिंचि होतीं ।** ४९.३४
४. **तेथ एके दांपत्यें ब्राह्मणें होसीं ।** ५५.१३

यह सामंजस्य परम्परा मराठीसे बहुत पहले लुप्त हो चुकी थी। परन्तु वह दक्खिनी हिन्दीमें शक १६५० तक चलती रही दिखाई देती है। इसका कारण यही दिखाई देता है कि दक्खिनीके साहित्यिक इस भाषाके सांस्कृतिक और भाषिक मातृस्रोतसे बिल्कुलही वंचित हो चुके थे।

**भविष्यत्काल**

बड़े अचंभेकी बात है कि इस काव्यमें भविष्य कालके लिए साधरणतया प्रयुक्त प्रत्यय गा, गी, गे का निरपवाद रीतिसे अभाव है। केवल एकही स्थानपर भविष्यकालिक क्रियाका एक सि- रूप मिल जाता है। वह है––

**दमाम्यों धमक सुन न रहसी संभाल**
**भिजा सीस पानी हो तरखी कपाल । ४२४ ।**

डॉ. श्रीराम शर्माजीने अपने मौलिक ग्रंथ दक्खिनी हिन्दीके उद्भव और विकासमें (पृष्ठ २४१-३) भविष्यकालिक प्रत्यय गा और सी की चर्चा की है। यहाँपर रहसी शब्दका रूप भविष्यकालिक है। अर्थ होगा रहेगा। कुतबशतकमें केवल गा रूप प्रयुक्त हुए है जिसकी चर्चा डॉ. गुप्तने की है (पृष्ठ ५८–५९)। उस ग्रंथमें -सी- रूपोंका अभाव है।

डॉ. गुप्तजीने भविष्यत्कालिक और एक रूपका उल्लेख किया है। वह कहते है––"कहीं कहींपर एक० में -इहइ प्रत्यय भी जुड़ा है। किन्तु केवल पद्यमें : सोई लज्जा रष्षिहइ जादे साहि नसीब (६६)" डॉ. धीरेंन्द्र वर्माने अपने हिन्दी भाषाके इतिहास (प्रयाग १९६२) में कहा है। (पृष्ठ ३०१)––"खडीबोलीमें तो नहीं किन्तु ब्रज, कन्नोजीमें जो ह लगाकर भविष्य निश्चयार्थ बनता है वह भी इसी श्रेणीमें आता है। ग्रियरसनके अनुसार दिए हुए नीचेके कोष्टकसे यह सम्बन्ध बिल्कुल स्पष्ट हो जावेगा––" यह कह कर वर्माजीने सं. चलिष्यामि रूपके अपभ्रंश रूप चलिहिउं और ब्रज रूप चलिहौं रूप बतलाए हैं। चलिष्यसि के उपरोक्त रूप चलिहिहि अथवा चलिहिइ और चलिहै बतलाए हैं। अन्तमें चलिष्यति के रूप चलिहिइ और चलिहै दिए हैं। कोशली (अवधी) भाषामें भी यह रूप मिलते हैं। डॉ. चाटुर्ज्याने उक्तिव्यक्तिप्रकरणके पृष्ठ ५८ पर इसका वर्णन किया है। इस ग्रंथमें करिहति (करिष्यति ९.२०), जेंविहइ (९.२१), पैहइ (९.२२), यजिहइ (९.२२), तजिहइ (९.२३), आछीहसि (२१.१५), तारिहइ (२१.२०), वढाविहंति (२१.२१), मागिहंउ (२२.५), धरिहंति (२२.३) आदि रूप प्राप्त हैं।

इस वस्तुस्थितिकी रोशनीमें इब्राहीम नामेमें हमको भविष्यत्कालके रूपोंकी तलाश करनी है। इस काव्यका अभी उपरोक्त बैत (४२४) देखा जाए तो पहले पादमें तो स्पष्टतया

भविष्यकाल है। किन्तु दूसरे पादमें तरखी क्रिया-रूप प्रयुक्त है। अगर उसको वर्तमानकालिक रूप माना जाए, जैसा कि दिखाई देता है कालविपर्यासका दोष सामने खड़ा रहता है। अगर काव्यकी संहिता और संदर्भ देखा जाए तो यह प्रसंग है—बादशाहके लश्करके दमामोंकी धमक—गंभीर ध्वनि। इस धमाकेका प्रभाव, धरातलके आधार महाभुजंग वासुकिपर, वर्णन किया जा रहा है। इस धमाकेसे, कविने बतलाया है कि वासुकि संभाल नहीं रहेगा—'तरखी कपाल' का अर्थ क्या लेना चाहिए? पहले प्रयुक्त भविष्यकालको देखते हुए यह सुयोग्य लगता है कि 'तरखी' भी भविष्यकालिक रूप हो।

चलिष्यति रूपके प्राकृत और अपभ्रंश रूप चलिस्सइ (चलिहिइ, चलिहिहि) आदि होते हैं। इसी रूपके अवशेष दक्खिनी हिन्दीमें सर्वत्र और सर्वकालमें रूढ दिखाई देते हैं जिसकी चर्चा डॉ. शर्माने की है। इस काव्यका उपरोक्त 'रहसी' रूपभी उसीका शेषरूप है। दक्खिनीकी परम्परामें चलिसी, चलसी रूप प्राप्त होंगे। चलिस्सइ, चलिहइ, चालिहि, चालिहिइ यह सब उसीके रूपान्तर है। चलिहिइ रूपमें प्राप्त हि ध्वनिका, प्राकृतकी प्रकृतिके अनुसार, घिस कर अगर इ बन जाए तो यह रूप बनेगा चलिइइ। अगर इसी शब्दको अरबी-ईरानी लिपिमें लिखा जाए तो चली रूप प्राप्त होगा। उसीको प्रसंगवशात् चले पढना होगा। अगर इस चर्चाके प्रकाशमें 'तरखे' शब्दकी ओर देखा जाए तो उसका अपभ्रंश रूप 'तरखिहइ, तरखिइइ, तरखी, तरखे प्राप्त होता है। हमारा विश्वास और निश्चय है कि यही प्रक्रिया तरखे रूपमें निहित है। इसका इशारा कुतबशतकके उपर्युक्त उल्लेखसे भी मिलता है। ऐसे व्याकरणरूपादिके लिए अरबी लिपि अतीव दोषपूर्ण और निरुपयोगी है। तरखिइ, तरखिहिइ, तरखे शब्द अरबी लिपिमें लिखे जाएँ तो ترکھی ، ترکھہی ، ترکھے इस प्रकार लिखे जाइंगे। यहाँपर ह और य, इ के जोड बिल्कुलही समान होते हैं। इसमें यहभी बहुत बड़ी संभावना है कि पश्चात्कालीन लिपिकारोंने ह के जोडको बिल्कुल भुला दिया और बादके लिपिकारोंने तजही दिया। इस तरह अन्तमें तरखी, तरखे रूप शेष रह गया जो भविष्यत्कालीन रूप है।

डॉ. धीरेन्द्र वर्माजीने अपने ग्रंथ ब्रजभाषामें भविष्यत् कालकी चर्चा करते हुए कहा है (देखिए अनुच्छेद २१४) कि "दूसरा मुख्य संयोगात्मक रूप **ह** भविष्य है, जो साधारण रूपसे पूर्वी ब्रज क्षेत्रमें पाया जाता है। इस क्षेत्रमें **ग** भविष्यके रूपभी कहीं कहीं पाए जाते हैं। प्राचीन तथा आधुनिक दोनों ब्रजोंमें भविष्य निश्चयार्थ के **ह** लगा कर बनाए हुए रूपोंमें निम्नलिखित प्रत्यय लगते हैं। उन्होंने चल क्रियाके रूप दिए हैं।" चलिहौं, चलिहैं; चलिहै, चलिहौ; चलिहै, चलिहैं—"। आपने यह भी बतलाया है कि "**ह** के लोपकी प्रवृत्ति सम्पूर्ण ब्रज क्षेत्रमें पायी जाती है। अंतिम अंश –ए तथा –औ क्रमशः –अइ तथा –अउ में बदल जाते हैं।"

ब्रजभाषाके समानही कोशली (अवधी) में भी भविष्यत्कालके **ह** रूपमें **ह** ध्वनिके लोपकी अवस्था पाई जाती है। तुलसीदासके रामचरितमानसमें इसका प्रयोग मिलता है। निम्न चौपाई उसीकी ओर संकेत करती है—

**रघुकुलरीति सदा चलि आई। प्राण जाइ बरु बचनु न जाई**

प्राण जाएगा, यह श्रेयस्कर है, लेकिन वचन नहीं जाएगा।

इस चर्चाका निष्कर्ष यह कि दक्खिनी हिन्दीमें भी -इहइ-प्रत्ययमें प्राप्त ह ध्वनिका अ बन कर, आगे और पीछेकी इ ध्वनिमें समाविष्ट हो गया। और अन्तमें केवल ई प्रत्यय भविष्यत्कालके लिए शेष रह गया। गोया दक्खिनी हिन्दीमें प्राप्त और चर्चित -सी- रूपका ई घिसा हुआ रूप है। यह भविष्यत्कालीन ई प्रत्यय इस काव्यमें कई बैतोंमें प्रयुक्त हुआ है। देखिए—

**नवी बात मज़मून कर एक किताब**
**न कौ फिक्र गूंद्या है तिस का जवाब। ९४**

**न बाक़ी रही (रहिई) कुच तो आ़लम निशान**
**अगर कुच रही (रहिई) तो बचन शिअ़र जान। ९५**

कवि ख़ुदको कहता है कि तू नए विषयका एक ग्रंथ लिख। उसका उदाहरण किसीके चिंतनसे भी प्राप्त न हो। क्यों कि इस संसारमें कोई चिन्ह शेष नहीं रहेगा (रहे, रहिई) अगर कुछ रहेगा (रहे, रहिई रहिहिई) तो काव्य, वाणी ही है। यह जान ले।

निम्नलिखित दो बैतोंमें अधोरेखित क्रियाएँ भविष्यत्कालीन रूप हैं। संदर्भसे यही स्पष्ट हो जाता है।

**शिअ़र शाहो का तो सो है यादगार**
**रखी (रखिई) नावुं आ़लम में ज्यू ता करार। ९६**

**कि जौ तलकों दुनयां रहि कर मंडान**
**फिरी (फिरिई) शिअ़र तलकों हो आ़लम निशान। ९७**

बादशहाका काव्य (किताबे-नौ-रस) तो यादगार हैही। वह दुनियामें हमेशाके लिए नाम कायम रखेगा। जबतक इस पृथ्वीतलकी व्यवस्था रहेगी कि यह काव्य जगद्विख्यात हो कर फिरेगा।

अपने इस काव्यकी मौलिकताके सम्बन्धमें कवि कहता है—

**लिजा कर दिखा आ़रिफ़ों की नज़र**
**तो सब होइ मअ़लूम अ़ैब़-हुनर। १०९**

**अगर लक अमोलिक रतन जोत होई (होइई)**
**न बिन जौहरी तिस पछानी (पछानिई) तो कोई। ११०**

(अपना काव्य) विद्वानोंकी दृष्टिको ले जा कर दिखा। तो सब दोष और गुण ज्ञात होइंगे अगर लाख कीमतका अमोलिक ज्योतिर्मयी रत्नभी होवेगा (होइई) तो भी जोहरीके बिना उसको कोई नहीं पछानेगा। अपनी वाणीकी श्रेष्ठता वर्णन करते हुए अ़ब्दुलने भविष्यत्कालीन प्रथम पुरुष एकवचनका प्रयोग नीचेके बैतमें किया है—

**धरूं आन कर में सो वो नग बचन**
**जिहों देक जावीं सो छिप नौ रतन। १२७**

मैं वाणीके ऐसे अलंकार (नग) ला कर धरूंगा (धरिसूं, धरिहूं, धरिऊं, धरूं) जिनको देख कर प्रसिद्ध नवरत्न छिप जावेंगे (जावसीं, जावहीं, जावइं, जावें)। आगेके बैतमें भी यही रूप प्राप्त हैं।

**सो उस जिन्स ल्या कर मैं एक थान धरूं**
**अमोलिक बचन नग पदक बुद जरूं। १३२**

यहाँपर धरूंगा और जरुंगा, जड़ूंगा, जड दूंगा यह भविष्यत्कालके रूप प्रयुक्त हैं। इन दो बैतोंमें प्रयुक्त रूपोंके लिए दक्खिनी हिन्दीके सामान्यतया रूढ रूप धरिसूं, धरसूं और जरसूं प्रयुक्त होते।

**दक्खिनीमें अन्यत्र**

दक्खिनी हिन्दीके अन्य पुराने साहित्यमें भी भविष्यत्कालके इस ह रूपकी खोज होनी चाहिए। हिन्दीभाषी पंडितोंका राष्ट्रभाषाकी इस प्राचीन साहित्यसंपदाकी ओर बहुतही कम ध्यान है। उर्दूभाषी पंडितोंने दकनी उर्दूके नामसे उसका अध्ययन करनेकी काफ़ी चेष्टा की है। लेकिन उनका अध्ययन और खोज बिल्कुल सतही होती हैं। वह इस साहित्यकी सांस्कृतिक अथवा भाषिक मोतियोंको नहीं पा सकते हैं। उनकी पूंजी केवल ईरानी भाषाके ज्ञानपर आधारित है। वे संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश अथवा आधुनिक वा पुरानी सहोदर और पडोसी भाषाएँ मराठी, गुजराती, ब्रज, अवधी आदिके ज्ञानसे हमेशासे वंचित रहते आए हैं। और आजभी उनकी वही अवस्था है। एक शतीके पहले हिन्दी-उर्दूके एक पण्डित और ए ग्रामर ऑफ् हिन्दुस्तानी अथवा उर्दू लँग्वेज (A Grammar of Hindustani Or Urdu Language) के लेखक जॉन टी. प्लॅट्स्ने (John T. Platts) अपने इस व्याकरणके प्रथम संस्करणकी भूमिकामें, शक १७९५ में (इ. १८७३) लिखा था--

For it is notorious that Urdu scholars (and especially Mohammadans) are grossly ignorant of the origin of such words and inflexions in their language as are not derived from the Persian and Arabic. And the general restriction of their studies to these languages alone puts it out of their power to acquire a knowledge of the linguistic discoveries of modern philologists in fields lying apart from them.

उर्दू पण्डितोंके सम्बन्धमें सौ साल पहले दी गई इस रायपर पुनर्विचार करनेकी आजभी बिल्कुल जरूरत नहीं है। आजभी यही राय वस्तुस्थितिनिदर्शक और सत्य है। उर्दूके अनेकानेक पण्डितोंने दकनी उर्दूके अनेक ग्रंथोंका संपादन प्रस्तुत किया है। लेकिन उनके संपादनोंमें दकनी उर्दू अथवा हिन्दीके सांस्कृतिक अथवा भाषावैज्ञानिक संपत्तिका दर्शन नहीं होता।

क़दीम उर्दू नामक काव्यसम्पादनोंका एक संग्रह (प्रथम खण्ड, इ. १९६५) हैदराबादसे डॉ. मसऊद हुसेन ख़ानके प्रमुख सम्पादकत्वमें प्रकाशित हुआ है। इस ग्रंथमें अन्य काव्योंके साथ अफ़ज़लकृत (मृत्यु हिजरी १०३५–शक १५४८) बारह मासा अथवा बिकट कहानी नामक काव्यका सम्पादन स्वयं डॉ. मसऊद हुसेन ख़ान और उनके एक साथी डॉ. नूरूलहसन हाशमी, इन विद्वद्द्वयोंके हाथों प्रकाशित हुआ है। प्रथमोक्त उस्मानिया विद्यापीठके, जो उर्दूके अध्ययनका श्रेष्ठतम केंद्र माना जाता है, उर्दू विभागके प्रमुख हैं और उनके साथी लखनौ

विद्यापीठके। इस ३२३ बैतोंके काव्यके लिए ४३ पृष्ठोंकी भूमिका लिखी गई है। और उसमें से ७ पृष्ठ भाषिक चर्चाके लिए खर्च हुए है। इस बिकट कहानी काव्यमें सद्यश्चर्च्य भविष्यत्कालिक ह रूपका अथवा ई रूपका प्रयोग कई बार हुआ है। लेकिन दोनों विद्वान सम्पादकोंने अपनी भूमिकामें अथवा अन्यत्र इस भविष्यत्कालिक रूपकी ओर कोई अंगुलिनिर्देशन नहीं किया है। अब निम्न बैतोंको देख जाए——

कुई ऐसा नही उस जा कहे [ कहिई ] री
कि मेरा हाल आ देखे रहे [ रहिई ] री। ८१

कहो कैसे जिवें [ जिविईं ] पिव बाज नारी
जिन्हे रोवत गई है उम्र सारी। ८४

कहो, ऐ संग-दिल तब मू दिखावूं
तिरे मुखसें अगर यक कौल पावूं। ९६

सखी आसूज रुत चलती रही री
सजन बिन बिरहिनी जलती रही री। १०६

अरे ए जोशियों तुम सांच बोलो
मिले [ मिलिई ] मो सूं बिदेसी श्याम कौ लौ। ११७

चली कातिक की रुत क्या कीजए [ कीजई ] री
सिलोने बिन नहीं अब जीव रहे [ रहिई ] री। १२२

लिखो तावीज पी (पिय) आवे [ आविई ] हमारा
वगरना जाए [ जाइई ] है जिवडा हमारा १५१।

उठन बैठन कि ताक़त ना रहे [ रहिई ] री
न जानूं जान कब लग यो सहे [ सहिईं ] री। २८०

गया जब जेठ तो मैं क्या करूं री
पिया के दर्द से बिस खा मरूं री। २२८

बिकट कहानीमें प्राप्त, कुछ भविष्यत्कालिक रूपवाले वैतोंका यहाँ उल्लेख किया गया है। यह संपूर्ण सूची नहीं है। उपरोक्त वैतोंमें अधोरांखित अक्षरोंमें लिखे गए सवही क्रियारूप भविष्यत्कालिक हैं। थोडा ध्यान देनेसे यह वात सामने आती है कि उन क्रियाओंमें कही-कहई, रही-रहई, जिवां-जीवइं, दिखावूं-दिखावउं, आदि रूप प्रच्छन्न है। इससे इन क्रियाओंके अर्थ स्पष्टतर और सुसंगततर बन जाते हैं। एवंच यह सत्य स्पष्ट है कि इन क्रियाओंमें भविष्यत्कालिक रूप निहित हैं। यहभी कहा जाए कि इस काव्यमें गा रूपभी प्रचुरतासे प्रयुक्त है। परन्तु इस काव्यमें भविष्यत्कालके स रूपोंका अभाव है।

नवाए अदबमें (उर्दू त्रैमासिक पत्रिका, बम्बई, अप्रैल १९६९) डॉ. तन्वीर अहमद अलवीने इलाही बख्श कांधलवीके (मृत्यु शक १७५२) बिकट कहानी नामक काव्यके भाषिक विशेषोंकी चर्चा प्रस्तुत की है। उन्होंने एकअध वाक्यमें उस काव्यमें प्राप्त क्रियारूपोंको भविष्यत्कालिक रूप बतलाया है। वह कहते हैं——" इसके अलावा मुज़ारिएके सेगे

भी मुस्तक़बिलके मानोंमें इस्तिमाल किये जाते हैं। ज़ेरे-नज़र नज़ममें उसकी बहुतसी मिसालें मौजूद हैं, मसलन-अरी इस दर्दके मारे न जीवूं। डॉ. अलवीने इन रूपोंमें भविष्यत्कालिक अर्थ पाया, यह ठीकही है। लेकिन मुज़ारिआ और भविष्यत्कालिक रूप अलग होते हैं। मुज़ारिआ को Aorist कहा जाता है। डॉ. अलवीने इन रूपोंको भविष्यके रूप मान कर, उनकी व्युत्पत्ति देनेकी चेष्टा नहीं की और न अधिक चर्चा।

डॉ. अलवीने और एक बात बतलाई है कि भविष्यत्कालिक रूप प्राप्त होनेके लिए गा, गी, गे के बजाए का, की, के शब्दोंको बढाया जाता है और उससे पहले ने चिन्हयुक्त क्रियारूप प्रयुक्त होते हैं। जैसे वह नहीं गाने का, मैं नहीं करनेकी, तुम नहीं पानेके, वह नहीं गानेका, वह नहीं जाने की आदि। डॉ. अलवीका यह खयाल ठीक नहीं है। यह रूप भविष्यत्कालिक नहीं हैं। यहाँपर का, की, के यह केवल षष्ठीका प्रत्यय है। भविष्यत्कालिक क्रियाका नहीं। इन वाक्योंमें भविष्य रूपोंका सम्बन्ध नहीं है। ऐसे प्रयोग मराठीमें भी रूढ है 'जैसे तो नाही यावयाचा, रामा ते काम नाही करावयाचा' (इस मौक़ेपर यह महत्त्वपूर्ण है कि इलाही बख़्शकी बिकट कहानी बिल्कुल आधुनिक कालकी रचना होनेके बावजदभी, इसमें चर्च्य भविष्यत्कालिक रूप पाए जाते हैं। दुर्दैववशात् हमको यह काव्य देखनेके लिए नहीं मिल सका। डॉ. अलवीने ऐसे रूपोंके, उपरोक्त वाक्यके सिवा अधिक उदाहरण नहीं दिए हैं। परन्तु यह बात स्पष्ट हो जाती है कि उपरोक्त वाक्यमें जीवूं क्रिया भविष्यत्कालीक है। उसका अर्थ है जीवूंगी। यह स और ह भविष्यत्कालिक क्रियारूपोंका घिसा हुआ रूप है।

**पुरानी मराठीमें**

पुरानी मराठी भाषामें, जिसको आम तौर पर महानुभावकालीन भाषा कहा जाता है, भविष्यत्कालिक क्रियाओंका यही रूप प्रयुक्त होता था। झूल्स ब्लोक, वि. का. राजवाडे और शं. गो. तुळपुळे (*An Old Marathi Reader* : S. G. Tulpule, Poona, 1960) आदियोंने इस प्रश्नकी चर्चा प्रस्तुत की है। राजवाडेने इसकी व्युत्पत्ति भविष्यत्के स रूपसे बतलाई है जो सुयोग्य है। उपरोक्त पंक्तियोंमें दक्खिनी हिन्दीमें प्राप्त इस रूपकी व्युत्पत्तिसम्बन्धी जो तर्कवाद किया गया है वही इस मराठीमें प्रयुक्त भविष्यरूपके लिए भी लागू होता है। डॉ. तुळपुळेने आम्बे-जोगाई (ज़िला बीड, महाराष्ट्र) के एक शिलालेखका (उत्कीर्ण शक १०६६) उद्धरण किया है। लेखका अंतिम वाक्य है (पृ. ८७)—"जो **फेडी लोपी** तेआ योगिनींचा वज्रदंडु **पडे**॥" इस वाक्यका अनुवाद है "जो इसको नष्ट करेगा, लोप करेगा उसपर योगिनीका वज्रदण्ड पडेगा"। डॉ. तुळपुळेने दूसरा उद्धरण लीळाचरित्रका (लेखनकाल शक १२००) पेश किया है (पृ. ९४)। उसका वाक्य है—"सर्वज्ञें म्हणीतलें : तुमचें दीधलेयावीण : हें आरोगण **करी** : तरि गोपाळण्ही आन :" अर्थ है—"सर्वज्ञने कहा : तुम्हारा दिए सिवा, यह भोजन करेगा तो उसको गोपालकी सौगंद"।

यही भविष्यत्कालिक क्रियारूप आधुनिक कालकी मराठी भाषामें भी प्रयुक्त होता था। उसका उपयोग कविवर्य मोरोपन्तने (जन्म शक १६५१—मृत्यु १७१६) निम्नकी आर्यामें किया है:—

**न धरी शस्त्र करीं मी गोष्टी सांगेन युक्तिच्या चार**

मैं हाथमें शस्त्र धारण नहीं करूँगा। (अलबत) युक्तिकी कुछ बातें बतलाऊँगा। इससे पता चलता है कि यह भविष्यत्कालिक रूप कई आधुनिक आर्यभारतीय भाषाओंमें प्रचलित था।

## (२) काव्यका वृत्त

इस काव्यका वृत्त ईरानी (फार्सी) है जो अरबी वृत्त या छन्दःशास्त्रपर आधारित है। अरबीका छन्दःशास्त्र रोमन वा ग्रीकके समानही माना जाता है। ग्रीक और संस्कृत छन्दःशास्त्र बहुत कुछ मूलभूत और समान हैं। मूलभूत कल्पना लघुगुरु मात्राओंकी है। यही लघुगुरु व्यवस्था ईरानी वा अरबीमें भी अध्याहृत है। च्यूं कि अरबी वर्णोंका निर्माण ईसवीकी चौथी शतीमें होना पाया जाता है, इस लिए इस छन्दःशास्त्रको अरबी नामाभिधान मिलने पर भी, उसका आधार केवल भारोपीय भाषाओंका छन्दःशास्त्रही प्रतीत होता है। इस काव्यमें केवल एकही वृत्त प्रयुक्त हुआ है। उसको बहरे-मुतक़ारिब कहा जाता है। पारिभाषिक रूपमें उसका वर्णन फ़ऊलुन फ़ऊलुन फ़ऊलुन फ़ऊलुन रूपमें किया जाता है। गोया भारतीय छन्दःशास्त्रके अनुसार यह वृत्त य, य, य, य गणोंपर आधारित है। अर्थात् यह भारतीय भुजंगप्रयात वृत्त है जो सर्वविश्रुत है। जगन्नाथ प्रसाद भानुकृत छन्दःप्रभाकरके अनुसार उसका लक्षण 'यचौ युक्त ताता भुजंगप्रयाता' किया गया है। उसमें चार य-गण होते हैं।

इस मुतक़ारिब वृत्तके चार प्रकार होते हैं। दूसरा प्रकार यह है कि अंतिम य गणमें एक अंतिम गुरु नहीं पाया जाता। गोया यह प्रकार तीन य गणों और लघुगुरुसे बना हुआ है। यह प्रकारही इस काव्यमें बहुतायतके साथ प्रयुक्त हुआ है। दोनों प्रकार कविने आवश्यकतानुसार प्रयुक्त किए है।

ईरानी वृत्तशास्त्रको समझनेके लिए यह ध्यानमें रखना ज़रूरी है कि ईरानी वर्णमालाके ३२ वर्णोंको व्यंजन माना जाता है। अ (अलिफ़), इ (याय) और उ (वाव) यह मूलभूत स्वर माने जाते हैं। इस छन्दःशास्त्रका यह नियम है कि प्रत्येक शब्दके प्रथमाक्षर अथवा प्रथम वर्णमें इन तीन स्वरोंमें से कोई स्वर आ जाना चाहिए। इन स्वरोंको ज़बर (अ), ज़ेर (इ) और पेश (उ) चिन्होंसे व्यक्त किया जाता है। दूसरा नियम यह है कि एक लघु वर्णके बाद दूसरा लघु अक्षर आ जाए तो दोनों मिलकर एक गुरु बन जाता है। यह नियम अनेक अक्षरोंवाले शब्दके मात्रानिर्धारणके लिए भी लागू है। इससे लघुगुरु क्रम निर्धारित होता है। तीसरी बात यह कि ईरानी भाषामें प्रत्येक शब्दका अन्त्य वर्ण हलन्त माना जाता है। अर्थात् प्रत्येक ईरानी शब्दका अन्त्य वर्ण गुरु माना जाता है।

ईरानी काव्यमें एक बैतमें कमसे कम दो चरण होते हैं। हर चरण या पादको मिस्रा कहा जाता है। हर मिस्रेमें समान गण वा मात्राएँ होती हैं। प्रस्तुत काव्यमें ७१२ बैत हैं। उपान्त्य बैत है—

**बचन फूल गूंद यूं बिराहीम नाम**
**किया सहस पर बर्स बारा तमाम।**

इस वृत्तके गण और मात्रा निर्धारित करनेके लिए यूं लिखा जाए तो

**बचन् फूल गूंद् यूं बिराहीम नाम्।**
**किया सह्स पर् बर्स बारा तमाम्।**

यह निश्चित हो जाता है कि इसमें तीन य गण हैं और अन्तमें लघु और गुरु हैं। गोया v–, v–, v–, v–, मात्राएँ उसमें प्राप्त हैं। दूसरे प्रकारका मुतक़ारिब (भुजंगप्रयात) निम्न बैतमें मिलता है।

**छपन देस के सब गुनी लोक आए**
**सो शह बार बाजे अनन्द के बजाए। ६०१**

इस बैतमें, हर एक मिस्रेमें चार चार य गण पाए जाते हैं।

इस बैतके दूसरे पादके प्रथम शब्द 'सो' को देखा जाए। ईरानी छन्दःशास्त्रके अनुसार उस शब्दमें सीन और वाव मिले हुए हैं और उसका उच्चारण सो, सू होता है। नियमानुसार यह गुरु होता है। लेकिन अपवाद रूपमें अथवा वैकल्पिक रूपमें उसको लघुभी माना जा सकता है। यह ईरानी छन्दःशास्त्रकाही अपवादरूप नियम है। यही वस्तुस्थिति भारतीय प्राकृत, अपभ्रंश भाषाओंमें मौजूद थी। पुरानी मराठीके काव्यमें इस अवस्थाके कई उदाहरण मिल जाते हैं। भारतीय संकेतके अनुसार गुरु माने जानेवाले निम्न शब्दोंको इस काव्य में लघु माना गया है—भी (बैत ५५), जो (६०), है (६०), देवू (४, ७०,), वू, वो (५१, ५२), को (५२५), सो (५२८, ५४२), जो (५३५) आदि। दौरह (१९२) और कूजह (५३७) शब्दोंमें ईरानीके नियमके अनुसार अंतिम ह अनुच्चारित है, गोया यह शब्द दौर, कूज उच्चारित होंगे।

## (३) हस्तलिखित प्रतियाँ

इब्राहीमनामा ग्रंथकी दो हस्तलिखित प्रतियाँ प्राप्त हैं। एक प्रति महाराष्ट्र शासनके औंध संग्रहालय (ज़िला सातारा) में सुरक्षित है। यह संग्रहालय औंध संस्थानके नरेश पंत प्रतिनिधिने आरम्भ किया था। शक १८६९ के पश्चात् वह महाराष्ट्र शासनकी व्यवस्थामें है। इस प्रतिके कुल ८४ पत्र folio हैं। प्रत्येक पन्नेपर सात पंक्तियाँ लिखी गई हैं। इस प्रकार १६६ पृष्ठोंपर पूरा काव्य लिखा गया है। अक्षर अतीव सुवाच्य है। प्रतिके शीर्षक पृष्ठपर लेखकका नाम लिखा गया है। नाम सैयद अब्दुर्रहीम इब्ने सैयद यूसुफ बतलाया गया है। प्रतिपर लेखनकालका उल्लेख नहीं किया गया है। परन्तु अक्षरवाटिका और शैलीसे मालूम पडता है कि यह प्रति कमसे कम दो सौ वर्ष पूर्वकी है। लेखनशैली काफ़ी पुरानी है। पूरे ग्रंथमें ट, ड, ड़ वर्णोंकी लिखावटमें ताय चिन्हका उपयोग नहीं किया गया है। ट को ते अक्षरके ऊपर और दो बिन्दियोंसे और ड, ड़ अक्षरोंको उनके नीचे तीन बिन्दियोंसे लिखा गया है। ग अक्षरके लिए कभी कभी काफ़के नीचे तीन बिन्दियाँ दी गई हैं। ऱ्हस्वदीर्घादि उच्चारणके लिए चिन्होंका उपयोग अन्ततक किया गया है। इसके कारण तत्कालीन उच्चारणकी दिशा मालूम हो जाती है। लेखन नस्तालिक शैलीमें है। चारों ओर हाशिएकी सुव्यवस्थित रेखाएँ लगा कर लेखन किया गया है। काव्यके अंतर्गत शीर्षकके लिए नीचे ऊपर दो रेखाएँ खींची गई हैं।

प्राप्त फोटोस्टाटपर केवल एकही मुद्रा लगी हुई है। वह पंत प्रतिनिधिकी है। ईरानी भाषामें ग्रंथका नाम 'इब्राहीम नौरस तस्नीफ़े इब्राहीम आदिलशाह' लिखा गया है, जो सत्य नहीं है। यह ग्रंथ इब्राहीम नामा है और उसका कवि अब्दुल दिहलवी है। इस ग्रंथके नामके साथ नौरस शब्द संयुक्त होनेका कहीं विश्वासार्ह उल्लेख नहीं मिलता। इसी प्रतिको हमने इस सम्पादनका आधार बनाया है।

इस ग्रंथकी दूसरी प्रति हैदराबादके प्रसिद्ध सालारजंग इस्टेट लायब्ररीमें प्राप्त है। उसका फोटोस्टाट हमको प्राप्त हो सका। इस ग्रंथका समावेशन क्रमांक ९५९ है और उसका विभाग उर्दू हस्तलिखित है। इस प्रतिमें हर पन्नेपर १२ पंक्तियाँ लिखी गई हैं। प्रतिलेखकका नाम और प्रतिलेखनका काल दोनों अप्राप्त है। यह भी सुवाच्य नस्तालिक ही है। किन्तु उसका मोड बिल्कुल आधुनिक और गोया शिलामुद्रणके समान है। यह प्रति शायदही सौ वर्ष पूर्वकी हो सकती है। अधिक पूर्वकी नहीं हो सकती। इस प्रतिका पाठनिर्धारणमें उपयोग किया गया है।

औंध प्रतिकी लेखन विशेषताएँ इस प्रकार हैं। ईरानी लेखन पद्धतिका इसपर काफ़ी प्रभाव है। ईरानी (फार्सी) में किसी शब्दके अंतिम हे वर्णका उच्चारण अ होता है। आधुनिक उर्दूमें इब्राहीम नामा ग्रंथनाममें पाए गए नामा शब्दके हे अक्षरयुक्त लिखे जानेपर भी ईरानीमें नामही उच्चारण होगा। यही उच्चारण इस काव्यमें है। लेखनमें भी इस हे वर्णका उच्चारण नहीं करना है। औंध प्रतिके इस मूलभूत नियमको सालारजंग प्रतिमें भुलाया गया है। इस उत्तरकालीन प्रतिमें हर जगह हे वर्णको उच्चारित बनाकर लिखा गया है। इसी वजहसे औंध प्रतिमें लिखित मुक, देक, कुच, मुज, हात, अरत, बुद, गूंद, जीब, डाड आदि शब्दोंको **स** (सालारजंग) प्रतिमें सानुक्रम मुख, देख, कुछ, मुझ, हाथ, अरथ, बुध, गूंध, जीभ, डाढ आदि लिखा गया है। प्रतिमें इन शब्दोंको इस प्रकार लिखा जानेसे जनसाधारणके इन शब्दोंके उच्चारणमें परिवर्तन होनेकी ओर संकेत नहीं होता। यह केवल उत्तरकालीन प्रतिलेखककी विशेष शैली है। (२) उर्दू लिपि मूलतः अरबी है। अरबी लिपिमें प, च, ज़्हे और ग अक्षरही नहीं हैं। इस लिए फार्सीमें प्राप्त प, च, ज़्ह और ग वर्णोंको फार्सीके ब, ज, ज़ और क कहा जाता है। ग (गाफ़) वर्णको काफ़े-फ़ार्सी कहा जाता है। औंध प्रतिमें आम तौर पर ग अक्षरको क अक्षरसे ही लिखा गया है। यही स्थिति साधारणतया प और च की है। (३) इसी प्रकार अरबी और ईरानी दोनों भाषाओंमें ट, ड और ड़ नहीं हैं। उनके लिखनेकी मुसलमानोंको भारतही में आवश्यकता प्रतीत हुई। सौ वर्ष पूर्वतक इन अक्षरोंके लिखनेके ढंग अलग अलग रहे। यह सब वर्ण पष्तो भाषामें मौजूद हैं। उस लिपिमें यह अक्षरचिन्ह अलगही हैं। भारतकी मुसलमान-लिखित हिन्दी अथवा आधुनिक उर्दूमें इन वर्णोंको सानुक्रम ते पर दो अधिक बिन्दियाँ और दाल और रे अक्षरोंके नीचे तीन बिन्दियाँ लगाकर लिखा गया है। बिन्दियोंकी जगह इन अक्षरोंमें तोय, ऊपर लिखनेकी प्रथा सौ वर्ष पूर्वही से दिखाई देती है। यही पद्धति आजकी भारत और पाकिस्तानकी उर्दू लिपिमें सिकारी सई है।

औंध प्रतिभी कविकी मूल प्रति न होनेकी सूचना औंध प्रतिसे मिल जाती है। बेत क्रमांक ४५० का पहला पाद इस प्रकार है--

**मिले शाह इब्राहीम आदिल हस्त यूं**

काव्यके वृत्तका ध्यान रखा जाए तो यह पाद बिल्कुलही ग़लत हो जाता है। इसमें कई मात्राएँ बढ जाती हैं। य गणका क्रम भी खण्डित हो जाता है। इससे ज्ञात होता है कि ऐसा पाद कवि नहीं लिख सकता। इस लिए यह पाद मूलतः ग़लत लेखन है। संशोधित पादका लेखन संहितामें दिया गया है।

दोनों प्रतियोंको सूक्ष्मतया देखनेसे यहभी ज्ञात होता है कि सालारजंग प्रति औंध प्रतिही का लेखन और अनुकरण है। (१) सबसे पहली बात यह कि इस प्रतिमें औंध प्रतिसे कोई बातभी अलग नहीं है। अगर कुछ विशेष है तो वह है औंध प्रतिके मूलका खण्डित रूप। इस लिए हम कह सकते हैं कि **स** प्रति औंध प्रतिका अनुकरण है। (२) औंध प्रतिमें प्राप्त प्राचीन पाठोंका शुद्धिकरण **स** प्रतिमें दिखाई देता है। उदाहरणके तौर देखा जाए मज़्मून शब्द। अब्दुलने यह शब्द ज़े अक्षरसे लिखा है जो उच्चारानुसारी है। परन्तु अस्ल अरबी शब्दमें ज़ाद है। इसलिए **स** प्रतिमें इस लेखनका शुद्धीकरण-आधुनिकीकरण किया गया है, देखिए बैत ९४ और ११५। अन्य बैतोंमें अब्दुलका लेखनही अनुकृत है।

अब्दुलने **दोन्हों** शब्द लिखा है, परन्तु **स** प्रतिमें उसको **दोनों** के रूपमें लिखा गया है। देखिए बैत (५८४)। औंध प्रतिकी ग़लतियोंको जूं के त्यूं रखा गया है। अब्दुल वो शब्दको अलिफ-वावसे और सो शब्दको सीन, वावसे लिखता है। परन्तु बैत ३८४ में उसने वो को वावसे और सो शब्दको सीनसे लिखा है। पेश लगाकर अलग अलग शब्द मानकर पढ़ना ज़रूरी है। यही ग़लत लेखन **स** प्रतिमें है। मुरस्सअ शब्दको अब्दुलने वाव अक्षरसे लिखा है। उसका सुधार **स** प्रतिमें मिलता है और यह शब्द अरबी मूलके अनुसार मिलता है। ग़लतियोंको कायम रखनेके लिए देखें जाए बैत: देखे (बैत ५१४), बडा (बैत ५२२), भुई (बैत ५४३), भर (बैत ५५८ और ५८९), बुका (बैत ५९९), सुनावें (बैत ६६१) आदि।

**स प्रति त्रुटित**

सालारजंग प्रतिका सबसे बडा दोष उसके त्रुटित होनेका है। उपरोक्त लेखनदोष तो उसमें पाए जातेही हैं। परन्तु कई बैतोंमें शब्दके शब्द अप्राप्त है। प्रतिलेखकके प्रमादसे कई शब्द छोड़ दिए गये हैं। इतनाही नहीं। औंध प्रतिमें प्राप्त बैत ४२, ४३, १६१ (प्रथम पाद), १७१, २९७, २९८, ५२०, ५२१, ५६१, ५६२, ५६३, ६०३ से ७०९ (७ बैत) ६४५, ६६३ (द्वितीय पाद) और ६६३ **स** प्रतिमें अप्राप्त है।

**आभार**

एक दृष्टिसे इब्राहीम नामा ग्रंथ बहुतही महत्त्वपूर्ण है। संस्कृत साहित्यमें जो स्थान बाण-लिखित हर्षचरितको प्राप्त है वही स्थान अब्दुलके इस इब्राहीम नामेको हिन्दी साहित्यमें है, होना चाहिए। लेकिन यह ग्रंथ ईरानी लिपिमें लिपिबद्ध होनेसे वह हिन्दी पाठकों, विद्वानोंके सामने नहीं आ सका। उर्दूमें भी वह अभीतक अप्रकाशित है। इस ग्रंथका सम्पादन सुसाध्य बनानेमें महाराष्ट्र शासनके पुराभिलेख और पुरातत्त्व विभागके भूतपूर्व संचालक स्वर्गीय डॉ. मोरेश्वर गंगाधर दीक्षित और अबके संचालक श्रीमान् विठ्ठल गोपाल खोबरेकर, दोनोंने मेरी बड़ीही सहायता की। औंध प्रतिका फोटोस्टाट तो उन्होंने मुझे दे रखा था। लेकिन पाठनिर्धारण और सन्तुलनके लिए सालारजंग प्रतिकी भी आवश्यकता थी। बड़े प्रयत्नसे यह प्रतिभी मुझे उनसे प्राप्त हो गई। आवश्यकतानुसार इन दोनों विद्वानोंने मुझे अपने ग्रंथालयसे पुस्तकें देकर भी मेरी सहायता की। उनकी इस सहायताके लिए मैं उनका हृदयसे आभारी हूँ।

प्रस्तुत इब्राहीम नामे जैसे ग्रंथका अनुसन्धानपरक सम्पादन और वहभी महाराष्ट्रमें, प्रकाशित करना बड़ाही मुश्किल काम था। लेकिन महाराष्ट्र शासन, उसका पुरालेख पुरातत्त्व राज्य मण्डल और पुरालेख विभागके संचालक, इन तीनोंके हिन्दी भाषा और इतिहासके प्रेमने यह बात शक्य बना दी। पुरालेख संचालक श्री. वि. गो. खोबरेकरजीने मेरे इस काममे हाथ बंटाया। उनही की सहानुभूतिपूर्ण सहायतासे यह हिन्दी संस्करण पाठकोंके सामने आ रहा है। मैं उनका आभारी हूँ।

**देवीसिंह चौहान**

मुंबई, श्रावण २५, १८९२

# इब्राहीमनामा

## फार्सी शीर्षकोंके अर्थ

## अब्दुल कृत

# इब्राहीम नामा

इलाही ज़बान गंज तूं खोल मुज
अमोलिक बहा कर यू कुच बोल मुज

कहूं बिस्मे अव्वल तो अल्लाह लाए
कली मुक खिली जीब भिंगरी[1] डुलाए

बचन मीत रस चौ (जौ) पडे बूंद आए
फवर[2] (भवर) कान आ़रिफ़ भुलें बास धाए

वले चित जनावर न कर सक उडान[3]
सिफ़त झार चड डाल तुज एक पान

जिता अ़क्ल बाज़ू फ़िकर कर उडान[4]
न सपरे जरम अंत तुज शाख़ ग्यान

तुहीं तुज थें हो जगत् सब सन्या
तुहीं रूप आ़लम ले अपना भन्या

किया गंज मख़्फ़ी थे परगट नुमाए
न था कुच सो रोशन किया जग तु आए

रच्या खेल जल-मंडली[5] बे-शुमार
बिछाया तरफ़ जद यो आ़लम निगार

धन्या रात पर्दा दीवा दीस लाए
भन्या गंज क़ुदरत पिटारा[6] फिराए

सुतर बांद अर्वाह पुतली खिलावे
हर एक जिन्स के रूप हर शय दिखावे

---

१ भिकारी। २ फवर। ३ उदान। ४ उदान। ५ मंदली। ६ पितारा।

एल ४९५०—१०

न बूझ्या कहीं उस सुतर का जो भावू
रहे धूद बहुतेक ना सुद्द पावू

खरा हो रह्या अक़्ले-आ़लम हैरान
न दिसता अ़िलम ऊस कुन्ह् का बयान

कए सब सरफ़ कर तो माजी ख़ियाल
न हो सम्ज किस को यो अहवाल हाल

किते शाह असवार उस पंत आए
उडे[1] गर्द हो कर न कुज (कुच) सुद्द पाए

ऐसा है वो[2] क़ादिर अपस[3] ग्यान आन
फिरावे ख़रज [चरख़] कर यो आ़लम तु जान

कि[4] या बाज़ीगर ज्यूं ज़माना दिखाये
करे खेल बाज़ार आ़लम में आये

पकर रात दिन हात[5] दोनो फिराए
सुरिज चांद कांसे अम्रित बिस मिलाए

कधीं चांद कांसे थे बिस निस छरे (झरे)
सो उस पीव कर सब जगत तौ मरे

कधीं सुरिज कांसे थे अम्रित पिवे
मुवा दौरे-आ़लम सो भिर (फिर) कर जिवे

कि या रात नागिन भिरे[6] (फिरे) धाय कर
गगन खूट[7] पर छर[8] सो वो जाय कर

सो पी जांदना (चांदना) दूद काली दिखाए
वही फिर जो उगले[9] सुबह हो नुमाए

कि या दीस मिल बाप निस माई जन
हुवा बोंकडा[10] [पूंगडा] चांद निर्मल रतन

कंवारी गगन बाह कर तिस झुला
पकर दोरी कहकश सो तिस कू हिला[11]

पड्या रोवता आंझू ए आल [आन] कर
पडे बूंद बुंद हो सितारे बिखर

अंधारे की कोती ले दारू पिलाए
दिसे चांद मुक बिच्च स्याही सो आए

---

१ उरी। २–३ यह दोनो शब्द सालारजंग प्रतिमें नहीं हैं। उससे वृत्तभंग होता है। ४ यहाँपर म प्रतिमें 'फ़ित्-तौहीदे-ज़रफ़ियात' का शीर्षक है। ५ हाथ। ६ फिरे। ७ खूत। ८ चिहर। ९ उचले। १० बूंकरा। ११ न्हला।

कि या दीस का पोंकरा [पूंगरा] गगन धर
सुरिज अशरफी बांद गल किरन लर[1]

कि ज्यू (ज्यूं) रात डाकिन सो वो ना दरे (डरे)
सो इस जिन्स लेकर चरख़ दिन फिरे

कि या रूप कातिब सो क़ुदरत हो कर
लिखे नेको-बद वर्क़ मावे उपर

सुफिदी (सफ़ेदी) सुं भर चांद दावात कर
क़लम लिक्क सो कहकश हरफ़ तारे धर

सिका कर सुरिज रूप ज़र-हल लगाए
अपस हुक्म फ़र्मान आलम फिराए

ऐसा है वु क़ादिर अपस आप ग्यान[2]
फिरावे चरख़ कर यो आलम निशान

जिते[3] मेग धारां हो बरसे जो बूंद
हर एक बूंद वो फिर जो हूवें समुंद

पहे[4] [बहे] वो समुंद हो सब जो स्याही धरें
रिवायत ऐसी कूर आलम फरें (भरें)

लिखे अर्श कुर्सी गगन वर्क़ भर
अज़ल हौर अबद दरमियान मश्क़ कर

जिता जीव तिर्लोक हो लिख् नहार
न पूरन लिखे तुज हरफ़ यक बिचार

सो अब्दुल सिफ़त यक ज़बान क्यू (क्यूं) करे
चिरी बूंद पीतें न दर्या सरे

## (१) नअ़ते-हज़रते-रिसालत सले अल्लाह अल्लेही वसल्लम

गुसाईं एकत (ट) था न हौर कुच मौजूद
निपाया मुहम्मद सूं लक जग[5] वजूद

जो था गंज मख़फ़ी सो परगट दिखाए
अिशक़ आरसी मीम मिस्क़ल फिराए

अहद दौर कर मीम अहमद किया
हरफ़ चार मिल फेद (भेद) चारो दिया

शरीअत तरीक़त हक़ीक़त बयान
किया मअ़रिफ़त अैन उस पर अयान

१ कर। २ क्यां। ३ चिते। ४ पाहे। ५ जक।

एल ४९५०—१०अ

फिरे फ़लक नौबत हो उस बार पर
कमर बांद[१] कहकश सो उस थार पर
खडा[२] दीस बून्हा हो पर दार बार
पकर रात की स्याह लकडी किनार
हुई[३] हबशिनी रात दिवतन के फेस (भेस)
अुजाला पकर नूर दिवती (दिवटी) ले देस
हुवा सिद्क़ का दीस जग दिल उपर
रह्या सुरिज ईमान का रूप धर
किया जगत ज़ाहिर सो उस ज़ात लग्ग
सुनाया निदा कर सो लौलाक जग्ग

हुवा आपीं आ़शिक़ व मअ़शूक़ कर
दिखा रूप अपना सो आपीं नज़र
अिशक़ भेद बूझ उन्ही ने तमाम
हुवा ख़ातिमुल् अन्बिया तूस नाम
न तुज सिफ़्त दफ़्तर वरक़ को भराए
कौ ते सातो दरए जो उंगल्या [उंगत्या] को लाए
अगर जीब हर बाल होएं हजार
न अ़ब्दुल सिफ़त कर सके इक बिचार
अपस आलो, असहाब के सात ले
अहल पंज-तन दौर मुज[४] हात[५] दे

## (२) दर मदहे-याराने-रसूलिल्लह् सलअ़म

नबी बरीअत [प्रीत] के थे सो नौ चारो[६] यार
बलिक वु [वो] रतन चार चारो किनार
पदक दीन मज्लिस जुरे वु [वो] रतन
कुंदन सिद्क़ सूं लक रहे वु [वो] जतन
हुवे मद सो नायक नबी दर्मियान
सन्या हर दो आ़लम भी जिस जोत[७] आन
अवल रत्न मिलिया अबू बक्र जान
कि जिस सिद्क़ का कुज (कुच) न आवे बयान
दुजा रत्न[८] सांजा (सांचा) भी अुम्मर ख़ताब
कि जिस अ़द्ल सूं दीन[९] सपन्या शिताब

---

१ बांध। २-३ यह दोनों बैत स प्रतिमें अप्राप्त है। ४ मुझ। ५ हाथ। ६ चार। ७ जोत। ८ रअन। ९ यह शब्द स प्रतिमें छूट गया है।

तिजा रत्न जानों भी अुस्मान अफ़ान
हया का किया हद्द संजिया क़ुरान
चौथा रत्न जानों सो मिल कर अली
शुजाअुत सख़ावत वलायत वली
मुहम्मद सो जर है अली पेर जान
होवे ख़ानवादे जो दह शाख़ आन
ख़िलाफ़त जगत की सो[1] पान सब
लगे भूल (फूल) बइअुत सिद्क़ भल (फल) सो तब
जि कौ पेर अपने सूं मुन्किर जो होए
कहो मिल सो तहक़ीक़ मुश्रिक है सोए

## (३) दर तअुरीफ़े मुर्शिद शहबाज[2] सय्यद मुहम्मद गेसू दराज़

जबान अब संवर शाह मुर्शिद अवाज़
मुहम्मद हुसेनी जो गिस्सूद्-दराज
वही है अली के नसब का चिराग़
वही है नबी-आल का ख़ास बाग़
वही आशिक़ों में सजा (सचा) इश्क़बाज़
उन्ही सांज (सांच) बूझ्या है मअुशूक़ नाज़
वही इश्क़ सूरत हो आलम में आए
वलायत वल्यो (वल्यों) में हो रोशन नुमाए
न उस शाह सा शह विलायत है कोई
कि जिस शाह को शाही देवे सो होए

किया[3] शाही सो [सूं] दूर फ़ीरोज ख़र[4] [घर]
नवाज्या सो अहमद गदा शाह कर
युहीं शाह मुज कूं सो तूं अब नवाज
कहूं खोल मअुरफ़ी में तुज सूं यो राज़
तूं दे मुज शिअुर कों सो हौर वो जहान[5]
नजर शाह उस्ताद मक़बूल आन[6]

## (४) दर तअुरीफ़े हजरत उस्ताद शाहे-आलम-पनाह इब्राहीम आदिलशाह ख़ुल्दे अल्लाह मुल्कहू सल्तनतहू

अक़ल हात सूं चित धन्या फ़िक्र कान
सुमिर शाह उस्ताद का बचन ग्यान
न मुज[7] शाह उस्ताद सा हौर कौ
देवूं जिस में उपमा नहीं जोर कौ

१ इस शब्द के बाद कोई शब्द छूट गया हैं। यह शब्द है हों। २ यह स में अप्राप्त। ३ इस बैतके पहले स प्रतिमें हिन्दीमें यह शीर्षक हैं। फीरोज कौनसा वादशाह था। ४ घर। ५ इस एकही पादसे स प्रतिमें बैत बनाया गया है। ६ यह पाद स में अप्राप्त है। ७ मुझ।

वही जहान ह (छान्ह) सांचा तो सुबहान है
वही जगत्-गुर शाह सुल्तान है
अथा रूप मख़्फ़ी जो सुबहान का
हो परगत (परगट) जगत् शक्ल सुल्तान का
लक़ब शाह आदिल बिराहीम मिलाए
किया हर्फ़ नौ रूप मिल क़र ख़ुदाई
जिता कूज (कूच) सन्या जगत नौ फेद (भेद) रस
सो वु (वो) सब ख़ुदा ने किए शाह बस
सो उस थें हुवा रूप नौ रस अवतार
नवा रूप परगट हो नव बुद बिचार

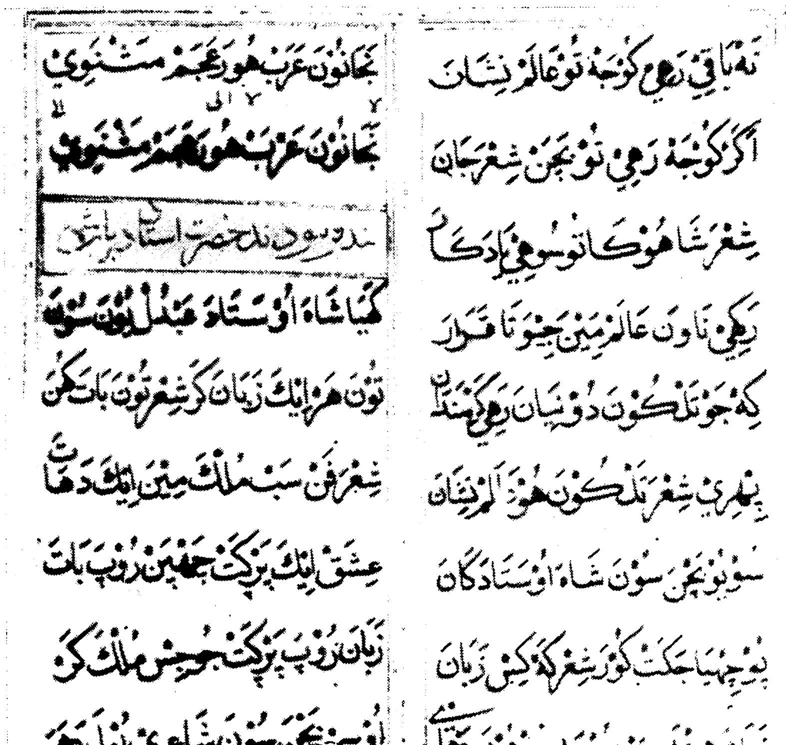
चितर शाह नौ रस बरन्हा रंग फर (भर)
देख्या चाशनी ला ज़मीन गगन पर
गगन नौ[1] उपर नौ करह (गरह) लाए कर
ज़मीन कुंदनों पर[2] रतन नौ सो जर
धन्या सीस रोजों[3] में नौ रोज़ जान
पकर रात में रूप नौ रात आन
धन्या फेद (भेद) संगीत में नौ सुर पकर
लगा रूप सायत में नौ रस जो धर
अवल थे ख़ुदा[4] यू किया आशकार
हुवा जगत्गुर शाह नौ-रस-निगार ।

सौ उस शाह गुन-फुल क्यूं आन कर
ज़बां मालिनी[5] गुंद बचन तार लड
सो बुद[6] टोकरी में न जावे फरे (भरे)
फ़िकर हात[7] धरतें वु फुल झर पडे
फ़हम माली जूं ले सिफ़त-फूल रास
गुंद्या ख़्याल भंवरा फिरा कोन्ह (गून) बास
अगरचिह तुरा शाह लायक न होये
ब-हर हाल मज्लिस में राखो पिरोये
न ऐसा सुना कौ सो देखा अयान
बिद्या लच्चमीं जोर देवे दो दान[8] ।

तुम्हन पास रह शाह दोन्हों[9] तो आए
नजर देक[10] जिस भर सो रिद सिद्द पाए
ऐसा शह गुरू देक आ जग-सरन
सिहासन बिछा बैट दक्खिन धरन

---

१ तो। २ बर। ३ रोज। ४ स में यहाँपर से शब्द अधिक है जो अनावश्यक है। ५ पालिनी। ६ बुध। ७ हाथ। ८ आन। ९ दोनो। १० देख।



نہ باقی رہے گو جنہ تو عالم نشان
اگر کو جنہ رہے تو بجن شعر جان
شعر شاہو کا تو سو ہے یادگار
رہے نانوں عالم میں جیو تا قرار
کہ جو تل کوں دو نیاں رہے گی ہند
پھیری شعر تل کوں ہو نہ عالم نشان
سو یو مجھ سوں شاہ استاد گان
پوچھیا جگت کوں شعر کہ کس زبان
زبان ہندوی مج سو ہوں دہلوی

بجانوں عرب ہور عجم مثنوی
بجانوں عرب ہور عجم مثنوی
[illegible] حضرت استاد [illegible]
کیا شاہ استاد [illegible]
توں ہر ایک زبان کر شعر توں بات کن
شعر فن سب ملک میں ایک دھات
عشق ایک پرگٹ جہ میں روپ بات
زبان روپ پرگٹ جو جس ملک کن
او بی مجھ سوں شاعری بولنہار

छायाचित्रण, औंध प्रति, पृ. २३ और २४

गुनी लोक लुक़मान-बुद[1] बे-शुमार
सुरिज शाह उस्ताद का यक बिचार

जिते अिल्म आलम अपस बुद[2] अलाम
न बुद[3] शाह उस्ताद का रज हो फ़ाम

नजर शाह उस्ताद जिस पर जो होए
हर एक रूप बिद्या में उस सर न कोए

सो शह जगत गुरु है परिस ज्यूं निशान
मिले लोह शागिर्द चौ तर्फ़ जान

वलेकिन परिस मिल कंचन मोल होए
नजर शाह परतें कुंदन तोल होए

उन्ही शाह उस्ताद कर सो नजर
बुलाया जो अब्दुल कूं सिर हात[4] धर

नवी बात मज़मून कर एक किताब
न कौ फ़िक्र गूंद्या[5] है तिस का जवाब

न बाक़ी रही [रहिई] कुच तो आलम निशान
अगर कुच[6] रहे (रहिई) तो बचन शिअ़र जान

शिअ़र शाहो का तो सो है यादगार
रखी [रखिई] नावु आलम में ज्यू ता क़रार

कि जौ तलकों दुनयां रहिई कर मंदान (मंडान)
फिरी [फिरिई] शिअ़र तलकों हो आलम निशान

सो यो बचन सुन शाह उस्ताद कान
पुछ्या जगत-गुरु शिअ़र कह किस जबान

ज़बान् हिन्दवी [ हिन्दुई ] मुंज[7] सो हूं दिहलवी
न जानूं अ़रब हौर अ़जम मस्नवी

## (५) पंद फ़र्मूदन्द हज़रत उस्ताद दर बाबे-शिअ़र

कह्या शाह उस्ताद अ़ब्दुल यू[8] [ सूं ] सुन
तुं हर एक ज़बां कर शिअ़र तूं (×) बात खुन

शिअ़र फ़न [4](फ़न्न) सब मुल्क में एक धात
अिशक़ एक परगत[9] छपन रूप बात

ज़बां रूप परगत[9] जो जिस मुल्क कर
उसी बच्न सूं शाअ़िरी बोल धर

१ बुध। २ बुद्ध। ३ बुध। ४ हाथ। ५ गूंध्या। ६ कुछ। ७ मुझ। ८ सो। ९ परगट।

अमोलिक रतन ले तूं हर एक दुकान
नज़र धूध (ढूंढ) कर ख़ूब जो तूं[1] निशान
सो तूं शिअ़र हर इक ज़बान बोल यूं
फिरे (भरे) जोत मअ़नी रतन तोल ज्यूं
कि करता फ़िकर शिअ़र मैदान आवो
दपट कर सो इदराक कोरा [ गोरा ] दौरावो

तुं दे मुक[2] लग़ामी अ़क़्ल लात कर
फ़हम पावल्यां सू चला डाट कर
तू लंग कर चमत भेद के धात धात
भी कावे फिराय् वु जोर उपमा की बात
पकर जीब हो डाट चाबुक सवार
फिरा कर बचन रूप चाबुक सो मार
लिजा कर दिखा आ़रिफ़ों की नज़र
तो सब होइ मअ़लूम अ़ैब-हुनर
अगर लक अमोलिक रतन जोत होई [ होइई ]
न बिन जौहरी तिस पछानी [ पछानई ] तो कोई

हन्या काज (काच) हौर पाज (पाच) यक तोल हैं
वलेकिन बुझनहार थे मोल है
यहीं बचन अ़ब्दुल जो हैं काच से
तू कर शाह उस्ताद तिस पाच[3] से

## (६) दर तअ़रीफ़े सुख़न व अल्फ़ाज़े शिअ़र गुफ़्तन

कहूं कोठरी[4] दिल वहम कुल्फ़ खोल
फ़हम कील इदराक धर हात[5] तोल
हुवा अ़क़्ल परकट सो मुक[6] महल पर
सदर जीब रज (रच) फ़िक्र फ़र्राश धर
तिवास्यां बिछा तबअ़ मोज़ूं संवार
नवे बोल मज़मून[7] मज्लिस-निगार

बचन रूप हो शाह दर्म्यान आए
खडे रह तुकां क़ाफ़िए ज़ोर पाए
अन्हत भेद महकार ख़ुशबूई बास
हो यूं शिअ़र मज्लिस बचन की उलास

---

१ तू। २ स प्रति में अप्राप्त। ३ पाज। ४ कोठर। ५ हाथ। ६ मुख। ७ यह शब्द औंध प्रतिमें जे वर्णसे और स में ज़ाद से लिखा है।

बचन बिच्च [ बीज ] है अक़्ल के मूल का
बचन बास है अक़्ल के फूल का
बचन रूप ला हक़ किया जग-रजन (रचन)
बचन[1] जोत परकत[2] हो क़ुदरत रतन
बचन ला रच्या सब यो आलम-फ़ुनून
बचन[3] रूप परकट हो कुन फ़य्यकून

बचन[4] दर्मियान रह अज़ल और अबद
रच्या तीन तिर्लोक ला कर सबद
निकल ग्यान दर्या थे यक बच्न बूंद
उठचा शौक़ हो मौज मुज[5] दिल[6] समुन्द
फिरे अक़्ल ग़व्वास[7] हो दर्मियान
फ़हम हात[8] सूं ले फ़िकर सीप आन
पकड जीब[9] कोर ते सते (सटें) लब-किनार
परे[10] बच्न मोती हो मज़मून थार
सो ले जौहरी कान चुन कर बिहार [बिचार]
नवे ख़्याल लड गूंद कर आशकार

लिजा आरिफ़ों के दिखा नज़र-हाट
हर एक जोत मअनी भरे कोन्ह घात (घाट)
धरूं आन कर मैं सो वो नग बचन
जिहूं देक जावीं [जाविइँ] सो छिप नौ रतन
रतन हौर बचन जोर ना एक तोल
रतन[11] थे अधिक जान अत बच्न मोल
रतन[11] जो अमोलिक मिले लाक जार (चार)
सतें (सटें) वार कर यक बचन के बिचार
वले वो रतन तो पथर खान जान
अमोलिक बचन निक्ल दिल दर्मियान

कुदाली फ़िकर ले अक़्ल हात[8] धर
धुधे (ढुंढे) फ़हम आन ख्यूं [आंख्यों] नज़र ग्यान कर
सो उस जिन्स ल्या कर मैं यक थान धरूं [धरऊं]
अमोलिक बचन नग पदक बुद जरूं [जरऊं]
वलेकिन मैं दुर्चक (दुर्जक) सो काग़ज़ संवार
बचन जोत मानिक रखूं [रखिऊं] तिस मझार

---

१ यह शब्द स में नहीं। २ परगट। ३ यह शब्द स में अप्राप्त। ४ यह स प्रति में नहीं। ५ मुझ। ६ स में अप्राप्त। ७ दोनों प्रति में शव्द सीनसे लिखा है। ८ हाथ। ९ जीभ। १० पडे। ११ स में अप्राप्त।

## (७) दर तअ़रीफ़े क़लम काग़ज़ व हर्फ़ान

दिसे रूप काग़ज़ कपूर का मैदान
क़लम मुश्क कान हरन फिर दर्मियान
शिकारी अ़क़ल देक[1] दिल तेक [तिग] आर
धनुक फ़िक्कर का ले बचन तीर मार

लग्या तांग (टांग) नाफ़े जल्या (चल्या) न्हास कर
पड्यां लोहु धारां हरफ़ मुश्क छर (झर)
भंवर नैन आ देक तिस पर फिरे
ख़ुश्यों बास मअ़नी पंख्यों पल थरें
गया रूप काग़ज़ अम्रित हौज़ फर (भर)
चले क़लम दर्म्यान ज्यूं सांप पड
फिरे चाखता तांक (टांग) जीभां दो जान
परे जहर झर डाड[2] स्याही भरान्
वले सांप बिस झर जो मिल कर लडे
हरफ़ नैं मअ़नी सो देक कर पडे

रहे बे-ख़बर हो सो लहडां बिचार
न तुक (टुक) धीर धर जत (चित) होवे बे-क़रार
इलाही हरफ़ आंखी मअ़नी नुमाए
नज़र देकतें[3] आरसी मुक ज्यूं आए
तूं कर हर्फ़ झारो कूं सब बारदार
फिरे (भरे) ख़ूब मअ़नी सो फल आशकार
तूं भर बीज मअ़नी सो [सूं] ज्यूं बिज अनार
हरफ़[4] बोल थोरे[5] अरत[6] बे-शुमार

## (८) इब्तिदाए-किताबे-इब्राहीम-नाम दर मदहे-हज़रत शाह आ़लम-पनाह

करूं इब्तिदा शह बिराहीम नाम
कि जिस सिफ़्त आ़लम भन्या है तमाम

सरग मिर्त पाताल हर एक धर[7]
रह्या रूप सर्वर हो आ़लम में भर[8]
पकर जर जो कछुवा लग्या सेस नाग
जमीं कंवल लग अत दिसा घाल[9] भांग[9]

---

१ देख। २ दाढ। ३ देखतें। ४ उर्फ। ५ थोडे। ६ अरथ। ७ धरा। ८ भरा। ९ दोनों प्रतियोंमें भांग धाल यह क्रम है।

रगां बूंज [पूंच] दर्म्यान हो परबत सुमेर
पडचा बूंद रस जो सो दरिया जूभेर [चौफेर]
सिफ़त शाह का बास जस सब फिन्या (भन्या)
गगन भंवर दर्म्यान् हो निस दिन भन्या[१] [फिन्या]
वलेकिन सिफ़त यक ज़रा शाह जान
रह्या झार[२] हो कर ज़मीन आसमान

तरफ़ आत (आट) डाल्ह्यां गगन हो ज्युं पान
सुरिज चांद फल फूल दिसते निशान
सो उस झार[३] तअरीफ़ को क्यूं करे
जूलू [चुलू] जीब[४] क्यूं सिफ़्त दर्या फिरे (भरे)
सो यूं देक[५] हैरान रह बुद बिचार
क्यूं कर डाल पकरू[६] (पकडूं) सिफ़त शाह झार
धन्या सीस दिल पर अक़ल फ़िक्र पावूं
ज़बां स्वार हो कर बचन हात[७] धावूं
पकर[८] सिफ़्त परकास उस काच[९] का
बिराहीम आदिल शाह [शहा] राज का

वही जांद[१०] (चांद) है शाह जग चांदना
उसी चांदनी छान्ह जग बांदना
उसी रूप पर चांद सुरिज भूल कर
फिरे चौ-गिरद रात दिन दोल[११] (डोल) कर
सो उस रूप लक चांद सुरिज यूं फिरे
सो शह देखने रात दिन जप करे
हुवावा (हुवा) सुरिज जोगी सुबह राक ला
जिता सयस किरनां सो फिरता खिडा
पडे सांज[१२] दर्या में वो जाय कर
सुबह आइ मांगी सो शह पाय पर

तूं[१३] दे शाह आलम सुरिज रूप दान
ज्यूं[१४] मुज जोत तन होए रोशन जहान
वले[१४] तेज शह रूप ना ताप (ताब) ल्याए
सुरिज[१४] आंख्यों किरना सो छब[१५] (छिप) रात जाए
दुजे[१४] चांद हो भी तपे रूप कर
जधा (चढा) गगन दोघर (डोघर) सो बन रात धर

---

१ फिन्या। २ झाड। ३ झाड। ४ जीभ। ५ देख। ६ पकडू। ७ हाथ। ८ पकड। ९ काज। १० चांद। ११ डोल। १२ सांझ। १३ यह संपूर्ण पाद अप्राप्त। १४ यह पाद स प्रतिमें प्राप्त है किन्तु गलत रीतिसे बैत जोडे गए हैं। १५ छिप।

सटा खान पूरन कला खीन हो
सो तन झीज[1] निस दिन रह्या झीन (छीन) हो
पिया झार रस लक सो मुक[2] पर सियाह
निशानी दिसे रूप अझनू सो माह

पकर[3] हात[4] किरनों सो जप माल मन
पुरो धाल (ढाल) तारे लरां जाप गुन
मके (मंगे) शाह आलम तो दे दान रंग
कला जोत बूरन[5] (पूरन) हो मुज बर्न अंग
चितारी अ [ए] ले गगन वर्क़ हात
सो शह रूप का रंग भर देक[6] धात
देख्या चाशनी बूंद सो हो चांद सूर
उजाला किया सब तो आलम जुहूर
वले चांद हौर सुरिज क्यूं सर करूं
हुसन शाह सूं जोर क्यूं कर धरूं

तपे सुरिज तौ हो अगिन जाल जग
कला खीन हो चांद मुक स्याह लग
सुरिज दीस निकले सो छिप रात में
कला चांद पूरन कलंक जात में
सुरिज जोत बारह कला लागती
दुजें चांद सोलह कला जागती
सुरिज चांद दो मिल अठाइस कला
कला रूप तन शाह जौसत (चौसट) कला

गया शह हुसन रूप बरमंड भर
सुरिज चांद तारो हो दर्म्यान पर
भरे (फिरें) शह हुसन समुन्द में सूर माह
कला जोर हाथों दिखावें सो थाह
जगत रूपवंत आ मिले एक बार
न रह जोर कर शह हुसन तिल निगार
मिलें जोर दीवे जो लाखो हज़ार
न सर बर करे एक किरन सुरिज थार
यहीं सूर शह जोत देक[7] जग छपा
बहुत चांद रुपवंत हो आलम झया (छपा)

---

१ स में अप्राप्त। २ मुख। ३ पकड। ४ हाथ। ५ पूरन। ६ देख। ७ देख।

यूं शह रूप की सुन कहानी तमाम
      न रह कर[1] सक्या मिस्र यूसुफ़ मुदाम

कि मुज रूप थे हो अधिक शह दखन
      कला रूप फर (भर) कर सो जौसत [ चौसट ] लखन

भुली मुज[2] हुसन एक ज़ुलैख़ा मुदाम
      सो शह देक[3] कर भूल आ़लम तमाम

वही अ़द्ल सूं मुल्क सब रान ता [ रानता ]
      ऐसा शाह आ़लम जगत जान ता [ जानता ]

उसी अ़द्ल तक़्वा जिरी (चिरी) ना दरे (डरे)
      लिहा[4] (लिजा) घोसला बाज़ अंक में करे

सिकोरी ज़मीन समन्द भर तेल नीर
      रख्या आन दर्म्यान सुबाती सुमेर

दिवा जोत परताप हो दीस भर
      सुरिज रूप हो बिच परे फूल झर

सो फूल झर कर पन्या गगन पर
      शफ़क़ रूप हो कर अगिन जाल कर

धुवर रंग गगन जल झले (छले) तन परे
      परन रात तारे हो जगमग करे

सो [ वो ] सब छले बहुत पानी झड्या[5] (झन्या)
      सुबह रूप हो गगन सर्वर भन्या

सुरिज रूप चकवाह सो जल में तिरे
      निकल रात सिवाल (सेवाल) ख़ुश हो फिरे

हुवावा[6] (हुवा) शाह आ़लम जगत नावुं यूं
      कि फिर ज़ुल्क़रन दौर आया है ज्यूं

हुवा ज्यूं सो नौशीरवान नेक नाम
      वलेकिन उसे कुफ़्र था दिल मुदाम

सो क्यूं शाह सरबर करूं आन कर
      छपे लाक नौशीरवान अ़द्ल पर

जि कौ आव जिस काज तिस दाद दे
      मरम बात का बूंज[7] (बूज) दिल हात[8] ले

जौ एक बार मुक[9] थे बचन कुच[10] झरे
      जो कुच[10] बोलिया सो जरम ना भिरे (फिरे)

---

१ गर। २ मुझ। ३ देख। ४ लिजा। ५ झन्या। ६ हुवा। ७ बूंझ। ८ हाथ। ९ मुख। १० कुछ।

## (९) दर तअरीफ़े सख़ा हज़रत शाहे-आलम-पनाह अबुल्मुज़फ़्फ़र इब्राहीम आदिलशाह

सख़ावत हुवा शाह जग आशकार
रहम अब्र[१] (अब्रु) हो कर बरस दान धार

अगिन रूप दालिद झिनो [छिनों] जाल दल
तधिक दान पानी हो हर एक खल

जो टुक दान कर शाह धो हात[२] नीर
ज़मीन पिंड हो कर उही [उली] दो सरीर

हो शह दान अवतार दानिक अपार
सो बल और करन नावूं जग आशकार

जिते दानगिर हो जगत ख़ूब गन
हो शह दान की रास थें दानी जन

कि या शाह का दान दर्या अपार
दिसे हात[२] हो कंवल बिच आशकार

रहे हंस ज्यू सब जगत फूल [भूल] कर
अजब हो कंवल थें रतन नौ सु [सो] झर

गगन देक[३] वो नौ रतन दार सार
नहुर (नहार ?) रात दिन कय दोन्हों हत पसा [पसार]

लिया मांग लालज्ज (लालच) सूं शह पास दान
रतन नौ गरह कर दन्ह्या [धन्या] सीस तान

सो शह दान की धाक हिमकर डऱ्या
सटचा रोशनी जा अडिश्ट हो दऱ्या (दडचा)

इंदर लोक डर कर एकस एक कहें
कि जब आए परबत कहाँ हमे रहें

वले एक सुन बात जु कोई अनन्द
करें जीव में अत ख़ुशी बहुत छन्द

न रह दान दिल शाह पर्बत सुमेर[४]
हमन दर्मियान जाए झुत (छुट) रात भर

कि शह दान परसाद बिछरे तलें
सदा काल दिन हो रहें हम मिलें

---

१ अब्र। २ हाथ। ३ देख। ४ सुमिर।

कनक दान कर शह समन्दुर फिरे (भरे)
तिरब (तिरप) हात[१] मछली रतन ज्यूं भरे (फिरे)

अ़जब एक मछली सो पचमुक[२] पसार
सदा काल उगले रतन सोने धार

न ऐसा देख्या कौ सुन्या दानी कान
जो शह जोर सूं लाए उपमा में आन

सिफ़्त शाह ले[३] रह ज्यूं दर्या सो भर
हुवा जग्त तअ़रीफ़ ज्यूं जानवर

अगर जानवर रह हो प्यासा मुदाम
न पी कर सके चोंच दर्या तमाम २१५

न चिंती[४] (चींटी) सके उड सो दरिया पेल्हार
अगर पांक[५] होवे जो लाखों हज़ार

यूं अ़ब्दुल सिफ़त शाह दरिया पऱ्या [ भऱ्या ]
सऩ्हावन किता कौ ज़बान इक कऱ्या

## (१०) दर तअ़रीफ़े-शहरे-बीजापूर गोयद

बिद्यापूर नगर है भी उस को जो नावूं
सुनों अब सिफ़त शह रहन तख़्त ठावूं

कि धन उस ज़मीन ठावूं है तख़्त भर
बस्या सीस जिस के बिद्यापूर नगर

वले़किन जिता कुच ज़मीन का मडान[६] (मंडान)
सो उस शहर का चौक यक दरमियान २२०

कि या उस शहर का छजा एक जान
दिसे रूप सत खन गगन हो निशान

सुरिज तास ज़रीन तांक्या [ टांग्या ] सुहाए
किरन दूर ला बांद[७] दिसता नुन्माए [ नुमाए ]

कुंढ़ाला (कुंडाला) खला ज्यूं रख्या नीर भर
खडे[८] [ घडे ] चांद पूरन सो रूपे के घर

सितारे गनत रह सो मनक्यों के हार
रख्या मोंकले लाए कहकश सो ठार

कि या उस शहर दौर ख़ंदक निशान
रह्या पुलपुला नीर हो आसमान २२५

---

१ हाथ। २ मुख। ३ ने। ४ चोंटी। ५ पांख। ६ मदान। ७ बांध। ८ खरे।

## (११) दर तअ्रीफ़े-अ्राबा व मियाने-हिसार व महल

अ्जब शहर दिसता अराबा निगार
जमीं बाहिया गल[1] पदक कर सिंगार

अराबा मुदव्वर कंगोरे मिला
मकर वो जन्या मोतियों दोर ला

दिसें बुर्ज बिच बिच अ्जब यूं नुमाए
जरे पाच अलमास के ख़ुर्श लाए

वहीं शहर दर्म्यान का कोट जान
दिसे दूसरा दौर मोत्यों मियान

हुवा मद[2] सो नायक महल शाह का
कुंदल [ कुंडल ] तारे हौर[3] कह सो घर माह का

दिसे शहर में कोत (कोट) बिच शाह घर
महल चांद दौलत खला कोत (कोट) कर

उसी महल पर शाह आ्दिल सुहाए
अ्जब चांद पर सूर बैठ्या[4] है आए

दिसे कोट भीतर अराबा मिला
किया चांद पर सूर दुसरा खला

कि या आए दौलत खडी कर लिबास
जरत कोट का पैन गल में सुहास

उसी हांस की छान्ह[5] दुसरा भी जान
अराबा हुवा चौ-गिरद पर निशान

अराबा न वो हत जमीन घेर राक[6]
मबादा कौ इस शहर लावे न चाक[7]

बसे शहर दर्म्यान सब फेस [ भेस ] का
रहे लोक सुक[8] सूं छपन देश का

दिसे शहर हर जिन्स मअ्मूर मान्ह
मगर पिहिश्त [ बिहिश्त ] का अ्क्स परिया है छान्ह

हवा-बख़्श हर ठावूं माध्यों [ माढचों ] उपर
न बाक़ी शहर यूं सो शाहों के घर

भन्या दर्मियान शहर सब ठार ठार
खरी[9] (खडी) है ज्यूं दुनिया सो सज कर सिंगार

---

१ कल। २ मध। ३ हौ। ४ बैठा। ५ छाप। ६ राख। ७ चाख। ८ सुख। ९ खडी।

गले बाह् कंथमाल[1] (कंठमाल) बाज़ार हार
पदक जोर मस्जिद सो दर्म्यान ठार

परे (पडे) बहुत बाज़ार हर एक धिर
झबूत्यां (झमूत्यां) मोत्यों क्या (क्यां) लडां रह ज्यूं भर

रख्या सीस फूल कर महल राजना
जुग तास[2] हुलमुक बचन (बजन) बाजना

वले बच्न बोले सो यो तास तास
करो राजनां राज हर तास[2] मास

जमांनां[3] अजब युवजना पूंगडा[4]
बिद्यापूर नगर रूप हो कर खडा[5]

दिसे तास हुलमुक सूं [ सो ] मिल रूप यूं
गले बांद[6] अशर्फ़ी [ *खडा ] शहर ज्यूं

कि मत देव निस दिन गगन थे[7] दो [ वो ] आए
बिद्यापूर नगर देक[8] कर दिश्ट लाए

सुरिज चांद आंख्यों न देखे पसार
गले अश्रफ़ी तास हो नज़र आड

गगन हात[9] निस दिन पकर थाल तास
बजावे धंदूरा हर एक तास तास

जु कौ मुल्क-आलम में दुखिया भर [ फिर ] आए
बिद्यापूर नगर में रहो सुक[10] सूं आए

न इस शहर में नैन आंझू छरें (झरें)
सो बिन मेग[11] धारां न हौर जकू [ कुच ] परें

न इस शहर में कोई दरदों हुंकार
सो बिन पाई (पावे) शहनाई ना कोइ पुकार

न परता[12] (पडता) शहर में कौ बांध्या नज़र
सो बिन मोतियों हौर फूलो[13] की लड[14]

न इस शहर में कोई रगडे किसे
सो बिन जअफ़रां मुश्क ना कुच[15] दिसे

न इस शहर में कोइ मारे किसे
सो बिन घावु मंडल न दुसरा दिसे

---

१ कंठमाल । २ नास । ३ जमानां । ४ पूगरा । ५ खरा । ६ वांध । ७ थे । ८ देख ।
९ हाथ । १० सुख । ११ मेघ । १२ पडता । १३ फूलों । १४ लर । १५ कुछ ।

सबद तास हर तास कह यूं बजाए
बसो यूं (यो) शहर थीर[1]जुक [ तिरजुग ] ख़ुदाई
दिसे चौ-तरफ़ मिल यूं बाज़ार हार
बिध्या पनहया[2] (पहनिया) ज्यूं हमिलान सिंगार
हर एक जिन्स हर रूप रंगीन दुकान
कि ज्यूं नौ रतन जोत मन दर्मियान
बसे लोग तुज्जार हर तर्फ़ फर (भर)
छबन (छपन) देसी के भागवंत रत्न जड
बैठे जौहरी ढिग ले रत्नों दुकान
न बाक़ी शहर ढिग गले का यूं जान
वही रस्त दिसती है ख़ुशबू दुकान
महक बास बावन शहर दर्मियान
कौ याक़ूत तबल्यां कोई पाच धर
कोई [ कौ ] फ़ीरोज़ लीलम हर एक जिन्स फर (भर)
उन्हा (उहां) थे उडया रज बुके का निशान
भऱ्या गगन तबले में हो दीस जान
दिसे सांज[3] गुजरी शहर रूप यूं
किया नगर सिंगार भर सांज[3] ज्यूं
लगे रस्त चारो यूं दीवे उज्याल
बिद्यापुर नगर पैन्ह गल रत्न माल

दिवे जोत बज मूक[4] [ पचमुक ] जले हार हार
हर एक रस्त बाज़ार हर ठार ठार
हर एक दीप मुक[4] पर धुवां यूं भरे
पिया शहर अंदकार[5] भर मुक छडे (झडे)
युहीं रस्त बाज़ार चारो सिंगार
फिर हर जिनस लोक हर एक ठार

## (१२) दर सिफ़्ते पाए-कूबान कि दर बाज़ार ख़ुद रा आरास्तह हर यक वज़अ् मी-नुमायद

उनन रस्त बिच है बिद्यावंत लोग
कलावंत कलाजान सर्वंग भोग[6]
कहीं गीत जव नाद सूं खंद (खंड) उघाए[7] [ अघाए ]
न सुन कर सके कोई थिन्ह ताब ल्याए

---

१ थिरजुक। २ फनिया। ३ सांझ। ४ मुख। ५ अंधकार। ६ भोक। ७ उखाए।

अगर आए नाचइं न उन सार कोई
सबा इंद्र रह पातरां बुद्द[1] खोई

बिद्या में तो ऐस्यां सपूरन अवतार
कलारूप में रूप अललग्या [अगल्यां] सिंगार

कोई बांद[2] तगती [तगटी] मिरग लोचन्यां
नज़र मार जग जीवु कूं खोंचन्यां

कोई पैन पतुली संदल ऊन्त [ऊंट] कर
कोई खा उजल वीरे मुक खोंत[3] [घोंट] कर

कोई बच्चन हसती झलक दान्त यूं
कंबल [की] कली में झलक पंच [पुंज] ज्यूं

कोई क़द्द डुलती चले डौल यूं
हुसन बाग़ में तो डुले सर्व ज्यूं

कोई टुक चलईं कौ खड्यां अंग कस
ज्यूं ठमका चले भी लटक राजहंस

कोई रत्न किस्वत खड्यां कर सिंगार
कोई बांद मोती छुते [छुटे] गल निगार

कियां यूं तो किस्वत भी ख़ुशबूई लाए
खड्यां ऊंट ले तन हर एक जिन्स आए

छजे खंड पर खंड खन सात सात
हर एक खंड में सद्र हर एक धात

कि या बिहिश्त घर हैं वो हूरां निशान
वले हूर ते उन अधिक रूप जान

न कौ हूर देखी सुनी है तो कान
कि वो रह गगन पर सो यूं [यो] इस जहान

जु टुक नज़र देख्या तो आशिक़ हुवा
रह्या जीव ते जीव अपना गवा

कितिक जोगी जंगम जती सिद्द अपार
रहे खो इशक़ जे सो उनके दुबार

---

१ बुध। २ बांध। ३ घोंट।

हर एक मुल्क के पादशह नामदार
भिखारी हुए खा सौ लाखों हज़ार

यहीं हौर बहुतेकी आशिक़ सो जान
पडे खाए दर्दों सो (सूं) उन नेह-बान

अरत[1] भेद संगित में सब जान है
कला कोक भेदिक सो सप (सब) ग्यान है

इसी जिन्स सब रूप बिद्द्या भऱ्यां
बिद्यापूर नगर में बिद्या रंग खऱ्यां

यूं बाज़ार चारो तरफ़ शहर थार
बिद्या बाग़ में हो चमन तर्फ़ जार (चार) २९०

कलावंत् कलारूप किस्वत सो यूं
सो आ बार बिद्या खरे झार ज्यूं

यूं मअ्मूर बसता शहर थार थार
हर एक धात हर रूप हर एक बाज़ार

निकल शाह् किस्वत सूं कर ज़र-निगार
दिसे उस शहर में सो हो यूं निगार

समुन्द शहर दौलत सुरिज शाह फिर
दिसे छान किरनां सूं हर एक धिर

उसी किर्न हर एक कंवल-दिल खिलें
ख़लक़ जर्म दुक[2] ग्यान जा [*यां]फुलें (भुलें) २९५

## (१३) दर तअ्रीफ़े दर्बारे-हज़रत शाहे-आलमपनाह

सुनों शाह दर्बार का अप[3] (अब) सिंगार
बजंतर बजे हर जिनस थार थार

दिसे रूप दहलीज़ ऊंचा नुमाए
खडे दो गगन ज्यूं अपस सिर मिलाए

वलेकिन गगन देक मुश्ताक़ हो
पठे दो तरफ़ लाज कर ताक़ हो

लगे[4] जेब सोने रूपे के किवार
कि ज्यूं रात दिन मिल खडे है दुवार

खडे हैं अगत कर सो परदार बार
बितां हात[5] रत्नों कुंदन क्या (क्यां) संवार ३००

१ अरथ। २ दुख। ३ अब। ४ तके। ५ हाथ।

खडे पहुत (बहुत) असपत्त गजपत्त रावो
कि नरपत्त कहते न कुच गंत (गन्त) आवो

खडे मस्त झूले तो हस्ती अपार
गगन शाह दहलीज़ तल ज्यूं पहार

कहीं तो कबोलों (कपोलों) जुवें[1] (चुवें) मद भरे
कि ज्यू डोघरों[2] थे चले बहुत झरे

वलेकिन बिद्यापूर शहर-समन्द फर (भर)
गगन शाह दहलीज तल मौज कर

फिरे मस्त माते सो जानों जहाज़
मुअ़ल्लिम महाबत चलावइं ले साज़

खऱ्या मौज रस्तां हैं ऊतों (ऊंटों) क़तार
बजन्तर बजे नाद मौजां पुकार

न रह थीर अचपल हो तेज़ी फिरे
कि ज्यूं मीन अचपल न एक थान थिरें

खरे बहुत तलवे ले ओडन नुमाए
झमक हात सानी[3] [साती] दो मिल सुहाए

कि ज्यूं आए कछवे किनारे खडे
तिरप[4] खाथ मछल्यान उन पर फिरे

लंगे [नंगे] कारी नेजे पकर थरहरें [थरथरें]
दऱ्या लच्च [बीच] में ज्यूं सरप आ फिरें

फऱ्या (भऱ्या) रूप तो शाह दरबार यूं
सुनों महल नौ-रस सिफ़त माह ज्यूं

## (१४) दर तअ़रीफ़े-नौरस महले-हज़रत शाह

सुनों अब सिफ़त शाह महल रहन थावूं
धऱ्या नावुं नौरस महल तिस जो नांवू

वले महल नौरस धऱ्या नावुं यूं
फऱ्या (भऱ्या) रंग नौरस नित उठ रूप ज्यूं

उसी महल पर शाह आ़लम नुमाए
कि ज्यूं चांद पर सूर पिहिया [बैठ्या] है आए

वले महल नौरस हुवा यूं उथान[5] (उठान)
दिसे गगन आगन (आंगन) हो उस का निशान

---

१ चुवें। २ दोघरी। ३ साती। ४ तडप। ५ उठान।

गगन सात सीढ़ी हो मिल जोड कर
न लग महल नौरस के एक खन उपर

वले गग्न आ कर छिपे तिस मंजार
रहे ताक़ बंधिया हो हर थार थार

जरत[1] नौरतन मिल कुंदन ज़र-निगार
सुरिज चांद मिल कर जरे[2] नौ सितार

गगन आरसा कर नौरस महल धर
अपस रूप उस में सो देखे नज़र

सो ज्हां सूर हो [खो] मुक[3] कलस दर्मियान
फिरे ज़ात की छान्ह हो दीस जान

ज़मीं सीस पर थाल ले कोत (कोट) धर
कंगोरे बरन आन मोती सो भर

रख्या जम्क दर्म्यान नौरस महल जान
उजाला पऱ्या[4] दीस हो जोतमान

जल्या रात काजल हो चिनग्या बिखार
दिसें चौ-तरफ़ भर ख़लक़ कूं सितार

वलेकिन गगन देक रश्कों जल्या
अपस कू चुने[5] की फटी [भटी] तन कऱ्या

सुबह आग दम कर सुरिज झाल लाल
लकाका[6] थे कहकश धुवां रात जाल

अंगारा पऱ्या[7] चांद पुज (बुज) राक[8] लग
दिसे रूप उजला हो स्याही सूं जग

कंकर जल हो चुने कल्यां थार थार
बिखर कर पडे हो सो दिसते सितार

गगन आप तन यूं किया साज कूं
अिमारत सो नौरस महल काज कूं

कि या रात दिन के दो मज्दूर धर
नौरस महल का काम बुनयाद कर

लिया गगन का टोकरा दीस सिर
सुरिज ईंट मानिक सो धर चर्ख़ भर

---

१ जडत । २ जडे । ३ मुख । ४ पडचा । ५ जुने । ६ लगाका । ७ पडचा । ८ राख ।

नित उठ दो हुवे सो दरिया मंझार
जुवे (चुवे) नी परगट हो किरना (किरनां) की धार

युहीं रात भी सीस आपन धरे
किलावा (गिलावा) मोत्यों चांद जूना (चूना) करे

कला तोकरा[१] (टोकरा) भर जो सट ल्याय कर
पन्यां उछ्ल छीता हो तारे बिखर

लगे नौरतन महल नौरस जडावो
न जूना (चूना) कंकर बादशाह को यूं लावो

सुन्या था मैं जग में परिस नामदार
पथर रूप लग लोहे कर जर निगार ३३५

वले शाह आलम पडे एक नज़र
पथर ईंट को कर सुरंग लअ्ल ज़र

सो वो रत्न ढिग ज़र दिस्या आशकार
महल रूप नौरस लग्या गग्न ठार

नौरस महल तख़्ती अ्जब ख़ुश नुमाए
फ़िरिश्ते रहे देक[२] कर फूल आए

खवें (कव्हें) देक[२] कर एक एकस सुन [ सूं ] बात
अज़ल रास कर बिहिश्त इस देक[२] धात

जिता रास आ्लम ख़ुदा सब कन्या
न इस महल की जोर[३] नज़रों पन्या ३४०

दिसे महल दर्म्यान अपरूप सिंगार
हर एक खांब हर जिन्स जरतो[४]-निगार

फ़रश बांद[५] रत्नो (रत्नों) कुंदन चौतरे
हर एक नग अमोलिक सो ल्या कर जरे[६]

लिखे नक़्श तस्वीर सूरत नुमाए
हर एक ख़त्त हर जिन्स ज़ेबा सुहाए

मुनक़्क़श अज़ल देक[२] रह भूल कर
सिखे ख़त्त तअ्लीम ला कर नज़र

लिख्या लौह महफ़ूज़ आ्लम शुमार
सो इस महल का एक तख़्ता किनार ३४५

---

१ टोकरा। २ देख। ३ जोड ४ जडती। ५ बांध। ६ जडे।

जो कुज[1] (कुच) रूप आलम लिख्या नक़्श जान
सो इस महल थे देक[2] कर सब निशान

## (१५) दर तअ़रीफ़े-मज्लिसे-हज़रत शाह पनाह

बिछ्या सद्र सब महल यूं संवार
नवा पैन दुनिया ज्यू (ज्यूं) चोला सिंगार
तिवास्यां बिछाए जरत[3] लअ़ल ज़र
मुसन्निफ़ अमोलिक किती मोत्यों जड
दिसे शाह का तख़्त दर्म्यान यूं
सो मुक खोल हस्ती दुन्या ज्वान ज्यूं
करें जोत हीरे रतन पाए चार
दिसें दांत जो की झलक[4] हो निगार

हर एक रत्न बाक़ी दिसे मिल जरावो[5]
कि ज्यूं आए कर खोए बूंद मुक सुहाए
धरे दो तरफ़ ज़ेब गिरदे नुमाए
हर एक जिन्स के नक़्श ज़र रतन लाए
दुन्या ज्वान चोली सो पैन्ही सवार[6]
दिसे दो तरफ़ गिर्द जोबन-निगार
धरे थाल जरते बत्यां मोम जाल
दिसे ज़ेब दो मिल सो परगट उजाल
कि या है वो सोने की हर एक तलावो
कंवल क्या (क्यां) कल्यां हो बत्या मोम भवो

दिसे स्याह पुरज़े बुझे बिच नुमाए
ज्यूं हर यक कली पर रहे फंवर (भंवर) आए
रखे झार[7] जरते हर एक थार थार
सक्यां ज्यूं दुन्या क्यां खन्यां कर सिंगार
उडें पवन लग हर एक झाड[8] डाल[8]
सख्या[9] हात जडते उरावें[10] रुमाल
दिसे शाह हौर तख़्त मिल यूं नुमाए
दुन्यां सीस पर रक जरत फूल आए
कुंदन शाह का रंग हो ज़ात भर
हर एक ठावों पर रत्न मिल जोत धर

---

१ कुछ। २ देख। ३ जडत। ४ छलक। ५ जडावो। ६ संवार। ७ झाड। ८ दोनों प्रतियों में ाल झाड' कम है। ९ सक्यां। १० उडावें।

लगे पाच शह ख़त्त जेबा सुहाए
जुगें लाल रुख़सारे मानिक दो आए

सो हैं आंक[1] दीदे सफ़ेदी मिलाए
जरी जोत मोती में लीलम नुमाए

दिसे नाक वैडूर सुतर दर्मियान
रहे मुक[2] उपर ख़ोए हीन्यों की खान

कौ ले रूप शह बोत (बोट) दीसे हैं साच (साज)
झलक नक्क उपर हो सो मिल पूकराज[3]

कहीं लाल मिहंदी नखो पर धरे
दिसे ज्यूं सो कोमेद [ गोमेद ] मानिक जरे

वलेकिन हर एक रत्न यूं जोत जान
छप्यां सहस किरना सुरिज आसमान

किया महल नौरस गगन तख़्त सूर
जरत नौ रतन जो किरनां सो [ सूं ] पूर

वले शह सदर बाग़ दौलत निशान
पैथे (बैठे) मज्लिसी भूल (फूल) हर यक तु जान

कोई लअल किस्वत कोई पीली कर
कोई सूरमाई मावे कौ पैंजानी भर

कोई जअफ़रानी बनफ़्शह उजल
कोई[4] रंग हऱ्या कोई तगती सो मिल

कदम[5] बास बावन हर एक तन लगावो
. . . . . . . . . . . . . . . . . . . .

सो महकार ख़ुशबू छिधे आसमान
सरग लोक सुन्कर ] सुंग कर ] हुए सब हैरान

फ़िरिश्ते हुए मस्त उस बास थें
रहे बे-ख़बर हो सो हुल्लास थे

कहें कौन कर शाह दुनिया जमीन [ में ] राज
कि जिस दौर मज्लिस महक बास आच (आज)

जब्ध्या [ जध्या ] थें ख़ुदा ने हमन कूं निपावो
न यो बास ख़ुशबू कधीं यूं दिखावो

१ आंख। २ मुख। ३ पुखराज। ४ यह शब्द अप्राप्त। ५ यह पाद भी स प्रतिमें अप्राप्त।

दुआ कर वो सब मांग यूं हत[1] पसार
तूं इस शाह का दौर राखें क़रार

जौ लग थीर राखिइ ज़मीन आसमान
ख़ुदा या तौ लग रक[2] तूं उस शह निशान

पैथे[3] [ बैठे ] मज्लिसी लोक हर एक फ़न
खिले फूल हर जिन्स दौलत चमन

यकस एक थें ख़ूब बिद्यावंत निगार
हर एक बात बूझक सो नौ नौ हज़ार

नज़र-शाह फिर फंवर (भंवर) हर फूल पर
बचन-बास रस ले कल्यों मुक[4] उपर

कि या हो मदन-रूप शाहे-ज़मान
जरत नौ-रतन तख़्त पर यूं नुमान

किए ढिग[3] [ ढीग ] आलम के सब रत्न ल्याए
पथ्या (बैठ्या) रूप धर ज्यूं मदन राव आए

वलेकिन मदन रूप हौर शाह यूं
सुरिज जोत तल आ छपे चांद ज्यूं

मदनरूप का लोग करते बखान
वले वो सो बिन अंग ना कुच निशान

सो शह रूप परगत[5] हर एक अंग धर
अमोलिक रतन जोत हर अंग भर

अगर सुरिज मिल कर उठे एक हज़ार
सो शह-रूप मिल दीप रह ज्यूं सितार

## (१६) दर तअ़रीफ़े-शबे-हुस्ने मज्लिसे-शाह आ़लम-पनाह
## दीदा आ़शिक़ शुदह ख़ुद रा बालाए-फ़लक अन्दाख़्तह

सो यूं झांक शह-रूप तुक[6] (टुक) रात आए
गगन के छज्जे थे परी[7] खिरी [ घेरी ] आए

परे फूल सिर थें बिखर थार थार
उजल रूप हो कर सो दिसते सितार

चुवे बूंद लोहू जो आंख्यों थें धल [ ढल ]
वही जोत दीवे हो घर घर सो जल

अ़िशक़-शाह बल रात हो स्याह रंग
दिसे रूप परगट सो मुक[8] चांद धक [ ढग ]

१ हथ। २ रख। ३ बैठे। ४ मुख। ५ परगट। ६ टुक। ७ पडी। ८ मुख।

कि या सुर शह क्यां हो किरनां निशान
जले[1] रूप दिवत्यां [ दिवट्यां ] हो दिसत्यां अयान

दिसे रात दिवत्यां [ दिवट्यां ] सूं मिल जेंब यूं
सटे लअ़ल बिखरा मुशक रास ज्यूं

सुहावन दिसे सांज[2] दिवत्यां [ दिवट्यां ] सो आए
ज़मीन रूप फर (भर) कर गगन ज्यूं दिखाए

धुवर रंग हो सब ज़मीन गग्न सार
बिखर रात दिवत्यां (दिवट्यां) लगे ज्यूं सितार

धरी शमअ़ मज्लिस सो हर थार थार
महल चांद आगन[3] (आंगन) सितार्‍यों के झार[4]

कि या नाग सब सीस मन ले सो आवो
सते [ सटे ] रात के आंग पर वो जरावो

उसी जर्त दर्म्यान शह यूं सुहाए
कि ज्यूं लअ़ल पहुतो (बहुतों) में हीरा दिखाए

इसी जिन्स तो रात मज्लिस में आए
रहे भूल कर देक[5] सुद[6] बुद[7] गवाए

कयते शाह मज्लिस सो [ सूं ] यूं [ यो ] अ़ैश रात
सुनो अब कहूं खोल कर दीस धात

## (१७) दर तअ़रीफ़ कि शबे-गुज़श्त व रोज़ ख़ुद रा आरास्तह कर्दह ब-मज्लिस शाह आमद

उडी रात-कोयल गगन-बन उपर
निकल दीस का बार [ बाज़ ] सज सुबह पर

पकर सुरिज चंगुल सूं नक-किरन रात
दिस्या लाल लोहू शफ़क़ गग्न धात

डबी-रात में थे निकल दिन कपूर
दबा (डिबा) सुरिज दिसता है कापूर-नूर

दिया रूम [ रूप ] शह ने सो दहलीज़ लाल
सुरिज रूप किरना तनाबां जो घाल

सो यूं रात जा हो सुबह आशकार
शहनशह किया हुक्म खेलन शिकार

१ चले। २ सांझ। ३ आंगन। ४ झाड। ५ देख। ६ यह अप्राप्त है। ७ बुध।

## (१८) दर तअ़रीफ़े-रफ़्तने-शिकार व ग़ल्ग़लए-कूसे-दौलते-शाहे-आ़लमपनाह व हैबते-आवाज़े-लश्कर

हुवा शाह फ़र्मान हर एक उपर
करो धाव लकन्यां दमाम्यों उपर

हुकुम शाह सुनते जो गर्जे निशान
पड्या नाद लर्ज़ा ज़मीन आसमान
अवल तीन लकन्यां निशानो जूं[1] (जों) घाल
दरें[2] (डरें) तीन तिर्लोक सुन बे-हवाल
दमाम्यों, सबद-नाद बर्मंद (बर्मंड) भर
चन्ह्या[3] नाद धमका गगन के उपर
उसी डर सूं सीना तरख़ आसमान
कलेजा दिस्या लाल बिजली हो जान
पुकारे सो दर्दों करे तडफरात[4] (तडफडाट)
दमाम्यों सबद-नाद सीना जो फाट

ज़मीन जान यो भुईं अवल थी अखंड[5]
उसी दर (डर) तरख़ हो सो नौ-खंद[6] (खंड) खंद[6] (खंड)
हुए हैबतों लोहू पानी झन्या
हर एक तर्फ़ भर कर दिसे सो दन्या
कि या है ज़मीन थाल ज्यूं सब तु जान
रख्या नीर भर कर दन्या दर्मियान
दमामें धमक नाद सूं थरथरे
हले नीर दरिया हो मौजां फिरे
समुन्द जीब[7]-मौजों करे यूं पुकार
दमाम्यों सबद शह हलूं ना-क़रार

कि या सुन दमाम्यों ज़मीन बे-ख़बर
परी सीस फिर कर सो दरिया उपर
पलू रात खिस जा ज़मीन बुद्द[8] बिसार
खुले रूप जोबन दिसे जग पहार
बिखर बाल तन झार हर एक धर
खडे रोंघटे घास सब आंग भर
बहें धार आंझू लरां थार थार
दिसें नैन चश्में वो कैं[9] ( × ) लागे किनार
देख्या यूं गगन पर ज़मीन बे-क़रार
खडे भर सो बादल छिडक मेग[10] धार

---

१ जो। २ डरे। ३ चढ्या। ४ तडफडात। ५ अखंड। ६ खंड। ७ जीभ। ८ बुध
९ अनावश्यक है। १० मेघ.

दिसा अट सख्या मिल ले (ये) देखें खन्यां[1]
पवन रूप पंखें सूं बारा कन्यां

युहीं शाह लश्कर दमाम्यों अवाज़
हुवा बे-ख़बर सुन ज़मीन का जो साज़

सुन आवाज़ बासुक दमाम्यों पताल
छपा कान आंख्यों में कुंडल जो घाल

दमाम्यों धमक सुन न रहिसी संभाल
भिजा सीस पानी हो तरख़े (तरख़ई) कपाल

छप्या जा अपस तन ज़मीन ओड कर
दमाम्यों सबद शाह ना कान पर ४२५

हुवा शाह बाजा यूं खेलन शिकार
डऱ्या लोक तिर्लोक यूं थार थार

मिल्या शाह-लश्कर भी सुन यूं ख़बर
हर एक धात फ़ौजां हर एक रूप धर

## (१९) दर तअ़रीफ़े-फ़ीलाने-हज़रत शाहे-आ़लमपनाह ख़ुल्देल्लाह मुल्कहू

अवल फ़ौज मिल शाह मदकल अपार
हुवा रूप आ़लम उन्हन थें अंध्यार

उठ्यां हो सो ज़ुल्मात मौजां तुफ़ान
डुबाया पकर दीस का नूर जान

डऱ्या [दऱ्या] नीर पी कर तो सूखा करें
वो सूखी ज़मीन फिर समुन्द ज्यूं भरें ४३०

अगर लोग बोलें सवा लक्क[2] पहार
सो शह-मदकलों के हैं छावे सुमार[3]

दिस रंग सेंदूर कपालों जो लाल
ज्यूं अंदकार[4] लाग्या शफ़क़ के दुमाल

पकर सूंड मुक जब करे गडगडाट[5]
गगन हौर ज़मीन मिल पडे खलबलाट

दिसें रूप काले उजल दंत यूं
उठे कोंम अंदकार[6] थें नूर ज्यूं

कि या हंस तोल्यों [टोल्यों] के आ कर जो हार
रहे आ सवा लाक पर्बत मझार ४३५

---

१ खड्यां। २ लख। ३ शुमार। ४ अंधकार। ५ कडकडाट। ६ अंधकार।

कि या जग्त छाया [(है*] काला अभाल
रहे बागुल्यां की हो दर्म्यान माल

कि या रात में सुबह् मेखां जड्यां
सो उन दांतों के रूप हो कर खड्यां

जरत नग जो दांतों रतन जगमगें
कि ज्यूं सुबह् मेखों सुरिज गत जरें

सुहें रेशमीं नाडे पंच रंग संवार[1]
सरग में कमानां ज्यूं बादल निगार

कोई तलपटी जोर झरते खड़े
कि ज्यूं डोंघरो थें चले बहुत झरे

कोई पावुं लंगर ज़ंज़ीऱ्यां चरे (चडे)
पलेटे ज्यूं दो सांप डोघर परे

कोई फ़ील सरकों[2] सुं दिसते निगार
ज्यूं लीलम डोंघर-सांप कंचल्या उतार

कोई पावु तोडड[3] (तोडर) दिसे तोल यूं
ज़मीं हात[4] गंगन[5] (कंगन) रतन डोल ज्यूं

कोई पीठ ज़रबाफ़ ग़ाशे संवार
दिसे रूप हस्ती ज्यूं सोने-पहार[6]

कोई जल हृ्या ढालों दिसते निगार
कि ज्यूं डोघरों पर खडे दाट झार

कोई लाल ढालां सो मदकल अपार
कि ज्यूं डोंघरों आग झडियां शुमार

कोई मावे ढाल बैठते (*हो) निशान
कि ज्यूं पर्बतों लग पलू-आसमान

धरें स्वार आंकुस दिसे हस्त यूं
सुरिज डोघरों धर नवे चांद ज्यूं

मिल्यां हर जिनस रंग डालां संवार
फुले हर जिनस डोघरों ज्यूं जहार

मिले शाह् [ शह ] इब्राहीम [ बिराहीम ] आदिल [ अ़दिल ] हस्त यूं
सुनों अब तो रंग रूप अचपल हैं ज्यूं

---

१ सवार। २ सडकों। ३ तोडर। ४ हाथ। ५ कंगन। ६ पहाड।

## (२०) दर तअ़रीफ़े-अस्पाने-हज़रत शाह आ़लमपनाह ख़ुल्दे अल्लाह मुल्कहू इब्दा

सुनों अब सिफ़त शाह अचपल तुरंग
खडे साज अभरन सूं हर रंग रंग

कहीं बोर कुम्मेत कडडे[१] कुरंग
कहीं जाल नुक़रे जो ज़र्दी सुरंग

कहीं हांसिली और अबलक़ निगार
कहीं मतकसी पंच कल्यान सार

कहीं जोर दीनारी संदल कबूत
कहीं रंग सारंग मुश्की सो जोत

कहीं यग़ज़ [नग़ज़] हौर समुन्द अपरूप संवार
लिखे चित्र जानो सो एक एक निगार

मिले ज़ात लासाई अ़ारब निशान
अ़िराक़ी बदख़्शानी कच्छी सो जान

मिरग लोचने कानकतरे ज्यूं पान
कटोरे में पीते सो मुक[२] पानी आन

अगर दौड जावें सो दर्या[३] पेल्हार
न तुक[४] (टुक) पावुं लागे सो पानी मंझार

पवन रूप है कर सुन्या कौन कान
सो शह तेज़ो देखे जगत् सब निशान

वले पवन सूं वो चले होड ले
रहे पवन पीछें वही अग्गले

तुक[४] (टुक) एक खींच पकडे सो एक पग उचाए
न उन गत सिख्या कोई नटवा नचाए

उडें छाल एक लग्त कंकर हज़ार
न देखें अक़्ल में सो आवे बिचार

जहां स्वार का जीवु तहां वो लिजाएं
न कुच[५] आग पानी सूं देक[६] कर डारएं (डर आएं)

अगर पवन थे फू [ल[७]] एक रज उडे
अनाचित सो उन आंग पर जा लगे

तपिन्द हो रहें नाज़ में बर-क़रार
उडें[८] छाल खा जा समुंद के पेल्हार

१ करडे। २ मुख। ३ दर। ४ टुक। ५ कुछ। ६ देख। ७ फूल। ८ उडें।

चमत् रूप दौडें सो ऐसी शिताब
 नज़र[१] जोर कर ना सके तिन रिकाब
उडें तीर बाज़ू नित उनन[२] बांद पर
 उनन चाल चलने सो तअ़लीम कर
सुन्या था खटोला जो मनजीत नावूं
 सिख्या ढंग उनन तेज़ यूं देक धावूं
कोई ज़ीन ज़र्रीन जरत[३] के लगाम
 कोई खंड है क़लाडे मुरस्सा लगाम
कोई ग़ाशे मख़्मल नक़्श ज़र निगार
 कोई रत्न मोत्यों मुरस्सा संवार

मिले शाह तेज़ी सो सब यूं संवार
 हर एक शाह का एक जीवन अधार[४]

## (२१) दर तअ़रीफ़े-सिलह्‌दाराने-हज़रत शाह आ़लम पनाह ख़ुल्दे अल्लाह मुल्कहू

सुनों अब सिफ़त शाह के सिलह्‌दार
 हर एक मुल्क के शाहज़ादे हो स्वार

. . . . . . . . . . . . . . . . . . . . . .
 चले[५] बाव ले शाह मज्लिस सिंगार
उडी बाव जा कर सो झारों मिली
 हर एक झार कर बात खोल मुक[६] कली
अपस आप में झार यूं बात कर
 डुला हात[७] डाल्ह्यां कुं पान जीब[८] धर

जध्यां थे ख़ुदा ने हसन कूं निपावू
 न यूं बास ख़ुशबू कधीं ल्यावु बावू
बूझें (पुछें) बाव धर कर हर एक डाल[९] झार
 कधीं बास ख़ुशबू न यूं क्या विचार
सुनों झार कह बाव मेरी जो बात
 जो कुच नज़र देखे कहूं वो सो धात
दखिन देस में शाह एक राज कर
 न ऐसा सुन्या कौ मैं देख्या नज़र
वही झार दुनिया में है बारदार
 बहुत बाग़ दौलत छिपे[१०] उस मंजार

१ स प्रतिमें यह बैत का प्रथम पाद है। २ उठ। ३ जडत। ४ आधार। ५ यह दूसरा पाद भी स में नही है। ६ मुख। ७ हाथ। ८ जीभ। ९ ... १० छिने।

वलेकिन गगन हौर ज़मीन दर्मियान
उठ्या रूप हो शाह आ़लम निशान

ज़मीन टोकरा सिर बिद्यापुर जो धर
भन्या रत्न आला नौरस महल ज़र

अ़दल डोल कर सट ले इन्साफ़ नीर
सख़ावत लगा कालवा नित सरीर

निकल राज[१] का कोंम परगट हो ढाक
दिसा आठ डाल्ह्या[२] हो कीरत की हांक

हो गुन पान अनगंत ना गंत कर
करम छान्ह आ़लम के सिर पर हो[३] भर

अक़ल फूल लग तिस फ़हम फल अपार
भन्या रस है दानाई हर एक थार

रहे भूल जनावर हर एक तर्फ़ आए
सो हो रूप लश्कर न कुच[४] अन्त पाए

रहे सीमुरग़ हो ज्युं हस्ती मतंग
दिसें ढीग हो ऊंट गर्दन उतंग

रहे रूप ख़र चाल घोड़े अपार
फिरें लश्करी बाज़ बहरी किनार

रहे लुब्द दर्वेश उस छान्ह यूं
करें ज़िक्र क़ुमरी मू शीशे सो (सूं) ज्यूं

बैठे मज्लिसी लोग आ़लिम सो यूं
भन्यां रूप नून्यां हो रावें सो ज्यूं

जनावर यूं सब मिल सो उस छान्ह चरें
हर एक मुल्क अउर आ लुबद कर फिरें[५]

ऐसा झार शाहों में देख्या न जग
सो उस झार-मज्लिस की मुज[६] बास लग

कह्या बाव ने यूं किसा शाह आन
सुनें झार पर्बत दो ला कर सो कान

कहें झार सुन बावु दे बुद्द[७] बिचार
सो उस शाह का जाए देखे जो थार

१ यह शब्द अप्राप्त। २ डाल्या। ३ सो। ४ कुछ। ५ भरें। ६ मुझ। ७ बुंद्ध।

कहे बावु झारों[1] सुं मैं क्या करूं
गई देक[2] सुदबुद[3] हो बावल फिरूं

जध्यां थें देखी शाह मज्लिस निगार
तध्यां थें फिरूं में न कुच[4] तन क़रार

(२२) दर तअ़रीफ़ व आशुफ़्ता शुदने-दरख़्ताने-सहरा
अज़ शुनीदने-ख़बरे-मज्लिसे-बाग़ व शाहे-जहां-पनाह

सिफ़त शाह सुन झारों[5] हो इश्तियाक़
सो शह देखने का लग्या तन फ़िराक़

किए पान कपडे सो एक एक धरे
पडें फूल आख्यों[6] सूं रस बूंद झरे

हुए बे-ख़बर तन न रह कुच[4] संभाल
खरे[7] कांपते हतपावु मिल पेड़ डाल

रहे जीब[8] हर एक दांतों में धर
नव्यां कोपल्यां हो सो परत्यां[9] नज़र

सुन्या यूं ख़बर झारूं बनपत्त रावू
खडें हैं दिवाने हो बे-ख़ब्र भावू

न कुच आंग पर पान कपडे संभाल
खडे कांपते हातपावुं डाल डाल

बसंतरावु सुन यूं तबीबों बुलाए
भंवर नावु उन का हर एक तर्फ़ आए

कह्या जाए देखो[10] सो झाडों की नाड
कहो आए कर मुज दरद उन बिचार

उडे भंवर यूं सुन न भिर (फिर) बात कर
चले देखते झाड हर एक धर

फिरें देखते भंवर हर एक झार
रहे सूक[11] मुक[12] फूल सब थार थार

पकड हात डाल्ह्यों देखें भंवर नाड
रगां पान अंगूल्यां दरद का बिचार

सो देक भंव्र यूं हाल झारों कहै
तुम्हन दर्द तो कुच अ़िशक़ का अहै

न उस दर्द पर हौर दारू बिचार
कि जिस देकने चट[13] लगे उस दिदार

१ झारो। २ देख। ३ सुधबुध। ४ कुछ। ५ झाडों। ६ आंख्यों। ७ खडे। ८ जीभ। ९ पडल्यां। १० देख। ११ सूख। १२ मुख। १३ चत।

जौ लग तुम न देखो[१] सो शह का दिदार
तौ लग झार तन तो न होए क़रार
हर एक झार का दर्द यूं देक फिर
तबीबों भंवर आए कह रावु धिर
दखिन देस में शाह है ना [ म* ] दार[२]
सो उस देखने लग रहे सूक झार
न बाक़ी दरद हौर कुच है विचार
मुए झार जीवें तो देखें[३] दिदार
वसंतरावु सुन यूं भंवर बात कान
रह्या हो अजब कुच न आवे बखान

कैसा[४] शह सुलक्खन जो दक्खिन धरन
कि जिस रूप पर भूल सुन झाड बन

## (२३) दर तअ़रीफ़े-हंगामे-बहार कि आवाज़े-अैशे-शाह शुनीद दरख़्तान् रा आरास्तह कर्दह रवाँ[५] शुद[५]

बुलाया अपस का जो हिकमत वज़ीर
कह्‌वें नावुं उस का जो[६] हंगाम-सीर
कह्या रावु परधान क्या अब बिचार
रह्या सूक लश्कर हमारा सो झार
हुवा सब विलायत हमन बन ख़राब
तुं इस बात का बेग दे मुज जवाब
कह्या रूत[७] परधान सुन शाह बंसत
कहूं बात लश्कर जिवाने की भन्त

बुलावो[७] कोयल के सो सब भालदार
ख़बर देव हर मुल्क बन थार थार
नन्हा हौर[८] बडा है जो कुच रोप झाड
हर एक फूल किस्वत करो सब सिंगार
दखिन[९] देस में शह जगत-गुरु है नावूं
बिध्यापुर नगर उस रहन है जो ठावूं[१०]
सो उस शाह देखन[११] बसंतरावु चल
हर एक ज़ात के झार आवो सो मिल
ख़बर शाह सुन झार हर एक डाल
ख़ुशां हो उठे कोई पीले कौं[१२] लाल

---

१ देख। २ नामदार। ३ देख है। ४ किया। ५ यह दोनों शब्द अप्राप्त। ६ यह अप्राप्त। ७ स प्रतिम क्रमांक ५२०, ५२१ के दोनों बैत अप्राप्त है। ८ और। ९ दकन। १० थावूं। ११ देखें। १२ कोई।

चले मुल्क बन थे खुबर सुन यूं झार
बजंतर बजे बावु सब थार थार

बसंतरावु-लश्कर मिल्या आए कर
हर एक जिन्स के झार हर रूप धर

निशानां पकर फूल हर एक डाल
हर एक रंग[1] हर जिन्स लाए सो ढाल

हर[2] एक[2] झाड डाल्ह्यां[3] सो [ सूं ] मिल यूं संवार
ज्यूं सरदार लश्कर हर एक थार थार

दिसे आंब के झाड ज्यूं हस्त चल
सो ला फूल सरकां हर एक तर्फ़ हल[3]

लगे फल नन्ही रूप कैन्यां सो [ सूं ] यूं
घुंघरमाल[4] बांधें दिसे रस्त [ हस्त* ] ज्यूं

पटी बूंद रस फूल चू चू पडें
महावत भंवर स्वार हो कर फिरें

गुडी-कार आंधें चले मिल निगार
दिसें रूप हो कर सो ज्यूं ताड़[5] झाड़[5]

चले साज सूं रूप ऊंटों क़तार
दिसें आए मिल चौड़ [ जोड़ ] कर झार-मार

चले भार घोड्यों हर एक जिन्स झार
हुए स्वार रावुत लगे फल जो बार

सिरों नालिएर झार छतऱ्यां धरे
लगे नालियर घड[6] ज्यूं फुंदने पडे

फनस झार हो आडे भूई सो ज्ञान
पकड फल फनस हर तर्फ़ कूज़-दान

उडावें महलदार हो कर रुमाल
दिसें झाड केले पवन पान हाल

उडें रूप परचम हो दिसे (दिसते) निगार
डुलें बावु लग मिल खजूरों के झाड

खड़े जोड़ तलवे सो अंबल्यां के झाड़
बिरद डाप [ डाब ] आंकूस फलां के निगार

१ स में अप्राप्त। २ स में दोनों शब्द अप्राप्त। ३ डाल्यां। ४ गुंघरमाल। ५ तार झार। ६ खड।

लंगे-कारी हो कर सरू मिल चले
पवन लागते डाल नेज़े हले
चले पाइ-दल हर तरफ़ यूं सो जान
उडे पवन लग झर परें फिर जो पान
नले झार आतश धरे फुई (भुई) संवार
झडें फूल बारे सो (सूं) लग कर अनार
गए[१] दाक[२] मंढवे अगन (अंगन) बेल भर
दिसे पान छालां हो फल फूल झर
हर एक झार तल छान्ह सूरिज निशान
धरे रात बन में चंदर जोत जान

चल्या साज कर यूं सो बनपत्तरावू[३]
मिल्या झाड-लश्कर हर एक जिन्स आवू

## (२४) दर तअ़रीफ़े-बहार बा-तजम्मुले-ख़ुद ब-पाए-बोसीए-शाहे-आ़लमपनाह आमद व ख़ुद रा सर अफ़राज़ साख़्तह अज़ तश्रीफ़े-ख़िलअ़त मुशर्रफ़ शुद

जहां शाहे-आ़लम बैठे थे हवा
हर एक झार बन रूप लाग्या नवा
बसन्तरावु उस थान उतर आए कर
मिल्या शाह सूं धाए कर पाय पर[४]
लिए बास बावन फुलों हात[५] धर
हर एक झाड सिर भुईं[६] धरे आए कर
बसंतरावु मिल शाह लाया किनार
खडा सात लश्कर हर एक रूप झाड

बसंतरावु को शाह फ़र्मान हो
हमन ठावुं लश्कर सूं मिहमान हो
बिछायां कन्दुऱ्या चमन आन कर
हर एक तर्फ़ मख़मल भी ज़रबाफ़ भर
धरे रत्न अअ़ले[७] सो ज्यूं थाल कर
हर एक तर्फ़ ख़ुशबूई पानी सो फर (भर)
हुए चाशनीगीर माली सुजान
फडें (भरें) ल्याए थालों में पानी सुखान
खिला खान हर एक यूं रस्त धर
हर एक झाड ख़ुश हो अथी[८] (उठे) पेट[९] भर

१ कई, की। २ दाख। ३ बनबत रावू। ४ पड। ५ हाथ। ६ फुईं। ७ आई। ८ अथी। ९ पेत।

दिए आन तश्रीफ़ हर एक झाड
कुमाशां मधे [ मढे ] डाल हर एक[1] थाड
हर एक झाड गल में रतन बाह हार
दिसें हर जिनस हो सो फूलों निगार
हर एक डाल हाथों पटचां पान धर
खड़े झाड़ हो बाग़ मज्लिस में भर
रखे दर्मियान कांसे ख़ुशबू संवार
भरे हौज़ ख़ाने कदम थार थार
दिसें झाड-डाल्यां सूं पर छान्ह यूं
सती [ सटे ] हर तरफ़ हात कास्यां में ज्यूं

डुले बावु लग यूं दिसे दर्मियान
हर एक झाड हाथों ले ख़ुशबूई तान
वले हौज़ख़ाने गगन छान्ह पर
हर एक तर्फ़ मिल कर सुरिज रूप धर
दिसें रूप आंख्यां ज़मीन जान यूं
सफ़ेदी गगन सुरिज दीदे हैं ज्यूं
हर एक जिन्स के रंग ख़ुशबू भरे
डुले मौज दर्म्यां ज्युं दीदे फिरे
पलक बाल हो झाड दो रस्त मिल
दिसें बावु लगते सो ज्यूं पलक हिल

यूं हर एक जिनस झाड लश्कर मिलाए
किए शाह मिहमानी बनबत्त (बनपत्त) राए

(२५) दर तश्रीफ़े-आन कि मश्विरत कर्दह शाह बा-बहार
कि अज़ यक तरफ़ मन आरास्तह अहले-ख़ुद रा
दर यक तरफ़ तू बा-जमए-दरख़्ताने-आरास्तह

कह्या शाह सुन रावु बनबत्त[2] (बनपत्त) यूं
दोन्हों मिल करें आ बसंत खेल ज्यूं
यकस तर्फ़ हो रावु मिल कर तू झाड
दुजे तर्फ़ मैं हो ले रान्यां सिंगार
कह्या रावु बनपत्त जो कुच शह रज़ाई
वही हुक्म मैं लेवुं माथे चढाई
उधर मिल बसन्तरावु झाडों संवार
इधर शाह मिल सात रान्यां निगार

१ इक । २ बनपत ।

वलेकिन वो रान्यां दिसे रूप झाड[1]
हर एक जिन्स हर तर्फ़ अबरूप[2] (अपरूप) निगार
दिसें रूपवंत हो सूरूप भर
किया रूप उन देक रह फूल कर
कियां[3] साज-सिंगार हर एक ठाड[4] (ठार)
गया पैन सिंगार उन तन संवार
पैन्ह्यां सब ज़राईन हर एक धात भर
किया पैन अभरन उनन आंग ज़र
ऐस्यां सुंदऱ्यां सब मिल्यां एक ठार
किया रूप बन में हर एक रंग झाड़ ५७५

कुंदन झाड़ हो फल रतन लग जरावू[5]
हर एक जिन्स अभरन नवे पान लावू
कि या पान उंगल्यां कुंदन डाल मिल
अंगूठ्यां रतन फूल हर पान खिल
सो मिल रूप ताइत बाज़ूबंद यूं
सुने झार डाल्ह्यां कल्यां छंद ज्यूं
जनावर रहे फूल (भूल) हर एक ठार
हर एक जिन्स हर रंग हर एक झाड
रहे मोर जोरे हो आ सीस पर
फिरे सुर्ख़ आंख्यां बरन आए कर ५८०

रहे रूप रावे हो मिल नाक आए
रह्यां कोयलां हो सबद[6] पर नुमाए
फिरे भंव्र आ कर सो मुक फूल पर
पडे बाल काले हो हर एक धिर
दिसे ज़ेब गर्दन सो यूं लागती
रही फूल (भूल) कर आई ज्यूं फ़ाख़्ती
हो सुर्ख आब[7] [ सुर्ख़ाब ] जोडा रहे बेट[8] थान
दिसें रूप जोबन हो दोन्हों[9] निशान
फिकूरती रहे हो क़ुमर आए कर
रहे जाल (चाल) पर हंस कंवल पाए धर ५८५
हर एक रंग किस्वत यूं नाऱ्यां संवार
दिसे रूप पिंजरे ज्यूं नूऱ्यां निगार

---

१ छाड। २ अपरूप। ३ किया। ४ ठार। ५ जडावू। ६ शबद। ७ सुरख़ाब। ८ बैठ। ९ दोनों।

मदनरूप बिच शाह खेलन बसंत
      हर एक सात नाऱ्यां ले फिरते एकन्त
महक बास बावन हर एक तर्फ़ फर (भर)
      सरग लोक मिरत लोक पाताल धर
कि यूं शाह खेलें सो निसदिन बसन्त
      करे रोज़ नौरोज़ हर एक फंत (भंत)

## (२६) दर तअ़रीफ़े-आन कि शाहे-आ़लम-पनाह ब-इत्तिफ़ाक़े-बहार अ़ैश कर्दह सालगिरहे ख़ुद रा आगाज़-नमूदन कारे-मेज़वानी शुरूअ़ कर्दन्द

सो यूं खेल कर शाह नौरोज़ आ
      बरसगांट कर मेज़वानी गना [ कना ]

कहूं मेजवानी बरसगांट शाह
      जो हर बर्स कर मेजवानी नौ माह
न ऐसा सुन्या शह कौ देख्या किधर
      जो हर बर्स नौ माह आनद[1] (आनन्द) कर
हुवा शाह फ़र्मान आ़लम उपर
      हर एक मुल्क[2] हर दीप हर शहर घर
विद्यावंत जिता लोक आ़लम मंझार
      मिलो आए कर बारगह शह तल्हार
संवारे महल रूप हर एक ठार
      दिए आन मंडप हर एक जिह तल्हार

महल ऊंच मंडप सूं मिल ज़ेब यूं
      बदल गग्न के तल रहे छाए ज्यूं
वले ऊंच मंडप दिसे यूं सो जान
      मुहाफ़े हो लडकें गगन दर्मियान
पत्यां (बत्यां) मोम क्यां यूं रह्यां रूप मिल
      सुरिज चांद हर एक गगन जोत खिल
बिछाए ज़मीं भर पुका [ बुका ] मुश्क आन
      सो उस गर्द का रातदिन हो निशान
सो उन मंडपों तल जो आए संवार
      बिद्यावंत यकस एक थें ख़ुब निगार

१ आनन्द। २ मुल।

छपन देस के सब गुनी[1] लोक आए
सो शह बार बाजे अनद[2] (अनन्द) के बजाए

दमामे तबल जोर ऊंचे सुहावू
कि ज्यूं नाद भर कर गगन जग सुनावू

दमामे दिसें चौड़ हर तर्फ़ यूं
फिरा कर धरे है ज़मीन गग्न ज्यूं

हर एक रंग लकड्यां दमाम्यों उपर
धनुक इन्द्र छा कर रहे गग्न धर

कि यूं शाह-दरबार बाजे अनन्द
खडे चौड [ जोड ] गायन हर एक छंद छंद ६०५

कहीं मिल जो क़व्वाल ढाड़ी सो आए
नौरस बुद्ध परकास गावें उखाए (अघाए)

कहीं मीरज़ाद्यां जो दफ़-ज़न पल्हा
नौरस शाह आनद (आनन्द) सबद सोहला

कहीं पातरां आ खड़्यां थार थार
हर एक जिन्स हर रूप आयां संवार

हर एक मुल्क क्यां हर वज़अ् साज कर
हर एक धात हर एक जिनस बाज कर

## (२७) दर तअ्रीफ़ कि बराए मेज़वानी[3] जमअ्-शुदह अन्द पाए-कूबान हर यक वज़अ्

कोई[4] बालों दर्म्यान यूं मांग चीर
दिसें ज्यू कसोटी में सोने की कीर [ चीर ] ६१०

कि या तार-ज़र ज्यूं सुहावन दिखाए
पड्या स्याह रेशम कि दर्म्यान आए

## (२८) दर[5] तअ्रीफ़े-जूडा

कोई बांद[5] जूडा दिसे यूं नुमाए
सुने के सरू पर बैठा (बैठ्या) मोर आए

कि या बैस कोयल जो शमशाद पर
पकर फूल गुल लअ्ल मुक चोंच कर

---

१ कोई। २ अनन्द। ३ मेजवानी। ४ बैत क्रमांक ६११ पर है। ५ यह शीर्षक स प्रतिमें अप्राप्त है।

## (२९) दर तअ्रीफ़े-काकुले-मूए

कोई गूंद चोटी लगी पीट[1] आए
कुंदन खाप तरख़्या ज्यूं दर्म्यान सुहाए
कि या खाप सोने चन्ह्या (चढ़्या) नाग स्याह
उछल जाए पकन्या सो फन सीस माह ६१५

कोई रक जरत सीसफुल सीस बाल
रह्या ज्यूं मुशक-रास पर आए लाल
कि या रात की कोठरी दर्मियान
रख्या लाए दीवा सो सिसफूल जान

## (३०) दर तअ्रीफ़े-पेशानी व तीलए-जरत

कोई जर्त तीला[2] (टीला) पेशानी में लाए
खरा सुरिज ज्यूं सुबह मैदान आए
अ्जब तूट बिजली परी चांद म्यान
दिसे ख़ोई बूंद मुक हो गर्मी-निशान

## (३१) दर तअ्रीफ़े-तीलए-मुश्क

कोई मुश्क तीला (टीला) पेशानी में धर
पडे चांद बिच ज्यूं सियाही नज़र ६२०

कि या मुश्क तीला( टीला) भंवर रूप जान
रह्या थरक दो कंवल आंख्यों के म्यान

## (३२) दर तअ्रीफ़े-मुकरए[3]-बीन

कोई जेब मोती सो मुकरा हले
सुने थाल दर्म्यान ज्यु पारा ढले
कि या नांग दीवा है मुक जोत जान
झडे फूल मुकरा हो दिसता अ्यान

## (३३) दर तअ्रीफ़े-दूदए-चश्म

कोई आंक काजल जो सोग्यां सूं कर
सडक बाल में ज्यूं ममोले दो पर
कि या आंक नेज़े[4] दो पुतल्यां हो स्वार
फिरावें चंचल आंक सोग्या सो मार ६२५

---

१ बीट २ टीका। ३ मुकर। ४ तेजी।

## (३४) दर तअ़रीफ़े-तानवडे[1] गोश

कोई कानखूटचां जरत पैन आए
बैठ्या चांद दो सुरिज के चाक लाए (ल्याए)
कि या वो उडे बाल बादल मंझार
खिचें जो कि दो मोती मिल कर सितार

## (३५) दर तअ़रीफ़े-लबो-लअ़लीए-बर्ग

कोई मक अधर पर सो लअ़ली धरी
रखे आरसी बिच (बीच) कंवल पंखडी
कि या अदखिल्या फूल जासून ल्याए
रख्या खुर्श काफ़ूर पर आन लाए (ल्याए)

## (३६) दर तअ़रीफ़े-रंगे-सियाह् (मिस्सीए)-दंदान

कोई दान्त काले दिसें यूं निगार
कंवल फूल में ज्यूं बचे भंवर हार ६३०

कि या दांत लीलम झमक रंग जडे
सुरंगी रतन के पियाले भरे

## (३७) दर तअ़रीफ़े-गलूए-तस्बीहे-मरवारेद

कोई पैन गल में मोत्यों हार लड
रतन लाल मानिक बहुत मोल जर (जड)
दिसे म्यान रोमावली रूप यूं
रख्या अिश्क़ हस्ती ने सुंड लाए ज्यूं
कि या पी सो कुंड पानी सट अंग धार
लगे बूंद मोती हो गल में सो हार

## (३८) दर तअ़रीफ़े-दस्त व लटकन

कोई काली लटकन सो फुंदने धरे
कंवल फूल पर आ भंवर ज्यूं थिरे ६३५

कि या पंखडचों पर धरे नक जरावू[2]
दिसे लअ़ल महदी हो रूपों सुहावू

---

१ तानवर। २ जडावू।

### (३९) दर तअ़रीफ़े-पिस्तान

कोई आ खड्यां रह सो नौ जोबन्यां
हुसन-हौज़ में ज्यूं कंवल दो लग्यां
कि या जेब सीना सदर अ़िश्क़ का
रखे फूल दो ढक मुहर मुश्क का

### (४०) दर तअ़रीफ़े-कमर व ज़रे-कमर

कोई रूप तक़्ती सो है र्दमियान
न दिसता कहीं बिच कमर का निशान
कि या उस कमर पर न है ज़र-कमर
पलित्या [लपीटचा] सो एक बाल को तार-ज़र

### (४१) दर तअ़रीफ़े-साक़-पाए व रफ़्तार

कोई आ खड्यां हैं सो दे जंग भार
लगा ओट में कुंब हस्ती दो थार
कि या खांब उलटे दो केले के लाए (ल्याए)
रखे फूल कंवलों उपर ज्यूं सुहाए

### (४२) दर तअ़रीफ़े-पाए[1] व[2] आवाज़े-घुंघरू[3]

कोई[4] बांद घुंघरु[5] जरत रूप यूं
कहूं नाद बजना उनन पावूं ज्यूं
कि या वो जरत के सो भंवऱ्यों के हार
करें नाद भुर भुर कंवल-चर्न थार

### (४३) [*दर ]तअ़रीफ़े-तमाम पाए-कूबान मुअ़त्तर कर्दह जमअ़ शुदह

कोई ऊंट संदल कोई मुश्क कर
कोई अंब्र कोई ज़अ़फ़रान ख़ास धर
कोई तेलिया बास परमल उघावू (उंघावू)
चल्या ले सो आ़लम में महकार बावू
कोई फूल अभरन किया सब सिंगार
रह्या बास फिर (भर) कर सो रंग-भूम थार
युहीं पैन अभरन खड्यां धात धात
हर एक चांद तोले सितारे संघात
कि या शह सुरिज चांद लश्कर मिलाए
पैठे[6] रंग की भूम पर वो सो जाए
जुन्या आए सब नाचने[7] मील कर
बिद्यावंत यकस एक थें ख़ूब जोर

---

१-२ यह दोनों स में अप्राप्त। ३ घुंगरू। ४ कौ। ५ घुगरू। ६ बैठे। ७ नाचते।

कोई ले डंड़े हात अलापे निगार
अ़जब चांद कोयल ज़बान मिल पुकार

कोई ले तंबूरा जो सुर देनहार
फुल्या नाग ज्यूं कार फन नाद थार

कोई ताल ले हात दोन्हों[1] बजाए
अ़जब कंव्ल में चांद दो नाच आए

इसी जिन्स सब तंत वितन्त भेद भर
गहन [ घन ] हौर सुसिर चारो मिल कर हुनर

रखे आन भी जामुनी दर्मियान
ज़बान सो तो उपमा न आवे बखार[2] [ बखान ]

कि़ या जामुनी वो न बादल दिखाए
पकर शह्-सुरिज आड मिल चांद आए

इका एक निकल्यां जो उस दौर कर
झमक बिजलियां ज्यूं गगन फोर[3] कर

खऱ्यां आय कर रंग-भूम के मैदान
पकर[4] फूल तारे सो अंजुल दर्म्यान

पऱ्हें[5] पहुप-इश्लोक भी फूल धर
उडें तोली (टोली)-जिगने सो ज्यूं कंवल-घर (घड)

तिरास्थान थे सब उठ्यां ले अलाप
मिला नाब सीना गला एक थाप

उहां थे सुनावे भी सुर[6] सात धात[7]
मिला कर तो बावीस सुर[8] तान[8] (सुरत्यां) संघात

करें राग आलाप एक एक दिखाए
छतिस[9] रागिना (रागिन्यां) राग छह् सूं मिलाए

यहीं[10] राग हौर रागिन्यां कय मिलाए
अवल आए नामांवली तो दिखाए

ओ घटकाल सूं ताल ले भेद धर
दुरुत लघु गुरू हौर पुलुत एक कर

दिखावें गुरूंजी भी बंगाली भाव्
बहुत रूप के नांच[11] हर जिन्स लाव्

---

१ दोनों। २ बखान। ३ फोड। ४ पकड। ५ पढें। ६ सू। ७ यह शब्द ग़ायब है। ८ सूरत्यां। ९ यह पाद अप्राप्त है। १० यह पूरा बैत अप्राप्त। ११ नाच।

मिला तालमंडल कला एक बंद
    जम्या संच सूं [ सो ] कुच न दिसता है संद[1]

बिरस नेम उस में भी दोन्हों दिखाए
    कहवें अंग दिसते सो दोन्हों बुझाए

सिरो-भेद चौसट जो हस्तक के छंद
    गतां (गत्यां) सात दिखला जो कवचित के बंद

लिवें लाग मुश्किल बहुत दौर सूं
    न रंभा सके इंद्र तिस जोर[2] सूं

फिरें आए कर जब तिरप कास घाल
    झमक बिजलियां ज्यूं सो करत्यां उजाल ६७०

न ले कर सके कोई ऐसा कुहार
    लेवें कौ सभा इंद्र सो देक हार

वलेकिन इंदर शाह क्यों सर करूं
    हिरा हौर फटिक क्यों बराबर धरूं

इंदर तो[3] छिपा जा न परता नज़र
    हो शह रूप परगट जगत दाद कर[4]

इंदर बाहशह हो रह्या सर्ग थाड[5] (थार)
    सो शह-राज करते ज़मीन आशकार

इंदर एक हस्ती रह्या धर पियार
    खड़े शाह दरबार वैसे हज़ार ६७५

इंदर लोग बोलें सहस-आंक जान
    नज़र शाह आंख्यों न कुच गन्त ग्यान

इंदर एक अंबरावती रहन थार
    बिद्यापुर नगर शह वैसे छप हज़ार

इंदर रहन का थार सोने पहाड़
    महल शाह नौरस रतन ढिग निगार

इंदर दोई गायन नारद तुंब शुमार
    सो शह पास गायन वैसे नौ हज़ार

इंदर एक पातर रंभा नामदार
    वैस्यां लाखुं नाचें सो शह के दुवार ६८०

---

१ सन्ध। २ चौर। ३ ती। ४ दादगर। ५ थार।

सो यूं इंद्र हौर शाह क्यों सर करूं
गगन हौर ज़मीन क्यों मिला कर धरूं
इसी जिन्स सब मेज़वानी जशन
न आवे ज़बान कर सो मज्लिस कहन
जो कुछ यक घरी ख़र्च शह अनन्द काज
सो बाक़ी करे जर्म लग ख़र्च राज
सदाकाल यूं तूं बरसगांट[1] कर
सो हर साल हर मास यूं गन्त धर[2]
निमिस मांस (मास) ज्यू (ज्यूं) बर्स हो पल्क मिन[3]
पलक साट मिल यूं घडी एक गिन ६८५

सो वैस्यां घडचां साठ दिनरात भर
पिसा [ऐसा] सौ बरस शह तुं यूं राज कर

## (४४) दर तवारीख़े-ख़त्मे-किताबे-इब्राहीमनामह शुहूर सन १०१३[4]

तू अब्दुल किती सिफ़्त कर शह बयान
रही है सो भर कर ज़मीन आसमान
सो शह सिफ़्त भर रह उजल रंग हो
रहे छाए तिर्लोक के संग हो
गगन सिफ़्त भर सब चुवें मेग-धार
परी आए दर्या में सीप्यों मंझार
उपज रूप मोती उजल तिस्स थें
हुवा खीर समन्दुर बरन[5] तिस्स थें ६९०

वही रूप कीरत गई जो पताल
हुवा रंग बासुक उजल जा सो कार
ज़मीं रूप भर रह वही सिफ़्त मिल
कल्यां फूल उजल्यां उसी छान्ह खिल
सुने शह सिफ़त की कहानी यूं कान
कही जाय कर जीव सूं तिस निशान
न सुन रह सक्या जीव अक़्ल को बुलावू
सो उस शाह को बेग तू मुज मिलावू
अक़्ल ने कह्या जीव तूं धीर रह
जबान नावुं है जान मुज मीत कह ६९५

१ बरसगांठ। २ कर। ३ में। ४ सन १०१२। ५ बिरह।

ज़बान् है सो कीली अक़ल गंज जान
रतन बोल ले जौंहरी[1] हो सो कान

कहें बाज तो कोई जाने न बात
सुने बाज तो कोइ बूझे न धात

कंचन बान बारह तो निर्मल अहै
वलेकिन कसे बाज ना कुच लहे

न बिन अग्न महकार लोबान बास
न बिन धावु ठंकार बाजे जो तास

जिता कुच अक़ल हौर फ़हम फ़िक्र आन
न बिन बच्न बोलें दिसे उस निशान

अक़ल जा ज़बां को सो आन्यां बुलाए
कह्या जीव की बात तिस को बुझाए

क़िसा सब सिफ़त शाह का कर बखान
अक़ल ने कया सब ज़बां सूं बयान

जबा[2] (जबां) ने सुन्यां[3] शह सिफ़त बे-नहात
किता फ़हम बच्न[4] [ × ] मेरा करू मैं सो बात

बचन मुज है यक बूंद शह-गुन समुन्द
कहां जाए देख्या सो दर्या में बूंद

सिफ़त-शाह दोघर ज्यूं ऊंचा सुहाए
बचन मूज च्यूटी सो क्यों कर चर धाए [ चढ आए ]

वलेकिन हुई हौस मूगी कों आए
सिफ़त शाह पर्बत कि रह पास जाए

सो शह ख़ासलत है तो हीरे समान
करे पास कंकरी अपस से[5] जो आन

सो आ म्यान बैठे जडत नौ-रतन
अधिक मोल हो पाच यअक़ूत[6] कन

यहीं मुज बचन शिअ्र शह-सिफ़्त मिल
कि ज्यूं बास हौर फूल रह जगत खिल

न यो[7] फूल कधीं जाएं कुम्हलाए सड़
रहे बाग़ आ़लम में नित बास भर

१ जोभरी। २ ज़बां। ३ सुन्या। ४ यह अनावश्यक है। ५ है। ६ याक़ूत। ७ यूं।

बचन फूल गूंद यूं बिराहीम नाम
किया सहस पर बर्स बारह तमाम[1]

ख़ुदा या ! तू अब्दुल-बचन फूल कर
भंवर आरिफ़ों चित् सो [ सुं ] मक़्बूल कर

कतबए[2]– सय्यिद अब्दुर्रहीम इब्न सय्यिद यूसुफ़

१ बारह तमाम इन शब्दोंके नीचे '१०१२ हि' लिखा गया है। २ अन्तमें तमाम शुद के शब्द हैं। किसी लिपिकार का नाम नहीं है।

# इब्राहीमनामा

## टिप्पणियाँ

**इबादत** (बैत ४०)

ईशस्तुतिसे अ़ब्दुलने ग्रंथारम्भ किया जैसा कि ईरानी प्रथा है। यही प्रथा भारतीय आर्योंमें भी चलती आई है। ग्रन्थके अन्तमें किसी आशीषके लिए प्रार्थना की जाती है। ईश-स्तुतिके प्रश्चात् उसने मुहम्मद पैगंबरकी नअ़त-स्तुति कही है। पैगंबरके इस वर्णनमें आम तौर-पर पैगंबरको इबादत, भक्तिमार्गका प्रवर्तक माना जाता है। अ़ब्दुलने भी यहाँपर कहा है कि अल्लाने मुहम्मदको इबादत, भक्तिका गुह्य बतला दिया। बैत क्रमांक ४० में कविने इबादत—भक्तिकी सीढ़ियाँ बतलाई हें। यह हैं शरीअ़त, तरीक़त, हक़ीक़त और मअ़रि-फ़त। सूफ़ीमार्गके वर्णनमें इन चारोंका उल्लेख नित्यही आया करता है। उनके अर्थ वा विवरण कोशों आदिमें मिल जाता है। परन्तु यह बात चिंतनीय है कि वास्तवमें स्वयं सूफ़ी इन संज्ञाओंका विवरण किस प्रकार किया करते हैं। यह सब संज्ञाएँ मनोवैज्ञानिक हैं। अलग अलग कालखण्डोंमें पैदा हुए सूफ़ी उनका वर्णन अलग रूपमें कर सकते हैं। इन संज्ञाओंके आशयमें कालविवश अन्तर हो सकता है। इन संज्ञाओंका भाव वर्णन करनेके लिए हम शाह मीराँजी, शम्सूल-उश्शाकके बेटे और प्रमुख शिष्य (ख़लीफ़ा) बुर्हानूद्दीन जानमका आधार लेते हैं। जानम अ़ब्दुलका समसामयिक और बीजापूरही का निवासी था। जानम सूफ़ीमार्गका प्रसारक था। उसके दो तीन छोटे छोटे ग्रंथ उपलब्ध हैं। हम उसके कलमतूल-हक़ायक़ (सत्यवचन, सत्यके सम्बन्धी लिखे गए वचन) के आधारपर इन संज्ञाओंका विवरण प्रस्तुत करेंगे। यह पुस्तक हैदराबादसे अकबरूद्दीन सिद्दीकीने (शक १८८३) प्रकाशित की है। जानमने अपनी इस छोटीसी गद्य किताबमें (पृष्ठ ९२) आरम्भमें वेदान्तकी और बादमें, ईशभक्तिकी चर्चा की है। इबादतकी चर्चा (पृष्ठ ८७) करते हुए जानमने उसकी चार अवस्थाएँ वर्णन की हैं। वह अवस्थाएँ हैं शरीअ़त, दूसरी तरीक़त, तीसरी हक़ीक़त और चौथी है मअ़रिफ़त। इन चार अवस्थाओंके रूढीप्राप्त स्थानभी जानमने बतलाए हैं। पहली अवस्थाका स्थान है नासूत मंजिल, दूसरीका मलकूत, तीसरीका जबरूत और चौथीका लाहूत मंजिल।

**शरीअ़त**—वास्तवमें इबादत चिंतनरूप है (अस्ल इबादत फ़िक्र है)। जिस ईश्वरने मनुष्यको पैदा किया उस परमात्माका चिंतन करे, उसके ध्यानमेंही निमग्न रहें। देखनेवाली आंखे और सुननेवाले कानोंको उनका काम करने दो। लेकिन उनमें उलझे न रहें। एसा रहें "जैसा बालकभाव, ना बूझे रंक ना राव। अरे, जे जानपने का अहंकार, तूं उस थे हो भार।" इन्द्रियोंकी इच्छाके साथ बह जानेको जानमने शैतानी कहा है (पृष्ठ ९०)। जब आदमी इस तरह इंद्रियोंको वशमें रख कर ईशचिंतन करने लगता है तो वही शरीअ़त है। भक्तिकी इन चार अवस्थाओंके जानमने दो पहलू बतलाए हैं। एक मराक़िबा और दूसरा मुशाहिदा। मराक़िबा वह है कि इंद्रियोंको उनके विषयोंसे बचा रखे, उनको ईशचिंतनके लिए स्थिर बनाएँ। मुशाहिदा वह है कि मनको इशचिंतनमें हमेशा निमग्न रखे। अन्य तीन अवस्थाओंके लिए भी यह दोनों पहलू जानमने बतलाए हैं। इस शरीअ़तकी अवस्थाका स्थान है नासूत मंजिल। नासूतका मूल अर्थ है मनुष्यस्वभाव, मानवता। गोया इबादतमें यह प्रथमावस्था है जिसमें इंद्रियसंयम और सदाचार महत्त्वपूर्ण हैं।

**तरीक़त.**—इबादतकी दूसरी अवस्था तरीक़त है। उसमें मराक़िबा यह कि मनमें जितनी कामनाएँ उठती हैं उनको रोकें, दिलके बाहर न आने दें। तरीक़तमें मुशाहिदा यह है कि ईशचिंतनमें हमेशा मशगूल रहे। इसमें भक्तको जो अवस्था, स्थान प्राप्त होता है उसको मलकूत मंजिल कहा जाता है। इस अवस्थामें भक्त संतुष्ट रहता है। उसको अन्तःप्रेरणासे शान्ति मिलती है। उसके लिए निन्दा और स्तुति (ज़म्म व मदह) बराबर बन जाती हैं। "सूख पर न शाद, ना दूख पर अंदूह" (शोक)।

**हक़ीक़त.**—जब भक्त इस अवस्थाको हज़म करता है, तो वह आत्माको (रूह) पा लेता है। उसको बाह्य क्रियाओंकी ज़रूरत नहीं होती। भक्त आत्मचिंतनमें ही मग्न रहता है। नमाज़ अदा करनेकी क्रियाभी उसके लिए ख़िलाफ़ुल-इबादत अर्थात् आत्मसाधनाके विरुद्ध बन जाती है। उसकी शारीरिक और मानसिक क्रिया सभी आत्मचिंतनमें होती हैं। वह आत्मचिंतनमें ही मग्न रहता है (पृष्ठ ९५)। इस अवस्थाका स्थान जबरूत है (आत्मचिंतनकी श्रेष्ठ अवस्था)।

**मअ़रिफ़त.**—जब साधकभक्त इस अवस्थाको आत्मसात् (हज़म) करता है तो वह अगली श्रेष्ठ अवस्थाको प्राप्त करता है। वह ख़ुदा, ईश्वरमें घुलमिल जाता है। वह ईश्वरको पा जाता है। "ज्यूं कि बुन्द समुन्दमें या समुंन्द बुन्दमें, पस चुनाँ बाशद कि अनाल-हक़ व मन सुबहानी। आँ मंज़िले लाहूत अस्त।" ख़ुदको ईश्वरार्पण करता है ईश्वरमें जैसा कि पानी मिल गया दूधमें, या कोलसा गंवाया आगमें। यह इस अवस्थामें मराक़िबा है। इस अवस्थाका मुशाहिदा यह है स्वयंको ख़ुदाही पाता है और हर चीज़को ईश्वरका रूपही पाता है। जसे कि मज्नूनने स्वयंको भुला कर वह लैलाही बन गया, और हर चीज उसको लैलारूपही दिखाई देने लगी। सच्ची मुहब्बत वह कि आप ख़ुदामें मिल एक होए, जूं काफूर मिल गया जोतमें, या नमक जूं पानीमें, या उस बत्तीनें मिला लिया नेह (स्नेह-तेल) को, या जूं कीटक भिंगरूट (भृंग) को अपसमें ले। भक्त और ईश्वर एकही बन जाते हैं जैसे कि चूना और हलद कि दोनों प्रेमसे मिल कर आपसमें आपीं मिलकर एकरूप बनते। दुनियाके जानपनेका बिटाल वहाँपर नहीं होता। भक्त अपने चिंतनमें मस्त रहता है। वहाँपर न मैं, न तूं, न हम और तुम शेष रहते हैं। अपने चिंतनमें इन सब बातोंका नाश होता है। भक्तका स्थान ईश्वरमें मिल जानेका, फ़ना होनेका है। बंदा ता ख़ुदा और ख़ुदा ता बंदा। हर दो बराबर अस्त। भक्त मिल गया ख़ुदामें लौन मिल गया पानीमें कि लौन पानी था। पस पानीमें लौनको धूंडे तो पानीमें क्या मिलेगा। इसी अवस्थाको मअ़रिफ़त कहते हैं। उसका स्थान लाहूत है। लाहूतका अर्थ है प्रत्यक्ष आत्मावस्था।

पाठक जान सकते हैं कि यह भक्तीमार्गकी उच्चावस्था है। यही ब्राह्मीस्थिति है। यही स्थितप्रज्ञावस्था है।

**पंज-तन** (बैत ५०)

बैत क्रमांक ५० में कविने पंज-तन का उल्लेख किया है। पंज-तनका अर्थ है पाँच शरीर, परन्तु इस्लामकी धार्मिक विचारधारामें उसका विशिष्ट अर्थ होता है। यह पाँच शरीर वा व्यक्ति हैं। पैगंबर मुहम्मद, उनकी कन्या फ़ातिमा, फ़ातिमाके पति अ़ली, फ़ातिमा और अ़लीके दो पुत्र हसन और हुसेन। गोया यह इस्लामी पंचायतन है। अ़ली पैगंबर

मुहम्मदके बड़े भाईके पुत्र और मुहम्मदके दामाद हैं। मुहम्मद साहिबको अपनी धर्म-स्थापनाके प्रयत्नोंमें मक्का शहरमें उनका विरोध होनेके कारण, उस नगरसे शक ५४४ में मदीना नगरको हिजरत करनी पडी। उसके बाद हालात सुधर गये। मदीना शहरमें उनको कई दोस्त और सहायक मिले। वह अनसार कहलाते हैं। मुहम्मदका शक ५५४ में देहान्त हुआ। मुहम्मदकी लोकतंत्रकी धारणाके अनुसार धर्मकार्य और हुकूमत चलानेके लिए मुहम्मदका प्रतिनिधि नियुक्त किया गया। उस प्रतिनिधिको ख़लीफ़ा कहा जाता है। पहला ख़लीफ़ा मुहम्मदके ही वंशके उसके श्वशूर अबू बक्र बनाए गए। दूसरा ख़लीफ़ा मुहम्मदके दूसरे श्वशूर उमरको बनाया गया। तीसरे ख़लीफ़ा बननेका सम्मान मुहम्मदके दामाद उस्मानको रहा। मुहम्मदकी बेटी फातिमाके पति अ़ली चौथे ख़लीफ़ा बने। अ़लीकी मृत्युके बाद उनके बड़े बेटे हसनको ख़िलाफ़त मिली। लेकिन छ: महीनेके अन्दर उसने इस पदका त्याग किया। कुछही दिनोंमें वह मारा गया। हसनके पश्चात् उसका छोटा भाई हुसेनभी करबलाके रणकन्दनमें मारा गया। सीरियाके उम्मय वंशके हाथोंमें ख़िलाफ़त चली गई। यह घटना शक ५८३–८४ की है। पंज-तनके पुरुष कुरेश जमायतके थे। मुहम्मदने जिस ख़िलाफ़तके लिए मैदान तैयार किया था, वह राज्य इस तरह थोड़ेही वर्षोंमें कुरेश वंशके हाथोंसे चला गया।

**अबू बक्र** (बैत ५४)

मुहम्मदके निर्याणके पश्चात् उनके खुसर अबू बक्र, जो काफ़ी वयोवृद्ध और मुहम्मदके धर्मनिष्ठ अनुयायी थे, मुहम्मदके धर्मप्रसार और राज्यकार्यके लिए प्रतिनिधि अर्थात् ख़लीफ़ा बनाए गये। लेकिन उनका देहान्त दोही वर्षोंके अन्दर शक ५५६ में हो गया। उनकी धर्मनिष्ठा और प्रामाणिकता प्रशंसनीय मानी जाती है। सुन्नी पंथीयोंमें वह स्मरणीय माने जाते हैं।

**उमर** (बैत ५५)

अबू बक्रके देहान्तपर मुहम्मदके दूसरे खुसर उमरको ख़लीफ़ा नियुक्त किया गया। उन्होंने शक ५६६ तक धर्म और राज्यका कारोबार चलाया। उन्हींके ज़मानेमें ईरानियोंके विरुद्ध अरबोंकी बढती हुई ताक़तको क़ादिसियाके रणक्षेत्रमें पहली बार विजयप्राप्ति हुई (शक ५६६)। हर साल ईरानका कुछ न कुछ भाग अरबोंके हाथोंमें आ गया। वह उत्तम श्रेणीके वक्ता थे। इसीलिए उनको इब्नूल-ख़त्ताबकी उपाधिसे याद किया जाता है। इस विशेषताका उल्लेख अब्दुलने भी इस बैत में किया है। एक नाराज मुसलमानने शक ५६६ में उनका वध किया।

ब्राउनने बतलाया है कि ईरानी शियापंथीयोंमें उमरके लिए बड़ी नाराज़ी पाई जाती है। उन्होंने ऐतिहासिक उल्लेखोंके आधारसे यह कहा है कि शियापंथीयोंका यह ख़लीफ़ा उमरका विरोध धार्मिक दृष्टिकोनसे नहीं हैं। बल्कि उसका कारण राजकीय है। ब्राउनने (खण्ड ४, पृष्ठ २९) शेख रिज़ाए-कुर्द नामी कविके दो श्लोकार्ध दिए हैं।

**बि-शिकस्त अुमर पुश्ते-हिज़्ब्रान अ़जम रा**
**बर्बादे-फ़ना दाद रगो-रेशए-जम रा**
**ईं अ़र्बदह बर ग़सबे-ख़िलाफ़त ज़ि अ़ली नीस्त**
**बा-आले-अुमर कीनए-क़दीम अस्त अ़जम रा**

**अर्थ.**—"वनस्थलीके सिंहोंकी पीठ उमरने तोड दी। उसने जमशेदके मांस और हड्डीको बर्बाद कर हवामें फेंक दिया। अलीसे खिलाफ़त ग़सब कर लेनेके सम्बन्धमें यह झगडा नहीं है। ईरानको उमरके वंशजोंके विरुद्ध प्राचीनसे यह द्रोहबुद्धि रही हैं।"

**उस्मान** (बैत ५६)

तीसरे ख़लीफ़ा मुहम्मद्के एक दामाद उस्मानको बनाया गया। उसके पिताका नाम अफ़ान था। उसने बारह सालतक खिलाफ़त चलाई। उस्मानने शुरूही से अपने दोस्त और रिश्ते-दारोंको हुकूमतके कारोबारमें अधिक बढावा दिया। मुहम्मदके बतलाए हुए समता और न्यायके तत्त्वोंका उसने आदर न करनेकी शिकायत की जाती है। उसके इसी धोरणकी वजहसे इस्लामके अनुयायियोंमें अश्रद्धा और झगडे बढ़ने आरम्भ हो गए। अबू लूलूय नामी एक ईरानी गुलामनें ख़लीफ़ा उमरकी हत्या की थी। उमरके बेटे उबयदुल्लाने न केवल लूलूयका वध किया, परन्तु उसके साथ हूरमुज़ान नामी ईरानी मुसलमानकी भी हत्या की। हूरमुज़ान एक बड़ा सेनानी और सुप्रतिष्ठित व्यक्ति थी। न्यायनिष्ठ अलीने चाहा कि उबयदुल्लाको मृत्युदण्ड दिया जाए। लेकिन उस्मानने इस बातको माननेसे इन्कार कर दिया। मृतकके वारिसको उस्मान ख़लीफ़ाने अपनी जायदादसें द्रव्यरूपम माविज़ा दिया। ज़ियाद नामी अन्सारने उस्मानके इस नीतिकी अपने काव्यमें निन्दा की है। उस्मानके बारेमें कहा जाता है कि उसका आचरण और राजकीय व्यवहार स्वार्थप्रेरित रहता था। उसने कुरेशवंशीयोंको अपनाया था। इसलिए जनसाधारण अरबोंमें उस्मान अप्रिय बनता गया। उम्मय खानदानके अरबोंने मुहम्मदका विरोध किया था। इसका धर्ममार्ग भी उनको मनसा पसन्द नहीं था। परन्तु इसके बावजूद उस्मानने उम्मय सरदारोंकी हिम्मत बढ़ाई। इनही लोगोंने अलीका विरोध किया। रिश्वतबाज़ोंको उस्मानने कभी सज़ा नहीं दी। इसी कारणसे मुहम्मदके सहायकों (असहाब) में भी अप्रियता बढ़ती गई। इब्न मसउद, जो कुरानकी संहितापर ज्येष्ठश्रेष्ठ माना जाता था, उस्मानके हाथों अपमानित हुआ। उस्मानभी कुरानका अभ्यासक था। लेकिन कुरानके जिन भागोंसे उस्मानको मतभेद और आशंका थी, वह सब साहित्य उस्मानने नष्ट करवा दिया। तमाम मुसलमानोंकी समानताका प्रतिपादन करनेवालोंको उसने निष्कासित किया। इसी असंतोषके कारण शक ५७८ के आषाढ मासमें मदीना शहरके उसके प्रासादमें, अन्तःपुरमें घुस कर, कुछ आतंकियोंने उसकी हत्या की। उसकी पत्नी नाइलाने उसको बचाना चाहा, लेकिन उसकी भी उंगलियाँ कट गई।

**अली** (बैत ५७)

मुहम्मदके निर्याणके बाद हुए चार ख़लीफ़ाओंको ख़ुल्फ़ाए-राशिदैन अर्थात् सन्मार्गपर चलनेवाले ख़लीफ़ा माना जाता है। उनमें चौथा ख़लीफ़ा अली था। उस्मानके वधके पश्चात् अलीको ख़लीफ़ा बनाया गया। सुन्नी पंथी मुसलमान इन चार ख़लीफ़ाओंको मानते हैं। इसके विरोधमें शियापंथी बारा इमामोंको मानते हैं, जिनमें प्रथम अलीही को माना जाता है। अलीके प्रथम पुत्र हसन और द्वितीय पुत्रको शियापंथमें दूसरा और तीसरा इमाम मानते हैं। ईरानके सासानवंशीय अंतिम सम्राट यज़्दगिर्दका अरबोंके हाथों पराभव हुआ। यज़्दगिर्दकी कन्या शहरबानू (राष्ट्रकन्या) अलीके द्वितीय पुत्र हुसेनसे ब्याही गई। हुसेन और शहरबानूकी पुत्र सन्तानको चौथा इमाम मानते हैं। इन इमामोंकी परम्परा बारहतक है। शियापंथीयोंके यही बारा इमाम हैं।

शील, चारित्र्य, धर्मनिष्ठा, न्यायबुद्धि आदि गुणोंसे प्रथम चार ख़लीफ़ाओंमें अली सर्वश्रेष्ठ है। लेकिन तृतीय ख़लीफ़ा उस्मानकी मृत्युके बाद अरबोंमें आपसी झगडे खड़े हो गए। अलीके सीरियाके उम्मय वंशके सूबेदारने अलीकी आज्ञा माननेसे इन्कार कर दिया और अलीको उस्मानकी हत्याका ज़िम्मेवार गरदाना। अब अली और उम्मय गण युद्धपर तुले हुए थे। युद्ध हुआ। खूनख़राबी हो गई। उम्मय गणोंका पराभव कुछही समयकी बात थी। उन्होंने क़ुरानशरीफ़के पन्ने अपने भालोंकी नोकोंपर ले कर मुसलमानोंसे युद्ध न करनेकी चेतावनी की। उन्होंने बतलाया कि यह युद्ध ईश्वरी आज्ञाके विरुद्ध होगा। अन्तमें अलीको एक अपमानभरे समझोतेको मान लेना पडा। उम्मय गणोंकी शक्ती बढती गई। यह उम्मय गण मनसा इस्लामधर्मविरोधी थे। शक ५८२ में अलीको परिस्थितिसे मजबूर हो कर इन गणोंसे और एक समझौता करना पडा। अलीकी शक्ति क्षीण हो गई थी। वह निराशभी बना हुआ था। उसी वर्ष उसकी कूफ़ा नगरकी मस्जिदमें इब्न मुल्जम नामी अरबने हत्या की। उस समय अलीकी आयु ६० थी। अगले वर्ष इन धर्मविरोधकोंने हसन और हुसेनके भी वध किए। खिलाफतकी गद्दीपर क़ब्ज़ा जमाया। खिलाफतकी राजधानी आजतक मदीना शहरमें थी। उम्मय वंशने सीरीयाके दमश्क (दमस्कस) शहरमें अपनी राजधानी बनाई। उन्होंने ख़लीफ़ाका पद धारण किया। उम्मय वंशमें १४ ख़लीफ़ा हुए और शक ६७२ तक इसी नगरसे उनकी सत्ता चलती रही।

अली धर्मनिष्ठ था, उसके व्यवहारमें न्यायप्रियता थी, मुहम्मदके बतलाए रास्तेपर चलनेकी उसने कोशिश की। परन्तु दुष्ट प्रवृत्तियाँ शक्तिशाली थीं। व्यवहारमें उसे नाकामयाबी रही। परन्तु उसने एक सच्चे मुसलमानका आदर्श जनताके सामने रखा। उसको आदिल—न्यायप्रियके नामसे याद किया जाता है। वह शूर, वीर और सच्चरित था।

अबू बक्र, उमर, उस्मान और अली यह चार ख़लीफ़ा चार यार अथवा चार मित्र कहलाते हैं। यह मुहम्मद पैगंबरके आरम्भही से साथी थे। इनही का वर्णन चार यारोंके उल्लेखसे बैत क्रमांक ५१ में किया गया है। यही खुलफाए-राशिदैन अथवा निष्ठावान् ख़लीफ़ा कहलाते हैं। वह मुहम्मदके साथी और ख़लीफ़ा होनेसे उनका बड़ा सम्मान है।

**गेसू-दराज़** (बैत ६१)

अब्दुलने गेसू-दराज़के वन्दनके लिए ८ बैत लिखे हैं। इस सूफ़ी साधुका महत्त्व न केवल भक्तिमार्गमें है किन्तु दक्खिनी हिन्दी, हिन्दी और उर्दूके भाषाविकास और साहित्येतिहासमें भी पाया जाता है। इस सूफ़ीका मूल नाम जैसा कि साहित्येतिहासमें अब्दुलने बतलाया है, सय्यद महम्मद हुसेनी है। उसको बन्देनवाज़के नामसे भी याद किया जाता है। लेखकने उसकी गुलाबर्गास्थित दर्गाहका दर्शन कई बार किया है। वह उसके वतन औसासे केवल ६०–७० मीलपर है। इस प्रदेशकी मुसलमान जनता उसको बन्देनवाजके नामसे ही याद करती है। यही नाम जनसाधारणके लिए अनुकूल और सुयोग्य है। उसका अर्थ है भक्तवत्सल या दासोद्धारक। गेसू-दराज़ यह उसकी उपाधि उसके गुरु या पीर दिल्लीनिवासी हज़रत नसीरूद्दीन महमूद चिराग़से उसको मिली है। वह इस प्रकार कि एक मर्तबा नसीरूद्दीन पालकीसे कहीं जा रहे थे। मुहम्मद हुसेनी पालकीका वाहन करनेमें शरीक था। योगायोगसे उसके लम्बे लम्बे बाल पालकीके दण्डेसे उलझ गए। मुहम्मद कोई

चां चूं नहीं कर सकता था। जब पालकी उतारी गई तो गुरुको उसकी दुरवस्था ज्ञात हुई। गुरुने उसके मन:संयम और सहनशीलताकी प्रशंसा की और उसके लम्बे बालोंपर एक फार्सी श्लोकार्ध कहा। मुहम्मदका यही नाम सर्वतोमुखी हो गया। ईरानी (फार्सी) भाषामें गेसू (सं-केश) बालोंको कहते हैं। दराज़ शब्द द्राघीयस् से बना है। यह उपाधि उस कालके पूर्वभी ईरानी साहित्यमें पाई जाती है। अलबत्ता वह मूए-दराज़के भी रूपमें है। मू, मूए वालोंको ही कहते हैं। यह उपाधि वन्देनवाज़के, अन्तत: दक्षिणमें आनेके पूर्व अर्थात् शक १३२४ के पूर्वकी है।

डॉ. नीलकण्ठ शास्त्रीने अपने ग्रंथमें बन्देनवाज़का नाम जमालूद्दीन दिया है। यह दुरुस्त नहीं है। अस्ल नाम मुहम्मदही था।

वन्देनवाज़का महाराष्ट्रकी भूमिसे घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है। बतलाया जाता है कि उनका जन्म दिल्लीमें शक १२४३ में ( हिज़री ७२१ ) हुआ। उस समय अमीर खुस्रौ जीवित था। उसके पिताका नाम सय्यद यूसुफ़ हुसेनी था। लेकिन जनतामें वह राजू क़त्तालके नामसे मशहूर था। वह सूफी मनुष्य था। हज़रत निज़ामुद्दीन अवलियाने दिल्लीसे अपने प्रसिद्ध शिष्य बुर्हानूद्दीन ग़रीबको देवगिरी-दौलताबादको धर्मप्रचारके लिए भेजा था। उन्हींके साथ राजू क़त्तालभी आया था। उसके साथ चतुर्वर्षीय बन्देनवाज़भी आया था। यहीं देवगिरीमें राजूका देहान्त हुआ। उसकी क़बर खुलदाबादमें बतलाई जाती है। वन्देनवाज़ देवगिरीमें १०–११ साल रहा और फिर अपनी माँके साथ शक १२५८ में दिल्ली पहुँचा। उसकी माताका नाम बीबी रानी था।

ख्वाजा वन्देनवाज़का सूफी पंथके चिश्ती विभागसे सम्बन्ध हैं। भारतमें सर्वप्रथम मुईनूद्दीन चिश्तीने अजमेर शहरमें रह कर अपने विचार मुसलमान जनतातक पहुँचाए। उनके प्रमुख शिष्य कुत्बुद्दीन बख़्तियार थे। वह दिल्लीमें रहते थे। उनके शिष्य फरीदूद्दीन गंजशकर थे। उनसे निजामूद्दीन अवलियाको शिष्यपद प्राप्त रहा। निजामूद्दीनके शिष्य-प्रवर नसीरूद्दीन महमूद चिराग़ रहे। हज़रत चिराग़से बन्देनवाज़को शिष्यपद प्राप्त हुआ। अपने गुरुकी उन्होंने काफी दीर्घ कालतक सेवा की। मुगल गणोंके नेता तैमूरलंगके दिल्लीपर हुए हमले, कत्ल और ग़ारतगीरीसे तंग आ कर, अस्सी वर्षोंकी आयुमें ख्वाजा वन्देनवाज़ने फिरसे दक्षिणमें जानेका निश्चय किया। तैमूरका आतंक शक १३२१ में बना। वन्देनवाज़ शक १३२४ में देवगिरी पहुँचे। वह कुछ समय वहाँपर रहे। बहमनी खानदानका प्रभावी और वैभवसम्पन्न बादशाह फ़ीरोज़शाह उस समय गुलबर्गामें सिंहासनस्थ था। उसने वन्देनवाज़को अपनी राजधानीमें बुला लिया। बन्देनवाज़ दक्षिणमें लगभग २० वर्ष रहे। शक १३४४ (हिजरी ८२५) में उनका देहान्त हुआ। हिजरी कालगणनाके अनुसार उनकी आयु १०४ वर्ष, किन्तु वास्तवमें १०१ वर्षकी थी।

दक्षिण भारतके सूफीमार्गमें जो प्रतिष्ठा और सम्मान बन्देनवाज़को प्राप्त है वह अन्य किसी सूफीको नहीं है। फ़ीरोज़शाह और उसका भतीजा अहमदशाह उनके पूजक थे। यही हाल सबही उत्तरकालीन नरेशोंका है। बीजापूर और गोवलकोण्डाके मुसलमान नरेश उनका मानसम्मान किया करते थे। बीजापूरका द्वितीय इब्राहीम आदिलशाह तो

उनका परम भक्त था। उसने अपने नौ-रस ग्रंथके ७५ में से ८ गीतोंमें बन्देनवाज़की वन्दना प्रस्तुत की है। वह कहता है (गीत १)—

**हज़रत मुहम्मद जगत् त्र (य) गुरु गुसाईं**
**तू दर्गह चमक मेरो मन सार।**
(अन्तरा) **तिर्लोक जपत तव नांवु पावइं परान के परान**
**अचरिज महा-पीर अबलाबली तूंहीं सांचू अवतार।**

गीत क्रमांक १७ में वह कहता है—

**मख़्दूम सय्यद मुहम्मद हुसेनी गेसू-दराज़**
**आशिक़ शहबाज़ सरफ़राज़।**
(बैन) **तुमारी कबर सींपी**
**सय्यद मुहमद आछे मोती।**
**ऊपर गलेफ़ दरया आसमान गुमती**
**दीवे तारे कलस कुदरती।**
(अभोग) **बिहिश्त दरवाज़े फरिश्ते ख़िदमतगारा**
**ऊद का धुवां भरिइ हर दो जहां पारा**
**मुक़ाम इबराहीम तुमारा ठारा।**

परिशोधकोंने अब बतलाया है कि इब्राहीम आदिलशाहने अपना यह गीत-संग्रह शक १५१८ (हिजरी १००८) के पूर्व संकलित किया था। दक्खिनी हिन्दीके दूसरे कई कवियोंने बन्देनवाज़की स्तुति की है। उन सबका वर्णन करना यहाँ आवश्यक नहीं। हम यहाँपर केवल दक्खिनी कविश्रेष्ठ मुल्ला नुस्रतीके अपने गुलशने-इश्क़ मस्नवीमें प्रस्तुत किये उल्लेखकी ओर इशारा करते हैं। इस साधुके लिए नुस्रतीका आदरभाव निम्न पंक्तियोंसे व्यक्त होता है :—

**ज़बां धो के फुलनीर सूं मुख में ल्यावूं**
**यो सय्यद मुहम्मद हुसेनी का नांवूं** ६·२
**दखिन को अजब बख़्त-वर ख़ाक है**
**कि जिस बीच तुझ ख़्वाब-गह पाक है** ६·३६
**यु भुइं किस ख़तर ते न होए हौल-नाक**
**कि हैकल है तिस गल तेरा क़ब्र पाक** ६·३७

बन्देनवाज़के नामपर चार छोटे छोटे गद्य रिसालोंका—पुस्तिकाओंका उल्लेख किया जाता है। सर्वप्रसिद्ध मिअराजूल-आशिक़ैन (साधकोंका मार्ग) उर्दूमें तीन लेखकोंने प्रकाशित किया है। उसी प्रकार उनका शिकारनामाभी दो अभ्यासकोंने उर्दूमें प्रकाशित किया है। तलावतुल-वजूद और दुर्रुल-असरार अभी अप्रकाशित हैं।

**फ़ीरोज़शाह बहमनी** (बैत ६६)

इस बैतमें अब्दुलनें एक ऐतिहासिक सत्यकी ओर संकेत किया। ख़्वाजा बन्देनवाज़ गेसूदराज़ फ़ीरोज़शाह बहमनीके बुलावेपर गुलबर्गा आये थे। वहींपर वह आख़िर दमतक रहे। फ़ीरोज़शाहके व्यवहारके सम्बन्धमें बन्देनवाज़के मनमें मतभेद और संदेह बढते गये। फ़ीरोज़ परले दर्जेका स्त्रैण था। कहते हैं कि वह कई भाषाएँ जानता था। उसने एक

नया फ़ीरोज़नगर बसाया और वहाँ अपना एक बडा ज़नानख़ाना बनाया। कहते हैं कि उस ज़नानख़ानेमें अलग-अलग भाषाएँ बोलनेवाली और अलग-अलग प्रदेशों, देशोंकी ८०० युवतियाँ रखी गई थीं। फ़ीरोज़ उन प्रेयसियोंसे उनकी निजी भाषामें बात किया करता था। वह शराबका भी बडाही आदी था। शायद यह धर्मविरोधी आचरण बन्देनवाज़को पसन्द न हो। इस फ़ीरोज़का भतीजा अहमद बन्देनवाज़के कानोंको लगा हुआ था। फ़ीरोज़शाहका लडका कुछ नादानसा था। अहमदने एक ईरानी व्यापारी और सरदार ख़लफ़ हसन बसरा की सहायता प्राप्त कर लियी थी। इस हसनको मलिकुत्तुज्जार कहा जाता था। वह प्रभावीभी था। शक १३४३ में फ़ीरोज़शहा बीमार हुआ। रोगोंसे बचनेकी कोई आशा न रही। तो अहमदने हुकूमत अपने हाथोंमें ले ली। वह बादशाह बन गया। अहमदने अपनी राजधानी गुलबर्गासे उठाकर, बीदर शहरमें कर दी। अहमद स्वयं पापभीरू और सच्छील था। इसलिए उत्तरकालमें लोग उसको वली अर्थात् साधु कहने लगे।

उपरोक्त घटनाओंसे लोगोंमें यह भ्रम फैल गया कि च्यूं कि अहमदशाह वलीको ख़्वाजा बन्देनवाज़का आशीर्वचन प्राप्त था और उनका मन फ़ीरोज़के लिए साफ़ नहीं था इसीलिए फ़ीरोज़का अन्त हुआ और अहमद राजा बन गया। इसी किंवदन्तीकी ओर अब्दुलने इशारा किया है। बीजापूरके वर्तुलोंमें यही धारणा बद्धमूल हो गई थी। इब्राहीम आदिलशाह बन्देनवाजका बड़ा भक्त था। हुकूमतकी बागडोर हाथोंमें आतेही गुलबर्गा जा कर उसने दर्गाहकी ज़ियारत की थी। लेकिन बन्देनवाज़का ८ बार उल्लेख करनेके बावजूदभी इस किंवदन्तीका इब्राहीमने नौरसमें उल्लेख नहीं किया।

नुस्रती अब्दुलके ५०–५५ वर्ष पश्चात् साहित्यनिर्मिती कर रहा था। उसने अपनी मस्नवी गुल्शने-इश्क़में अब्दुलके समानही इस किंवदन्तीका उल्लेख किया है (अध्याय ६)।

**तिरे मिहर सीते गदा होय अमीर**
**तिरे क़हर ते पल में होए शह फ़क़ीर** १७

**किया पल में फ़ीरोज़ शह कूं तबाह**
**घडी में च सुल्तान अहमद कुं शाह** १८

**राजा ईश्वरांश** (बैत ७१, ७२)

इन बैतोंमें कविने बादशाहको ईश्वरकी छाया बतलाया है। इसही कल्पनाके लिए ज़िलुल्ला, ज़िल्ले-सुबहान, साए-अल्ला, साए-सुबहान आदि प्रयोग किए जाते हैं। इस कल्पनाको हमने विस्तारके साथ भूमिकामें विशद किया है।

**जगद्गुरु** (बैत ७१, ८०, ९१, ९८, ५२३)

अब्दुलने द्वितीय इब्राहीमकी स्वयंप्राप्त उपाधि जगत्गुरुका कई बार उल्लेख किया है। अब्दुल जैसे कविका यह उल्लेख सुयोग्यभी है। क्योंकि स्वयं इब्राहीमने अपने नौरस गीतसंग्रहमें भी इस उपाधिका उपयोग किया है। गीत क्रमांक ५० में वह कहता है—

**इब्राहीम गाए बजाए परचंग जगत् गुरु नादमूरत ख़िताब पाए**
**दया कधूं कहा करूं कूर मन सूं वा कूं कारई आंख न भाए**

जिस प्रकार अब्दुल इब्राहीमका आस्थानी कवि है, उसी प्रकार नुस्रती इब्राहीमके पोते अली आदिलशाहका दरबारी कवि है। नुस्रतीने अपने दोनों महाकाव्य गुलशने-इश्क़ और अली नामामें जगत्‌गुरुकी उपाधिसे अलीको विभूषित करनेकी चेष्टा की है। इब्राहीमने यह ख़िताब क्यों धारण किया इस बातका ठीकसा पता नहीं चलता। सियासतमें यह उपाधि निरर्थक है। आध्यात्मिक क्षेत्रमें नरेशने यह प्रयत्न किया हो ऐसा मानना कुछ विपरीतसी बात है। अलबत इब्राहीमने अपनी सांस्कृतिक और सामाजिक नीतिमें कुछ अनोखापन अवश्य बतलाया है। वह सरस्वतीको माता, महादेव, गणपति आदि हिन्दु देवताओंको पिता मानता है। राम और सीताके प्रेमको आदरभावसे देखता है। उसने अपनी रियासतके झगडे निर्णयके लिए प्रतिष्ठान (पैठण, ज़िला औरंगाबाद) जैसे धर्मपीठकी ओर भेजे। सम्राट् अकबरको उसने रामसीताकी मुद्रांकित सुवर्ण मुहर भेटमें भेजी और अकबरने वह स्वीकृत कर ली। यह चंद बातें बिल्कुल नई और अपरिक्षुण्ण मार्गकी द्योतक हैं। अगर इब्राहीमका संकेत इन बातोंकी ओर हो तो वह कुछ दुरुस्तही है। अथवा हम उसकी जगद्‌गुरु पदवीको इस रोशनीमें देखें तो ग़लत नहीं होगा।

नुस्रतीने जगद्‌गुरुकी उपाधि द्वितीय अली आदिलशाहको भी चिपका दी। उसका यह प्रयास केवल चापलूसीके अतिरिक्त और कुछ नहीं। अलीमें कोई विशेष गुण नहीं थे। उसने कुछ काव्य हिन्दी भाषामें लिखा है। परन्तु वह परले दर्जेका स्त्रैण और व्यसनी था। इसी कारण उसकी अकाल मृत्यु हो गई। उसका राजनैतिक व्यवहारभी हमें उत्साहित नहीं करता। नुस्रतीने बार बार इस उपाधिका अलीके लिए उपयोग किया है। गुलशने-इश्क़ (लेखन शक १५८०–हिजरी १०६८) में वह कहता है––

**तिरे जद कूं आलम जगत् गुरु कहे**
**पिदर सें सो तेरे बहादुर कहे** ७.७

**फ़ज़ीलत सूं कामिल जगत् गुरु तुहीं**
**शुजाअत सूं नामी बहादुर तुहीं** ७.१०

**जगत् गुरु पने की पकड जद की गत**
**करनहार था पल में कई भांत अवगत** ८.३४

**जगत् गुरु बिराहीम शाहे-ज़मन**
**गया था जो कर बाग़ मुल्के-दकन** ४३.३

आगेकी पंक्तियोंमें इसी जगत्‌गुरु उपाधिका अनुवाद नुस्रतीने उस्तादे-आलमके रूपमें किया है।

**सवाई यो उस्तादे-आलम हुवा**
**मुरब्बी ज़माने का जम जम हुवा** ४३.१७

अलीनामा यह बृहद्‌ग्रन्थभी अलीके अतिशयोक्त वर्णनोंसे भरा पडा है। उसमें से और उद्धरण देनेसे केवल पुनरुक्तिही होगी।

इब्राहीम ज़ुबेरीने अपने ईरानी ग्रंथमें इब्राहीमकी इस उपाधिका उल्लेख कर यह बतलाया है कि च्यूं कि इस नरेशके काम और चारित्र्यपर सामान्य जनता खुश थी, इस लिये यह उसको प्रदान हुई। उसने जगत्‌गुरु शब्दका अर्थ विशद करके बतलाया है। गुरुका अर्थ उसने उस्ताद बतलाया है। इस उपाधिका अर्थ उस्तादे-आलमियान, लोगोंका गुरु अथवा पेशवाए-जहाँ, पृथ्वीका मंत्री बतलाया है ( देखिए पृष्ठ २७९, २८० )।

अब्दुला क़ुतुबशाह गोवलकोंडाके नरेश थे। उसका मलिकुश्शुअ़रा (राजकवि) ग़वासी था। उसने अपनी एक ग़ज़लमें अब्दुल्लाको जगद्गुरुकी उपाधि लगाई है—

**शाह अ़ब्दुल्ला जगत् गुरु जो तरह इस ग़ज़ल का**
**पैदा किए सो अल्-हक़ होए जडत जडे हैं।**
**ग़ौवास इस ग़ज़ल की दौलत थे यो ग़ज़ल जो**
**बोल्यां सो सुन हुए ख़ुश आ़रिफ़ जु कुई बडे हैं।**

ग़वासीने और स्थानोंपर भी समानार्थक विशेषणोंका प्रयोग किया है।

त्रैमासिक उर्दू (खण्ड पाँचवा, सन १९२५, पृष्ठ ४९९) में स्व. अ़ब्दुल हक़ने वजहीके सबरस ग्रंथके पद्यानुवादका परिचय कराया है। कविका नाम है शाह हुसेन ज़ौक़ी। काव्यका नाम है विसालुल्-आ़शिक़ैन। इस ग्रंथका लेखनकाल है शक १६१९ (हिजरी ११०९)। ज़ौक़ीने औरंगजेबका वर्णन यों किया है—

**शहनशाह नेक पचपन मुलुक का**
**बडा आ़दिल बडा धर्मी मुलुक का**
**जु है इस वक़्त औरंगज़ेब आली**
**नबी की शरअ़ के गुल्शन का माली**
**सुहावे नाम आ़लमगीर इस कूं**
**कना लाज़िम है जग का पीर उस कूं**

इब्राहीम आदिलशाहने शुरू की जगत् गुरुकी प्रथाही यहाँपर अपनाई गई है।

औरंगज़ेबका समकालीन, परन्तु बीजापूरके आ़दिलशाही राज्यस्थित गोगी शहरमें रहने-वाले कवि क़ाज़ी महमूद बहरीने अपनी भक्तिपरक मस्नवी मन-लगन (लेखनकाल शक १६२२—हिजरी १११२) में समकालीन बादशाह औरंगज़ेबका बडा वस्तुनिष्ठ और मार्मिक वर्णन किया है। उसका समीक्षण हमने वाईसे प्रकाशित मासिक नवभारत (सितम्बर १९६८) में किया है। बहरीने औरंगज़ेबको फ़लकका पीर कहा है। गोया यहाँपर जगत् शब्दके लिए फ़लक शब्दका प्रयोग है। बहरीने इब्राहीम, अब्दुल, नुस्रती, ग़वासी आदिका ही अनुसरण किया है—

**जिस की यो दो बालपन की आ़दत**
**आ़लमगीरी है हौर अ़िबादत।**
**यक मुल्क नैं जो उन लिया नैं**
**यक नक़्ल नैं जो उन किया नैं।**
**दीनदार, दिलेर हौर दाना**
**इक अ़िल्म न सब मने सियाना।**
**कहते जो दबीर है फ़लक का**
**तदबीर कूं पीर है फ़लक का।**

इससे सुराग़ लगता है कि इब्राहीमके जगत्गुरु उपाधिकी परम्परा उत्तरकालीन सबही कवियोंनें अपनाई थी और समसामयिक मुसलमान बादशाहोंको वह शिरोधार्य बनी रही (देखिए, भूमिका, जगद्गुरु)।

**अ़जम** (बैत ९९)

अ़जम अ़रबी भाषाका शब्द है। मूलतः वह धातुभी है। उसका अर्थ है किसी वस्तुको दाँतोंसे चबाकर देखना कि कठीन है या नरम, अर्थात् परीक्षा करना, जाँचना। शायद इसीसे दूसरा संज्ञापरक अर्थ होता है जाहल, अज्ञ, मूढ, असुसंस्कृत। अरबोंने ईरानी लोगोंको यह विशेषण प्रयुक्त किया था। उत्तरकालमें उसका अर्थ केवल ईरानी लोग अथवा ईरानी देश बना। अब वह इसी अर्थमें प्रयुक्त होता है। यहाँपर अ़ब्दुल कहता है कि वह अ़रब या अ़जम मस्नवी नहीं जानता। उसका मतलब यह प्रतीत होता है कि वह अरबी वा ईरानी भाषा अथवा काव्यधारासे परिचित नहीं है। यहाँपर अ़जमका अर्थ केवल ईरानही होगा। यौगिक अर्थ होगा ईरानी (फार्सी) भाषा। मौलाना शिबली नुअ़मानीके ग्रंथ शिअ़रूल-अ़जममें अ़जमका अर्थ ईरान या ईरानी लोकही है। अथवा अ़जमका यौगिक अर्थ होगा ईरानी भाषा।

**कुन फयकून** (बैत १२०)

कुन यह क्रिया मूल अ़रबी धातु कवनका आज्ञार्थका रूप है। कुन फयकून शब्दावलिका अर्थ है (ईश्वरने कहा) 'बन जाओ और बन गया'। यह मुस्लिम धारणाके अनुसार विश्वोत्पत्तिका मूल है। ईश्वरने चाहा और कहा कि विश्व बन जाए और वह अस्तित्वमें आ गया—इससे ईश्वरकी 'कर्तुमकर्तुमन्यथा कर्तुम्' शक्ति प्रतीत होती है। दक्खिनी हिन्दीके धार्मिक साहित्यमें इस वाक्य-प्रयोगका उपयोग बार बार आता है। कभी 'कुन फकान' का भी प्रयोग होता है।

**यूसुफ़ ज़ुलैख़ा** (बैत १८१ से १८३)

यूसुफ़ और ज़ुलैख़ा इस्लामी साहित्यमें एक प्रसिद्ध संदर्भ है। यूसुफ़ एक अत्यंत सुंदर युवक था। उसकी शरीरयष्टी अत्यंत सुघड और सुष्ठु थी। ज़ुलैख़ा मिस्र—इजिप्तके राजाकी विवाहित पत्नी थी। यूसुफ़के सौंदर्यपर वह लुब्ध हो गई थी। उर्दू, फार्सी साहित्यमें यूसुफ़ और उसके पिता याक़ूब दोनोंका उल्लेख साथ साथ आता है। एक माँसे युसूफ और दूसरी माँसे याक़ूबके और ग्यारह बेटे थे। याक़ूबका यूसुफ़पर बड़ा प्रेम था। यसुफ़के भाईयोंको यह पसन्द नहीं आता था। एक बार उसके भाई यूसुफ़को शिकार खेलनेके लिए जंगल ले गए और एक अंधे कुंवेमें उसको ढकेल दिया। घर आकर बापको ख़बर दी कि यूसुफ़को भेडियोंने फाड खाया और उसका रक्तलांछित कुर्ता बतलाया। याक़ूबको बड़ा दुःख हुआ। मिस्रको एक व्यापारियोंका क़ाफला जा रहा था। उस क़ाफलेका एक गुलाम कुंवेपर पानी लानेके लिए पहुँचा। उसने देखा कि कुंवेके अन्दर कोई व्यक्ति है। तुरन्तही डोल डाल कर यूसुफ़को बाहर निकाला। यूसुफ़का सौंदर्य अपूर्व था। उसको मिस्र ले जाया गया। वहाँपर पहूँचनेपर मिस्रके राजाकी पत्नी ज़ुलैख़ा उसपर आसक्त हो गई। मिस्रकी औरतोंने ज़ुलैख़ाकी निन्दा करनी शुरू कर दी कि वह एक गुलामपर अनुरक्त हो गई है। ज़ुलैख़ाके मनमें यह बात खटकने लगी। उसने एक बार मिस्रकी औरतोंको आमंत्रित किया। यूसुफ़को पर्देके पीछे छुपा दिया। एक छुरी और एक लीमू हर औरतको दिया गया और उनसे कहा गया कि जब यूसुफ़ पर्देसे बाहर आएगा तो हर औरत अपना लीमू छूरीसे काट दे। जब युसूफ पर्देसे बाहर आया तो मिस्रकी औरतोंने सुदबुद खो ली और उन्होंने लीमूके बजाए अपनी उंगलियाँ काट लीं। ज़ुलैख़ाने उन औरतोंसे पूछा कि तुम्हारी उंगलियाँ क्यों कट गईं? कहा जाता है इस

मामलेमें यूसुफने जुलैख़ाके प्रेमपाशमें बद्ध होनेसे इन्कार कर दिया। लेकिन इस प्रेमप्रकरणके कारण राजाने यूसुफ़को क़ैद करके कारावासमें रखा। यूसुफ़को ज्योतिषका अच्छा ज्ञान था। राजाने उसको निरपराध पा कर उसको मुक्त किया और अपना प्रधान बना दिया। इधर यूसुफ़का बाप उसके वियोगदुःखसे रो रो कर अंधा हो गया था। लेकिन यूसुफ़के कुर्तेको सूंघनेसे उसको फिरसे दृष्टि प्राप्त हो गई। यह कथा बहुत पुरानी है। उसका उल्लेख क़ुरानमें भी पाया जाता है। अब्दुलने उपरोक्त बैतोंमें जुलैख़ाके यूसुफ़पर अनुरक्त होनेकी ओर संकेत किया है।

**ज़ूल्क़रन** (बैत १९२)

ज़ूल्क़रन शब्द ईरानी (फार्सी) और दक्खिनी साहित्यमें नित्यप्रयुक्त है। यह अरबी शब्द और रचना है। ज़ूका प्रयोग उपसर्गके समान है और अर्थ होता है 'युक्त'। क़रनका अर्थ है जुड़ा हुआ। 'क़रन' का अर्थ दशवर्षोंका कालावधिभी होता है। वास्तवमें ज़ूलक़रन शब्द ज़ूल्क़रनैन शब्दका संक्षेप है। इस शब्दका अर्थ है दो युगोंसे युक्त। क़रन शब्दका द्विवचन रूप अरबी भाषामें क़रनैन बनता है। ज़ूल्क़रनैनकी उपाधि अलेक्झांडर दि ग्रेट--महान सिकंदरको लगाई जाती है। ज़ूल्क़रन या ज़ूल्क़रनैन शब्द कोशग्रंथोंमें सिकंदरही के अर्थमें दिया जाता है और अन्य ग्रंथकार उसीको स्वीकार लेते हैं। परन्तु अब प्राच्य-विद्याकोविदोंने--विशेष कर ईरान विद्याके अभ्यासकोंने यह बतलाया है कि यह वास्तवमें ईरानके हख़ामनिश (Achaemenian) राजवंशके सम्राट्, शाहनशाह दारयवहू, दार्यूश (Darius) के लिए प्रयुक्त होता है। उसका काल इ. सनपूर्व ५२१ से ४८६ निर्धारित हुआ है। इसका साम्राज्य, अरब, इजिप्त, सीरिया, ईराक, ताजिकिस्थान, मावराउन्नहर (Transoxiana), बल्ख़, बदख़्शान, अफगाणिस्थान, सिंध आदितक फैला हुआ था। उसके प्रस्तरलेख, प्रस्तरस्तंभ उपलब्ध और प्रकाशित हैं। प्रतीत होता है कि दारयवहू (धारयद्वसु) का साम्राज्य इतिहासकालमें प्रथम है। वह अपने आपको आर्य, आर्यवंशीय, क्षत्रिय, शाहानशाह (ख़्शायथियानाम् ख़्शायथिय<क्षत्रियाणां क्षत्रियः) बतलाता है। उसका इतिहास अब सर्वपरिचित है। ज़ुल्क़रनैनका सरल अर्थ है दो युगोंको जोडनेवाला, दो युगोंका स्वामी। उसका अनुवाद आर्यभारतीय भाषाओंमें युगप्रवर्तकसे ठीक ठीक हो सकता है। मरहूम मौलाना अबूल-कलाम आज़ादने अपने बृहद्ग्रंथ तर्जुमानुल-क़ुरानमें (प्रकाशन १९४५ ई. खंड २, पृष्ठ ३९९)। ३० पृष्ठोंकी एक टिप्पणी ज़ुलक़रनैन शब्दपर लिखी है। उन्होंने बतलाया है कि क़ुरान में उल्लिखित यह उपाधि हख़ामनिश राजवंशके सम्राट सायरस (सं. कुरुः) की थी। उन्होंने इतिहास आदिका वर्णन किया है। किन्तु हालके अनुसंधानसे यह निश्चित हुआ है कि उसी राजवंशके सम्राट दारयवहू (सं. धारयद्वसु) के लिए यह प्रयुक्त है।

**नौशीरवान आदिल** (बैत १९३–४)

इन दो श्लोकार्धोंमें अब्दुलने इब्राहीम आदिलशाहको नौशीरवान आदिलसे श्रेष्ठतर और अधिक न्यायप्रिय बतलाया है। अपने नायक राजाका बढ़ा चढ़ा कर वर्णन करते समय किसी प्राचीन राजाको दृष्टान्तरूप लेकर उससे नायकको श्रेष्ठ बतानेकी खोड (अनिष्ट आदत) हमारे भारतीय कवियोंमें हमेशासे पाई जाती है। दक्खिनी हिन्दीके कवियोंमें तो यह खोड घृणास्पद बन गई है। यह मीरास इन कवियोंको ईरानी भाषा और संस्कृतिसे

मिली है। लेकिन भारतीय कविभी इस व्यसनसे मुक्त नहीं थे। उदा. गुप्तवंशके सर्व-श्रेष्ठ सम्राट् चंद्रगुप्त विक्रमादित्यके चरित्रको देखिए। उसने अपने भाई रामगुप्तका राजकारणविवश वध किया और उसकी पत्नी ध्रुवादेवीको अपनी रानी बनाया। प्राचीनकाल, नियोगकी प्राचीन परम्परा, नीतिमूल्योंमें अन्तर, यह सब भूलते हुए उत्तरकालीन आस्थानी पंडितोंने चंद्रगुप्तकी इस घटनाकी ओर अंगुलिनिर्देशन करते हुए, अपने अपने छोटे छोटे क्षुद्र नायक राजाओंको विक्रमादित्यसे श्रेष्ठतर बतलानेकी वृथा कोशिश की है। यह घटना अब काफ़ी विश्वसनीयताके साथ सत्य हो आई है। यही विचार, विवेक अब्दुलके कथन-संबंधी रखना होगा।

नौशीरवान यह अनुशेरवानका अरबी अपभ्रष्ट रूप है। यह खुस्रौ (सं.। सुश्रवस्, अरबी कसरा, किसरा) सासान वंशके सम्राट् (शक ४५३ से ५००) का दूसरा नाम है। वह इतिहासमें न्यायप्रियता गुणके लिए प्रसिद्ध है। आदिल न्यायप्रियका अरबी अनुवाद है। उसका पूरा नाम खुस्रौ अनुशेरवान् है। ख्रिस्टनसेनके सासानवंशकालीन ईरान ग्रंथमें इस खुस्रौके संबंधमें काफ़ी सामग्री दी हुई है। अन्य विद्वानोंके कई ग्रंथोंमें यह विषय चर्च्य है। प्राचीन सम्राटोंमें खुस्रौका नाम स्मरणीय है। गुप्तवंशीय चंद्रगुप्त विक्रमादित्यसे यह थोडासा उत्तरकालीन है।

फ़र्हाद और शीरीन यह फार्सी साहित्यका प्रसिद्ध प्रेमी युग्म है। यह शीरीन खुस्रौकी ईसाई पत्नी थी। फ़र्हाद एक त्वष्ट्रकर्मी युवक था। यही कथा दक्खिनी हिन्दीमें भी कई कई कवियोंने पद्यबद्ध की है। खुस्रौ एक महान् श्रेष्ठ सम्राट् हो गुजरा है। वह अपनी उदारता, सहिष्णुता और न्यायप्रियताके लिए प्रसिद्ध था। उसने सात निष्कासित ग्रीक तत्वज्ञोंको अपने राज्यमें सम्मानके साथ आश्रय दिया था। मुगल सम्राट् जहांगीरने खुस्रौ अनुशेरवानका अनुकरण करते हुएही अन्यायदलितोंके लिए अपने प्रासादमें न्यायकी जंजीर लगाई थी। वह बडाही ज्ञानपिपासु था। उसने अपने राज्यके एक नगर जुन्दे शापूरमें एक बड़ा हस्पताल स्थापित किया था। उसने पहलवी भाषामें ग्रीक और संस्कृत ग्रंथोंके भाषांतर, अनुवाद करवाए थे। उसने अपना प्रसिद्ध विद्वान बुज़ुर्गमिहिर (बुज़ुर्ज-मिहिर) भारतमें भेजा था। इसी विद्वानने बुद्धिबलका खेल ईरानमें प्रविष्ट किया और उसके नियमोंका संकलन किया। बुज़ुर्गमिहिरने इसी खुस्रौके कालमें संस्कृत पंचतंत्र ग्रंथका पहलवीमें अनुवाद किया। उसका अनुवाद उत्तरकालमें इब्न मुक़फ़्फ़ाके हाथों अरबी भाषामें (शक ६७२ के पूर्व) हुआ और बादमें यह ग्रंथ सब युरोपीय भाषाओंमें अनु-वादित होता रहा। अब इस विषयका काफी अध्ययन हो चुका है (देखिए मराठी आणि दक्खिनी हिंदी, दे. व्यं. चौहान, पुणे; शक १८९२, पृ. १३१ से १५४)।

खुस्रौकी पत्नी शीरीन ईसाई धर्मकी थी। शीरीनसे पैदा हुए खुस्रौके पुत्रकी लगन ईसाई धर्मकी ओर थी। इस राजपुत्र और खुस्रौमें अन्तमें अनबन रही। इसी इतिहाससत्यके ओर अब्दुलने यहाँपर इशारा किया है। अथवा अब्दुलका आशय यह हो कि खुस्रौ इस्लामधर्मीय नहीं था। गोया उसका मन कुफ़्रसे भरा हुआ था।

**बलि और कर्ण** (बैत २००)

बलि शब्द बलही लिखा गया है। उसी प्रकार जगत्गुरुका गुरुभी गुर लिखा गया है। ईरानी लिपिमें यहाँपर ल और र को ज़र और पेश से पढना ठीक है। बलि और कर्ण भारतीय साहित्यमें प्रसिद्ध हैं। दोनों अपनी उदारताके लिए आदर्शरूप हैं।

**बिद्यापूर** (बैत २१८, २१९, २४५–४७–५०–६५–८९, ३०४, ४८२, ५२३, ६७७)
इस काव्यमें बिद्यापूर नगरका उल्लेख कई बार आया है। बीजापूर शब्दका कहीं उल्लेख नहीं। बिद्यापूरका बीजापूर यह अपभ्रष्ट रूप है। इसका विजय शब्दसे कोई संबंध न हो कर, वह विद्या शब्दसे है। इससे ज्ञात होता है मुस्लिम कालमें कई शतियोंतक बिद्यापूर शब्दही रूढ था। यह आदिलशाही राजवंशकी राजधानी थी। बीजापूर (अक्षांश १६°५०' उत्तर; रेखांश ७५°४८' पूर्व) दक्षिणमध्य रेल्वेपर है।

इब्राहीम आदिलशाहने अपने नौ-रस गीतोंमें इसका नाम बिद्यापूरही बतलाया है। वह कहता है (गीत ५६)—

**कंठ ढाल फटिक जप-माल नगर बिद्यापुरी बाहन हती**
**इबराहीम कू गोत पिता देवगुरु गनपती माता पवित्तर सुरसुती।**

ईरानीमें भारतीय इतिहास ग्रंथोंकी विपुलता है। बीजापूरके इतिहास ग्रंथोंकी भी बुहतात है। कई इतिहास ग्रंथोंमें विशेष कर आरम्भकालीन, बिद्यापूर नामका ही उल्लेख है। पश्चात्कालमें मुसलमानोंमें बीजापूर शब्द रूढ होता गया। लेकिन बिद्यापूरकी स्थानिक ग्रामीण जनता उसको अबभी बिजपूर नामसे ही पुकारती है। यही रूप कन्नड जनतामें रूढ चला आ रहा है। अब्दुलके ग्रंथलेखनके ६५ वर्ष पश्चात् नूरूल्ला नामीने अपने **तारीखे-आदिलशाहिया** ग्रंथमें केवल बिद्यापूर शब्दकाही प्रयोग किया है। उसमें बीजापूर शब्द नहीं है। इस ग्रंथ (हैद्राबाद, सन १९६४) के सम्पादक अबून्नसर ख़ालिदीने इस नगरको न समझते हुए, कुछ दूसराही पाठ सुझाया। हमारे इस विषयपर लिखे गए एक प्रबंधमें (नवाए-अदब, त्रैमासिक, उर्दू, बंबई, अप्रैल १९६६) यह ग़लतीभी बतलाई गई है। नूरूल्लाने इसी शब्दका प्रयोग तीन बार किया है।

सर्वप्रथम जब मुसलमानोंके कदम बिद्यापूरमें लग गए तो वहाँपर एक मस्जिद बनाई गई। वह वर्ष शक १२४२ रौद्र संवत्सरका है। प्रत्नलेख मराठी भाषामें लिखा हुआ है। उस लेखमें विजेयापूरीका शब्द प्रयुक्त है। विजेयापूरी शब्दभी, लगता है कि बिद्यापूरसे ही बना है। यह द् ध्वनिका ज बनकर या शेष रहा है। इस प्रकार विद्यापुर= विज्यापुर, विजेयापूर शब्द रूपांतरित हुआ है। लेख इस प्रकार है—"स्वस्ति श्री शकु १२४२ रौद्रि संवछरे श्री षुदुबुदीन राय वीजेय राज्यो दईत तं नीरोपीत मलिकू क्रिमीदीन दक्षिण वरणासि विजेया पूरी वडिल मसिती करविली" आदि।

लेकिन नूरूल्लाका समसामयिक नुस्रती इस राजधानीका उल्लेख बीजापूर नामसे ही हमेशा करता है। उसने बिद्यापूर शब्दका प्रयोग नहीं किया। नुस्रतीने अरबी-ईरानी शब्दोंके अपभ्रष्ट रूपमें ही दक्खिनीमें प्रयुक्त करनेकी प्रथा तज दी थी। वह उनका प्रयोग मूल रूपमें ही करता है। यही कारण हो सकता है कि उसने बीजापूर शब्दही प्रयुक्त किया।

बिद्यापूरके सम्बन्धमें मुंबई प्रेसिडेन्सीके पुराने गॅझेटियर, खण्ड २३—बीजापूरमें निम्न उल्लेख मिलता है :—

"Bijapur properly Vijaypur, the city of Victory is on the site of the old village of Bichkanhali. It seems to have been a place of some importance at a very early date, as, a few yards east of the main gate of the citadel, is

a large stone pillar, probably a victory pillar whose massiveness and the character of whose ornaments are said to be not later than the seventh century. It is mentioned under the name of Vijapur in inscriptions of the eleventh, twelfth and thirteenth centuries." (पृष्ठ ५८१)

यहाँपर गॅझेटीयरके लेखकका कथन कि यह विजयपूर है, दुरुस्त मालूम नहीं होता। उद्धरणके अंतिम भागमें प्राप्त विजपूर शब्दसे भी यही निष्कर्ष प्राप्त होता है। मराठी प्रत्नलेखमें इस नगरको दक्षिण वाराणसी बतलाया है। यह भी बिद्यापूरही की ओर संकेत करता है।

**अराबा** (बैत २२६–२७–३३–३५)

अराबा शब्दका प्रयोग अब्दुलने चार बार किया है। मूलतः यह शब्द तुर्की भाषाका है। तुर्कोंके ईरानमें आगमनसे यह शब्द ईरानी भाषामें रूढ हो गया। वह अलिफ और अैनसे-दोनों प्रकारसे लिखा हुआ मिलता है। डॉ. भगवत दयाल वर्माजीने अपने ग्रंथ ग्लोरीज ऑफ् बीजापूर में इस शब्दकी चर्चा इब्राहीमनामेके संदर्भसे प्रस्तुत कर, यह कहा है कि अराबा बुर्जपरकी तोप होती है। लेकिन यह सही नहीं है। अराबा बारूद सामग्री और उसके उपयोगके साधनोंपर निर्भर है। इस काव्यमें अराबा बुर्जपर और कोट यानी किलेमें होनेका वर्णन (बैत २३३) आया है। गोया अराबा बुर्ज, कोट, गड या रणमैदानमें भी हो सकता है। डॉ. वर्माजीने एक अराबा बीजापूरके बुर्जपर सुस्थित करनेके सम्बन्धमें एक प्रस्तर लेखका भी उल्लेख किया है।

नुस्रतीके दोनों ग्रंथोंमें—अलीनामा और तारीखे-इस्कंदरी, अराबा शब्दका उपयोग कई बार किया गया है। जयसिंग और शिवाजीके आदिलशाहीके साथ बने युद्धमें अराबेका वर्णन किया है। यह युद्ध खुले मैदानमें हुआ था। तारीखे-इस्कंदरीमें यह शब्द तीन बार (अध्याय ४, बैत ३१, ३९, ५१) आया है। यह युद्ध शक १५९४ में उमरानी (जिला सांगली, महाराष्ट्र) में मैदानमें हुआ था। वहाँपर मराठोंका अराबा था। गोया वहाँपर गोलाबारूद और तोपें थीं। बड़ी तोपें गाडियोंपर और छोटी तोपें ऊंटों और हाथियोंपर रखी जाती थीं। यह सब सामग्री सेनाकी रचना कर, सुरक्षित रखी जाती थी। बडी तोपोंके अतराफ़ खंदकभी खोदे जाते थे। यही वर्णन तारीखे-इस्कंदरीमें मिलता है।

**इता काम सेवट पो है यो रवा**
**कि लेना अ़राबा यो यक कर ढवा** ४.३१

**ल्हव्यां पर धसे कर दिलेरी इती**
**पडे ज्यूं कि जलती अगिन में सती** ४.३२

**मुए गोसफंद आग कूं नैं डरे**
**अ़राबे के ख़ंदक रगत सूं भरे** ४.३९

अलीनामेमें तो वर्णन बिल्कुल साफ़ है। अराबेके अर्थके बारेमें कोई शंका न रहे :—

अराबे की सन्मुक जो गाडी दिसे
क़वी तट की रेवनी सो आडी दिसे २८.१५१
यक एक् बस्ता दारू का यक कोह जान
सन्दूक़ां च गोल्यां के शीशे, की खान १५२
बडा तोप खाना यक एक जिस की तोप
ग़लोले सूं धरती का कर सीना कोप १५३
हर एक तोप बादल है पन बर्क़ बार
बरसने अगिन-जल में गोल्यां की गार १५५

**संपन्न नगर** (बैत २३८)

बीजापूर नगर बहुतही सम्पन्न और वैभवपूर्ण होनेका वर्णन अब्दुलने किया है। सातवीं शतीसे इस नगरका उल्लेख इतिहासमें मिलता है। शक १२४२ में भी इस नगरके महत्त्वके कारण इस्लामी विजेताओंको यहाँपर आना पडा। शक १४१२ में यूसुफ़ आदिल खानने— जिसन राज्यकी नीव डाली, इस नगरको अपनी राजधानी बनाया। अब्दुलके समयतक इस नगरने ११३ वर्षोंका वैभवकाल देखा था। नुस्रतीने अलीनामा ग्रंथमें बीजापूरके विविध पहलूओंका वर्णन किया है।

पदक शहर है क़ीमती बे-अदद
रतन गिर्द पूरे हिसार इस में मद २४.३१
शहनशाहे-दौरान का हो तख़्त-गाह
ग़रीबां का जम जम है जग में पनाह ३२
दुखी जिस नगर का जो यां ताक आए
जम इस शहर हौर शह ते आराम पाए ३३

बीजापूरके बाजारोंका वर्णन मुलाहिज़ा हो—

बडा शहर ख़ुश चौक हर ठार कै
यक एक चौक में चार बाज़ार कै २४.८६
दुकानां तो बस्तां सूं भरपूर नित
हर एक रस्ता ख़ूबां सूं मअमूर नित ८७
तमाशे कुं जां ख़िज़्र का नित गुज़र
किए थे मसीहा ने यां ख़ुश सफ़र ८८
मुसाफ़िर जु है बहरो-बर का नवा
देखनहार हर मुल्क का फेर नवा १०६
जब इस मअदने-कामरानी में आए
वतन यां च कर सब जहाँ भूल जाए १०७
न इस शहर-सा शहर कै दिल-पज़ीर
न ऐसी हवा क अछे बे-नज़ीर १०८

अन्तिम श्लोकार्धमें नुस्रती बीजापूरकी हवा उत्तम होनेका वर्णन करता है। अब्दुलने भी बैत २३९ में यहाँकी उत्तम हवाकी ओर संकेत किया है।

**हुलमुक** (बैत २४३, २४६)

अ़ब्दुलने हुलमुक शब्दका दो बार प्रयोग किया है। लगता है कि यह शब्द केवल मराठी भाषामें ही प्रयुक्त होता है। उसका अर्थ है बुर्ज। मराठीमें इसका रूप हुडा है। हुलमुक हुडामुख शब्दसे व्युत्पन्न होना प्रतीत होता है। डॉ. वर्माने इस शब्दकी चर्चा की है। यह हुलमुक शब्द एक ईरानी प्रस्तरलेखमें (शक १४९८–हिजरी ९८४) भी आया है। यह पत्थर उसी बुर्जमें लगा हुआ है। फार्सी शब्द है "बस्त ईं हुलमक यग़रश ख़ान बिन शरीफ़ुल्मुल्क"। इसी प्रकार जंजीरा जलदुर्ग (जिला रत्नागिरी, महाराष्ट्र) के एक बुर्जमें बिठाए गये एक प्रस्तरलेखमें भी हुलमुक शब्द प्रयुक्त है। उसका वर्ष शक १६२२ (हिजरी ११११) है। लेख है "हर दो हुलमुक बुर्ज रा कर्दा बिना सीदी सुरूर" (देखिए एपिग्राफिया इंडिका, अरबी विभाग सन १९६६, पृष्ठ ७०)।

हुडा शब्द कनडा भाषामें भी प्रयुक्त है और अर्थ है गड या कोट, दुर्ग। मराठीमें यही शब्द बुर्जके अर्थमें ज्ञानेश्वरी (शक १२१२, लेखन) में प्रयुक्त है। वह ओवी है–

**आइकैं द्वारकापुरसुहडा। मज सुकतेया जी झाडा**
**हे भेटि नव्हें हुडा। मेघांचा जाला।** ११.६६०

चंदायन आदि प्राचीन काव्योंकी समग्र शब्दसूची अप्राप्त होनेसे, यह कहना कठीन है कि आया यह शब्द हिन्दीमें प्रयुक्त है। शक १३५० के लगभग लिखे गये मराठी चोंभाकृत उखाहरण काव्यमें हुडा और हुलमुख दोनों प्रयुक्त है।

देखिए ओवी १४२७—

**नीतंब वेढीले गाढे। जैसे पणासले हुडे**
**दोन्ही आघातीची हुलमुखें। सरळे वाढताती पुढें।** २७

(राजवाडे, पुणे, शक १८३३)

**परिसंख्या अलंकार** (बैत २५१ से २५५)

काव्यकी दृष्टिसे यह ग्रंथ विशेष लक्ष्य है। परन्तु हमने इस पहलूसे इसको नहीं देखा। परन्तु बैत २५१ से २५५ में अ़ब्दुलने परिसंख्या अलंकारकी रचना की है। यह विशेष आकर्षणीय है। क्यों कि यह अलंकार भारतीय साहित्यमें बहुतही प्राचीन और भारतीय साहित्यिकोंकी सूक्ष्मतम दृष्टिकी ओर संकेत करता है। जयदेवकृत (साधारणतया शक १२०० के लगभग) चन्द्रालोकमें इस अलंकारका लक्षण है—

**परिसंख्या निषिध्यैकमन्यस्मिन्वस्तुयन्त्रणम्।**
**स्नेहक्षयः प्रदीपेषु स्वान्तेषु न नतभ्रुवाम्।।** ९५

सुबन्धु (साधारणतः शक ५००) ने अपने उपन्यास वासवदत्तामें एकही वाक्यमें इस अलंकारके १९ उदाहरण दिये हैं। शायद अ़ब्दुल दक्खिनी हिन्दी साहित्यका प्रथम कवि है,

जिसने इस अलंकारमें रस लिया है। अन्य हिन्दी साहित्यके बारेमें हम नहीं कह सकते। इब्न निशातीने (शक १५८८) भी इस अलंकारका उपयोग किया है (देखिए फूलबन, दे. व्यं. चौहान, पुणे १९६७)। इस कथनका हेतु इस घटनाकी ओर इशारा करना है कि प्रारम्भकालमें दक्खिनी हिन्दीके साहित्यिकोंका साहित्य केवल भारतीय वातावरणमें पल रहा था। उसमें ईरानी अंश बहुतही कम था।

**नौ-रस महल** (बैत ३११ आदि)

शीर्षक क्रमांक १४ में अब्दुलने बादशाहके नये प्रासाद, नौ-रसका वर्णन प्रस्तुत किया है। यहाँपर यह बात सामने आती है कि अब्दुलको ऐतिहासिक दृष्टि बिल्कुलही नहीं है। वह पुराने ढंगका पारम्परिक कवि है। इन ३६ बैतोंको उसने केवल काव्यकल्पनाओंसे भर दिया है। उसने बतलाया कि उसमें सात सीढ़ियाँ थीं। परन्तु यह केवल काव्यरूप है। डॉ. नजीर अहमदने बतलाया है नवरसपूरकी नीव शक १५२२ (हिजरी १००८) में रखी गई थी। नौ-रस महल बनानेका वर्ष बसातीनुस्सलातीन में शक १५२३ दिया गया है। अब्दुलने यह मस्नवी इस वर्षके चार वर्ष बाद लिखी। लेकिन उसने नौरसपूर नामी नया नगर बसानेका उल्लेख इस काव्यमें नहीं किया है। मुहम्मद जुबेरीने भी नौरसपूरकी नीवका उपरोक्त वर्षही दिया है। इब्राहीम आदिलशाहके गीतोंमें (क्रमांक ५१) भी नवरस प्रासादका उल्लेख है। इब्राहीमने अपनी धर्मपत्नी चांद सुल्तानाको नौरस-प्रासादका चिरंजीवित्व प्रदान किया है :—

**अवदूत सकल कला संपूरण जूं तिपुर चांद सुल्तान**
**चिरंजीव नीको नित आनंद सदा शर्फ़ सूर मानो नौरस महल कल्यान**

**बोर, कुम्मेत आदि** (बैत ४५२ आदि)

शीर्षक क्रमांक २० में अब्दुलने बादशाहके घोडोंका वर्णन किया है। उसमें वर्णन रंग, रूप, चपलता आदिके लिहाज़से घोडोंके नाम दिये गये है। परन्तु इन प्रकारोंमें कुछ घोडोंके नाम देशनामपरक हैं। जैसे बोर, कुम्मेत (बत ४५२), अरब, इराक़ी-बदख़शानी, कच्छी (बैत ४५६), तेज़ी (अरबी ताज़ी, बैत ४५९)। अ़रब शब्द आ़रबके रूपमें लिखा गया है। लेकिन यह छंदोरचनानुसारी है। तेज़ी शब्द मूल अरबी शब्द ताज़ीका अपभ्रष्ट भारतीय रूप है। यह तेज़ी शब्द नव्य आर्यभारतीय भाषाओंके प्रारम्भकालीन साहित्यमें पाया जाता है। वह मराठीमें ज्ञानेश्वरी, शिशुपालवध आदि महानुभावकालीन अवस्थामें नित्यप्रयुक्त है। चंदायन आदि हिन्दी साहित्यमें मिलता है। इतनाही नहीं, वह नित्यप्रयुक्त होनेसे अमीर खुस्रौके नुह सिपिहर में तेज़ीके रूपही में प्रयुक्त है। इससे अरबी घोडोंकी मांग कितनी अधिक थी, इस बातका पता चलता है। इराक़ अरब देशसे संयुक्तही है। इराकी घोडोंकी भी शायद कोई विशेषता हो और जनसाधारण उस विशेषताको जानते थे। बदख़शान प्रदेश पामीर पहाडियोंके आसमन्तमें उत्तरकी ओर फैला हुआ है। यह आमू दरिया और सीर दरिया या रंहा नदीकी अंतर्वेदी—मध्यका प्रदेश है। वहाँपर अच्छी नस्लके घोडे पाए जाते हैं। वह इतिहासप्रसिद्ध भी हैं। कच्छी घोडोंका भी उल्लेख आया है। शायद कविका उद्देश सिंधके घोडोंसे है। प्राचीनकालमें सिंधुप्रदेशके घोडे भारतमें प्रसिद्ध थे। ऐसे घोडोंको प्रादेशिक नाम सैंधवसे याद किया जाता था। सैंधव शब्द घोडामात्रके लिए नहीं है। यह अर्थ उसको कालौघमें बादमें मिला है।

बैत ४५२ में बोर और कुम्मेत जातिके घोडोंका उल्लेख है। बोर शब्द केवल ईरानी है। वह अरबी नहीं है। इससे संकेत होता है कि यह ईरानी नस्लके घोडोंकी ओर इशारा करता है। संस्कृत साहित्यमें ईरानी घोडोंको पारसीक कहा गया है। गोया बोर पारसीक-ईरानी घोडे हैं। कुम्मेतका अस्ल अरबी रूप कुमैत है। यह अरबी शब्द है। हो सकता है आजके अरबस्थान के कुवैत प्रदेशकी ओर इस शब्दसे संकेत हो। लेकिन इसमें अधिक खोजकी आवश्यकता है। (इस संबंधमें स्व. डॉ. पी. के. गोडे लिखित पूना ओरिएण्टालिस्ट, खण्ड ९, भाग १, २ और दे. व्यं. चौहान लिखित पूनाके भांडारकर इन्स्टिट्यूटके जर्नल, खण्ड ४८–४९, सन १९६८ के सन्दर्भ देखे जाएँ।)

महानुभाव पंथके संस्थापक श्री. चक्रधरके गुरु श्री गोविंदप्रभुका जीवनचरित्र मराठी भाषाके आद्य चरित्रलेखक माहीमभट्टने शक १२१० में लिखा है। विद्यारत्न डॉ. श्री. वि. भि. कोलतेजीने उसका संपादन प्रकाशित किया है (शक १८६६)। इस ग्रंथमें गोविंदप्रभुने घोडोंके विक्रेताओंका एक क़ाफिला देखा। रिधपूर (ज़िला अमरावती, महाराष्ट्र) के समीपवर्ती स्थानमें यह हुआ। गोविंदप्रभुने घोडोंके कुछ नाम बतलाए। वह चरित्रग्रंथमें मिलते हैं। उद्धरण है "हा घोडा नीळा पांचांसेयाचा : हा गांगा : हा कुमैतु : हा बोरु : हा सरंगा : हा अस्व जातिचा : हा गजु : हा खरू : आवो मेली जाय : या तीनीचि जाती : चौथी नाहीं म्हणे :" (लीळा १६१)।

अब्दुल माहीमभट्टसे ३०० वर्ष पश्चात्कालीन है। परन्तु यह बात विशेष आश्चर्यपूर्ण है कि दोनोंने बोर और कुमैत घोडोंकी जातियोंका निर्देशन किया है। इससे पता चलता है कि अरब और ईरानसे घोडोंका व्यापार नियमित रूपसे चलता आ रहा था।

**बारह बान सोना** (बैत ६९८)

प्राचीन कालमें सोनेके बान (सं. वर्ण) अथवा कस कई रह चुके हैं। शुद्ध सोनेके लिए प्राकृत भाषामें जच्च-सुवण्ण (सं. जात्य सुवर्ण) नामकरण था। ऐसे शुद्ध सोनेको बारह बान कहा जाता था। यही द्वादश वर्ण है। ईरानी भाषामें ऐसे सुवर्णके लिए दह-दह अथवा दह-दही (शुद्ध सोना) शब्द प्रयुक्त होता है। इससे ज्ञात होता है कि ईरानमें सोनेकी शुद्धताके दश वर्ण माने जाते थे। प्राकृतमें वह बारहि वन्नीय और हिन्दीमें बारहवाणी कहलाता है। ठक्करफेरू नामक विद्वानके ग्रंथ द्रव्यपरीक्षा (जोधपूर इ. १९६१) में सुवर्णके बारह बानतक शुद्ध करनेका वर्णन है। प्रमाणभूत शुद्ध सुवर्णको भित्ति कनक कहते थे। कुवलयमाला ग्रंथके लेखक उद्योतन सूरिने (लेखन, शक ७००) ऐसे सुवर्णका उल्लेख किया है।

इस्लामपूर्व कालमें शुद्धता परिमाणके सोलह वर्ण माने जाते थे। ऐसे सुवर्णको षोडश वर्णक कहा जाता था। महाकवि राजशेखरका काव्यमीमांसा ग्रंथ शक ९०० के लगभग लिखा गया। उसमें राजशेखरने कहा है (अध्याय १७)—

**काश्मीरीगात्रलेखासु लोलल्लावण्यवीचिषु।**
**द्रावयित्वेव विन्यस्तं स्वर्णं षोडशवर्णकम्॥**

कल्याणीके चालुक्य नरेश सोमेश्वरके ग्रंथ मानसोल्लास (लेखन शक १०५१) में

**यत्स्यात् षोडशवर्णाख्यं कोशे स्थाप्यं तदेव हि**

के रूपमें वर्णन किया गया है। इसी नामपर से ऐसे शुद्ध सुवर्णको हिन्दीमें सोलह वानी और राजस्थानी भाषामें सोलमो सोनो के प्रयोग होते आये हैं। मराठी बृहद्ग्रंथ ज्ञानेश्वरी (शक १२१२) में सोळें और साड पन्हरें (सोलह और साडे पंधरह बान) शब्दोंसे विशुद्ध सोनेका वर्णन किया गया है।

इतिहास दृष्टिसे मालूम होता है कि बारह बानका परिमाण पुराना है। उसकी कई शतियोंके बाद सोलह बानका परिमाण रूढ हो गया। इब्राहीम नामेके लेखनकालमें सोलह बानका उल्लेख आधुनिकतम होता। परन्तु अब्दुलने बारह बानको ही अपनाया है। (इस विषयके लिए देखा जाए—डॉ. आदिनाथ नेमिनाथ उपाध्येका लेख—जर्नल ऑफ् दि नुमिस्माटिक सोसायटी, खण्ड १६, पृष्ठ २७०–७४)।

# इब्राहीमनामा

## व्यक्ति-स्थलनाम-सूची

(अंक बैतोंके)

# आर्यभारतीय शब्दकोश

## १. संक्षेप

| | | |
|---|---|---|
| का.—कानडी | दे.—देशज वा देश्य | प्रा.—प्राकृत |
| फा.—फार्सी | म.—मराठी | सं.—संस्कृत |
| हि.—हिन्दी | | |

## २. अंक बैतों के

### अ

अउर–और, आरु (सं. अपर) ४९२

अं-आंक–आंख (सं. अक्षि) १८५, ६२४' ६२५, ६७६

अगत (म.)–आस्थापूर्वक, हृदयसे (सं. अगति) ३००

अंगन (हि.)–अंगण, प्रांगण ५४४

अ-आगला–श्रेष्ठ (सं. अग्रल) २७३

अगिनजाल–आगका भडका (सं. अग्नि-ज्वाला) १७१, १८८

अं-आंग–शरीर (सं. अंग) १६७, ४१८, ४६४

अंगारा–अगिन (सं. अंगार) ३२६

अंगुठी–अंगोठी (सं. अंगुष्ठिका) ५७७

अंगुली–उंगली (सं. अंगुलि) ५०८

अग्न–आग (सं. अग्नि) ६९९

अघाना–संतुष्ट होना (सं. आग्रह) २०७, ६०६, ६४६

अचपल (म)–(१) अति चपल, चंचल (सं. चपल) ३०७, ४५०, ४५१
(२) घोडा ४५०

अंजुल–दोनों हाथोंका संपुट (सं. अंजलि) ६५८

अझनू–अभीतक (सं. अद्यतन) १६५

अ-आट–आठ (सं. अष्ट) १५१, ४२१, ४८४

अठाइस–बीसपर आठ (सं. अष्टाविंशती) १७५

अडिश्ट–अदृष्ट, दिखाई न देना २०६

अत–बहुत अधिक (सं. अति) १२८, १४७, २८८

अनगंत–असंख्यात (सं. अन-गणित) ४८५

अधर–होंट (सं. अधर) ६२८

अनचित–यकायक, अनपेक्षित (सं. अन्यचित्) ४६४

अन्ध्यार–अंधःकारमय (सं. अन्धकार) ४२८

अदखिली–आधी खिली हुई (सं. अर्ध + स्खल) ६२९

अपरूप (म.)–अनोखा, अमूल्य (सं. अपरूप, अन्य अर्थसे) ३४१, ४५५, ५७१

अपस–अपना (सं. आत्मा) १५, ३१, ३१९

अपार–अनगिनत (सं. अपार) ३०२

अब्रु (अभ्रकी प्रथमा)–अब्र, मेघ (सं. अभ्र) १९७

अंबली–इमली का वृक्ष (सं. अम्ल + ई) ५४०

अभरन–परिधान, अलंकार (सं. आभरण) ४५३, ५७४

अमावुस–अमास (सं. अमावस्या) १७२

अमोलिक–अमूल्य (सं. अ + मूल्य + क) १

अंबरावती–इंद्रकी राजधानी (सं. अमरावती) ६७७

अम्रित–अमृत (सं. अमृत) १८, १९, १३८

अरत–हत–मानी, आशय (सं. अर्थ) ११७, १४४, २८८

अवतार–(१) प्रतिकृती (सं. अव+तार) २००
(२) अनुपमेय, अपूर्व ७५, २७३

असिवार–घोडसवार (सं. अश्व+वार) १४

असपत्त–घोडसवार (सं. अश्वपत्ति) ३०१

आंकुस–हथवालका हाथियार (सं. अंकुश) ४४८

**आ**

आंखी (आखइ)–कहता है (सं. आ + √ ख्या) १४२

आंख्यों (तृतीया)–आंखसे (सं. अक्षि) १३१, १६२, २४८, ३८९, ४९९, ६७६

आ-आंगन–अंगण, प्रांगण (सं. अंगण) ३९५

आंघें–आंगे, आगे (सं. अग्रे) ५३३

आज–आज (सं. अद्य) ३७४

आंझूं–आंसूं (सं. अश्रू) २४, २५१, ४१९

आट–आठ (सं. अष्ट) १५१

आड (दे.)–परदा, रोक, असरा २४८, ६५६

आडा–झुका हुआ, अर्धोन्नत (सं. अर्ध + क) ५३७

आन–दूसरा (सं. अन्य) ५८, २१३

आनना–आना, लाना (सं. आनयति) २४, ५३, ६८, १२७, ७०१

आपन–स्वयं (सं. आत्मन्) ३२२

आपीं–आप, स्वयं (सं. आत्म + इं) ४६

आंब–आम (सं. आम्र) ५३०

आर–अर, आरु, और, हौर (सं. अपर) १३५

आरसा-सी–आईना (सं. आदर्श) ३८, १४२, ३१९, ६२८

**इ**

इंदर-इंद्र–देवता २०७, ६०४ (इंद्र)

इंट–ईंट (सं. इष्टिका) ३३०, ३३६

इश्लोक–कीर्ति, जनमान्यता (सं. श्लोक) ६५९

**उ**

उगलना–बाहर डालना (सं. उत्+कल) २१, २१२

उंगत्या (दे. अूंघना)–निद्रालु, तंद्रालु ४८

उछलना–जोरसे ऊपर उठना (सं. उत् +छलन) ३३३, ६१५

उजल–चमकेला (सं. उज्जवल) २७५, ३२६, ४३४, ६९१

**उ**

उजाला–प्रकाश (सं. उत् + ज्वलक) १६९, ३२२

उज्याल–प्रकाशित (सं. उज्ज्वलित) २५

उठना–निर्माण होना, ऊपर आना (सं. उत्+ तिष्ठ) ३१३

उडना–हवा, आकाशमें जाना (सं. उड्डयन) ४००, ६५९

उतंग–उत्तुंग, उंच (सं. उद् + तुंग) ४८८

उपजना–निर्माण होना (सं. उत्+पद्यते) ६९०

उपमा–उदाहरण (सं. उपमा) २१३

उलटा–औंधा, विपरीत (सं. उत् + पर्यस्त, प्रा. उअल्लट्ट) ६४२

उलना (म.)–दो भाग होना (सं. उत् + लसति, प्रा. उल्लअ) १९९

उलास, हुलास–आनन्द (सं. उत्+ लास्) ११७

ऊंट (म.)–सुगंधी द्रव्यका लेपन (सं. उद्वर्तन, म. उटणे) २७५, २८०, ६४५

ऊंट–पशुविशेष, शुतुर (सं. उष्ट्र) ३०६, ४८८, ५३४

**ए**

एकत (म. एकटा)–अकेला (सं. एक+ट) ३७

एकन्त–अकेला (सं. एक + अन्त) ५८७

**ओ**

ओट–होंट (सं. ओष्ठम्) ६४१

ओडन–चादर (सं. उपवेष्ठन) ३०८, ४२५

**क**

कई–करता है (कयना, करना, सं. √ कृ.) २५६

कछुवा–कूर्म (सं. कच्छप + क) १४७, ३०९

कंचन–सुवर्ण (सं. कांचन) ६९

कंचली–सांपकी केंचुली, कांचली (सं. कुंचुलिका) ४४२

कदम–नारिंगी रंगके सुगंधी फूल (सं. कदम्ब) ३७१

क

कधीं (म.)–कब (सं. कदा) ३७५, ७१०
कंकरी–कंकर, स्वल्पमात्र पत्थर (सं. कर्कर) ७०७
कन–समीप, कन (सं. कर्णे) ७०८
कपाल–पेशानी (सं. कपोल) ४२४, ४३२
कपूर–काफूर (फा.) (सं. कर्पूर) १३३, ४०२
कपोलों (तृ.)–गालसे (सं. कपोल) ३०३
कड-रडा (दे.)–भूरे रंगका ४५२
कयन–करना (सं. √ कृ, कृणोति) ३९९
कयना–कहना (सं. √ कथ्) ६६३
करन–कर्ण, पांडवोंका भाई (सं. कर्ण) २००
कए–करना (सं. √ कृ. का रूप) १३, ६६३
कलंक–दाग, धब्बा (सं. कलंक) १७३
कलाना (म. कालवणे, दे.)–मिश्रित करना ३३३
कली (म.)–चूनेका कंकर ३२७
कलेजा–दिल (सं. यकृत्) ४०९
कवचित–विरला (सं. क्वचित्) ६६८
कंवल–फूलविशेष (सं. कमल) १४७, २०२, २७६, ५८५
कंवारी–कुंवारी (सं. कुमारी) २३
कसना–(१) कसोटीपर घिसना (सं. कष्) ६९८
(२) दृढ बांधना (सं. कर्षण) २७८
कसौटी (म. हिं.)–कसवटी (सं. कष+वटी) ६१०
कहन–कहना (सं. कथन) ६८२
कहानी–कथा (सं. कथनिका) १८१, ६९३
काज–काम (सं. कृत्य) १९६, ३२८
काजल–अंजन (सं. कज्जल) ३२१
कार (म. काळा)–काला (सं. काल) ६९१
कार-डना–निकलना (सं. कर्षण) ६५२
कान–खन, खान (सं. खनि) १२५, १३४

क

कारी–जख्म करनेवाला (सं. √ कृत्–जख्म करना) ३१०
कालवा–नहर पानीकी (सं. कारित+क, देखिए फा. कारेज, सं. √ कृ, कारंजा) ४८३
कास (म.)–कांछ, लांग (सं. कच्छ) ६७०
कांसा–बरतन (सं. कास्य) १७, १९, ५५९
कि–अथवा (सं. किम्) १६, २०, २२, २१९, २२१, २२५, २३४, ३०३, ३०९, ४३५, ४३६, ४३७, ६०५
किता-ती–कितना (सं. कियत्) २१७, ३४८
किया–कर दिया (सं. कृत) २६४
किरनों (तृ.)–किरनोंसे १६६
किवाड-र–द्वारका पट (सं. कपाट) २९९
कीरत–प्रसिद्धी (सं. कीर्ति) ४८४, ६९१
कील-ली–कूंजी, कीली (सं. कील) ११३, ६९५ (°ली)
कुंड–गोल पत्थरका बरतन (सं. कुण्ड) ६३३
कुंडल–(१) कर्णभूषण (सं. कुण्डल) २३०
(२) सर्पका गोलाकार शरीर जमाना ४२३
कुंडाला–कुंड, गोलाकारबरतन (सं. कुण्ड+ल) २२३
कुंदन–सोनेमें लगानेका पत्थर (सं. कुंड) ७७, ३४२
कुंब–घडा, घागर (सं. कुंभ) ६४१
कुम्हलना–मुरझाना ७१०
कुहार–एक शिकारी पक्षी ६७१
केली–केलाका पौधा (सं. कदली) ५३८, ७४२
कैरी (म.)–कच्चा आम (कानडी काई) ५३१
कोक–कामशास्त्रका लेखक, कामशास्त्र २८८
कोट–भूस्थित किला (सं. कोट्ट) २३४, ३२१
कोठरी–कोठा, कमरा (सं. गोष्ठ, गो+स्थ) ६१७
कोती (म. कोलती, कोलीत)–जलती हुई छोटीसी लकडी २५

घ

घड (म.)–झाडपर का फलोंका समूह (सं. घट) ५३६
घरी-डी–कालका विभाग (सं. घटि) ६८३
घाट–नदीका स्थान विशेष (सं. घट्ट) १२६
घालना–डालना (सं. घटन) ४०३, ४२३
घाव–मारना, आघात (सं. घात) २५५, ४०५, ६९९ (°वु)
घास–तृण (सं. घास) ४१८
घुंघरू–बजनेकी गोल गोलियां (घुन-घुन+रूप) ६४३
घुंघरमाल–घुंघरुओंकी बैलोंके लिए माला (घुन-घुन+रूप–घुंघरू) ५३१
घेरना–आवृत्त करना (सं. ग्रहणम्) २३६
घेरी–चक्कर, चकराना ३८७
घोटना–पीना (सं. घुट्) २७५
घोडा–अश्व (सं. घोटक) ५३५
घोसला–पक्षीका घर (सं. कुशालय+क) १८५

च

चकवाह–सुरख़ाब, पक्षिविशेष (सं. चक्रवाक) १९१
चंगूल–चुंगल, चिडियोंका पंचा (सं. चतुः+अंगुल) ४०१
चट (म.)–इच्छा, रुचि (सं. चष्) ५१०
चमत्–चमत्कृत, अजब (सं. चमत्) ४६६
चाक–आंखा (सं. चक्षु) २३६
चाक–पय्या, गाडी का गोलाकार पय्या (सं. चक्र) ६२६
चांदना–चांदनी, चंद्रप्रकाश (सं. चंद्रमस्) २१
चिनगी-चिंगी–जलती जोत (सं. चित्+अग्नि) ३२३
चिरी-डी–चिडिया (सं. चटक) ३६, १८५

च

चीर (म.)–सांध, द्वैधता (सं. चीर्ण) ६११
चींटी (दे.)–च्यूंटी २१६
चीरना–फाडना, द्विधा करना (सं. चीर्ण) ६१०
चुलू-चुल्लू–चिल्ली (सं. चुलूक) १५२
चुवना (दे.)–चूना, टपकना ३०३, ३३१, ३८९, ५३२ (चूचू), ६८९
चूना–एक क्षार भस्म (सं. चूर्णक) ३२७
चोंच–पक्षिमुख (सं. चञ्चु) २१५, ६१३
चौक–चौराहा (सं. चतुष्क) २२०
चोटी–स्त्रीके बंधे हुए लटकते बाल (सं. चूडा) ६१४
चौड–चौडे, विस्तृत (सं. चतुः+ऊढ) ६०३
चौ-तर–चबूतरा, कट्टा (सं. चतुः+स्तर) ३४२
छन्द–प्रकार २०८
चौफेर–चारों ओर (सं. चतुः+फेर) १४८
च्यूटी (दे.)–च्यूंटी, चींटी ७०५

छ

छजा–छाजन (सं. छादन) २२१, २८१, ३८७
छतरी–छत्र (सं. छत्र) ५३६
छला (दे.)–दाग, कलंक १८९, १९०
छप–छप्पन (सं. षट्पञ्चाशत्) ६७७
छाना–परिश्लिष्ट करना (सं. √ छाद्) ६०४
छान्ह–छावूं (सं. छाया) ३१, १५६, २३५, २३८, ३२०, ४८५
छाल–ऊपर फेकना, उचकना (सं. उच्छालन) ४६२, ४६५
छाल–छिलका, चमडा (सं. क्षाल) ५४४
छावा–व्याघ्र, सिंहका बच्चा (सं. शावक) ४३१
छिनों (तृ.)–छिन से (सं. क्षण) १९८
छिपना–आसरा लेना (सं. छिप्) ३१७
छीत–छींट, सीकर (सं. √ छिद्) ३७२

## त

तलवा–पादतल (सं. तल + पाद) ३०८, ५४०
तलावो (प्रथमा)–तलाब, तालाब (सं. तडाग) ३५५
तल्हार–नीचे (सं. तल + कार) ५९४, ५९५
तहां–वहाँ (सं. तत्र) ४६३
ताईत (अरबी तअ़्वीज़)–मंत्रपूत डिबी ५७८
तांक–टांक, लिखावट (सं. टंकनम्) १३९
तांकना–देखना, अवलोकन करना (सं. दृक् ?) २२२
ताड–ताडका झाड (सं. ताल) ५३३
तान–संरक्षण (सं. त्राणम्) २०५, ५६१
ताप, ताब (म. ताव)–गरमी, उष्णता (सं. तप्त) १६१
तारो (प्रथमा)–तारा, सितारा (सं. √स्तृ) २९, १७६
ताल (म. टाल)–वाद्यविशेष (सं. ताल) ६५३
तिजा–तीसरा (सं. तृतीयक) ५६
तिरप (म. दे.)–तिरछा, टेढा (सं. तिर्यक् + प) २११, ६७०
तिरप (म. तिरीप)–कोंवली धूप ३०९
तिरप खाना (म.)–सर्दीमें धूप खाना ३०९
तिरास्थान–? ६६०
तिर्लोक–त्रिलोक (सं. त्रिलोक) ३४, १२१, ४०७, ४२६, ६८८
तिवासी–फर्श, बिछाना (सं. त्रि+वासम्) ११५
तुंब–इंद्रका गवय्याविशेष (सं. तुम्बरु) ६७९
तुरंग–घोडा (सं. तुरग, तुरंग) ४५१
तेज़ी (अरबी-ताज़ी, अपभ्रष्ट, अमीर खुस्रौकी फार्सी कृतियोंमें अपभ्रष्ट तेज़ी)–घोडा ३०७, ४५९, ४७१
तेलिया–तेल (सं. तैल) ६४६
तोल–भार, वजन (सं. √ तुल्) ३७७, ४४३
तौलना–वजन करना (सं. √ तुल्) ६४८
तौ–तब (सं. तावत्) १८, २७१, ३७७, ५११

## थ

थरकना (म.)–कंपित होना ६२१
थरथरना (दे.)–कांपना, कंपित होना (सं. स्तर ?) ४१४
थरना–ठहरना (सं. स्थिर से क्रिया) १३७
थान–ठिकाना (सं. स्थान) १३२, ३०७, ५४८
थाप–गानेकी लकीर (सं. स्थाप्) ६६०
थार–ठिकाना (सं. स्थान) ४१, १२४, १७९, २९०, ३१७, ४९५
थाल–थाली, परात (सं. स्थाली) २४९, ३२१, ३५४, ६२२
थिन्हना (म.)–एकत्रित होना (सं. √स्त्यै, स्त्यानम्)
थीं, थे–से (सं. तस्) ३४६, ६९०
थीर–कायम, अचल (सं. स्थिर) २५६, ३०७, ३७७
थीरना-थिरना–ठहरना (सं. स्थिर) ३०७, ६३५
थोरा–थोडा (सं. स्तोक) १४४

## द

दक्खिन–दकन (सं. दक्षिण) ८७, १८२, ४७९, ५१३, ५१६, ५२३
दडना (म.)–डरसे छिपना (सं. दर) २०६
दपटना (दे.)–डपटना, दौडना १०५
दमना (म.)–थकना, मांद होना (सं. √दम्) ३२५
दर्दो (तृतीया)–दर्दसे, दु:खसे २५२, २८७, ४१०
दऱ्या (फा. दरया का अपभ्रष्ट)–समुद्र (सं. त्रयस्) ४१२, ४१३, ४३०
दल़–पुट, पंखडी १९८
दहलीज (फा.)–द्वारके समीपके कमरे ३०२, ३०४

### न

नहार–बिना आहारका, भूखा (सं. न + हार) २०४
नांच–नाचना (सं. नृत्य) ६६५
नाचना–नृत्य करना (सं.√नृत्) ४६१, ६५०
नारद–इंद्रका गवय्याविशेष ६७९
नागिन–सर्पिणी (सं. नागिनी) २०
नाड–नाडी, नस (सं. नाडी) ५०५, ५०८
नाडा (म.)–रस्सी, डोरी (स. नाडी) ४३९
नाब–तौंदी, ढोंढी (सं. नाभि) ६६०
नामदार (फा.)–प्रसिद्ध (सं. नामधारिन्) ३३५
नालिएर–नारिएल (सं. नारिकेल) ५३६
नित–सदा (सं. नित्य) ३३१
निपाना–निपजना, निर्माण करना (सं. निष्पद्यते) ३७, ३७६, ४७६
निशान (म.)–ढोल, नक़ारा (सं. निःस्वानम्) ४०६
निस–रात (सं. निशा) १८, २२, १४९, ५८९
नेह–प्रेम (सं. स्नेह) २८७
नैन–आंख (सं. नयन) १३७, २५१, ४१९
नौ–नया (सं. नवकम्) ५१
नौ–आठपर एक (सं. नवम्) ७७, ७८, ७९, २०३, २५८, ३१३, ३७९, ५९१
नौ-जोबनी–नवयुवती (सं. नवयौवना) ६३७
नौ-रस–प्रासादनाम ३१२, ३१५
न्हना–नन्हा, छोटा (सं. न्यञ्च) ५३१
न्हासना–तितरबितर हो भागना-दौडना (सं. नि + √अस्) १३६

### प

पंखडी–कलीका पान (सं. पक्ष+ट) ६२८, ६३६
पंखा–वीजन (सं. पक्ष) ४२१
पंख्यो (तृतीया)–पंख, पर से (सं. पक्ष) १३७
पच–पांच (सं. पञ्च) २६६
पचमुक–पांच मूंह (सं. पंचमुख) २१२
पठना–भेजना, रवाना करना (सं. प्र. + स्थापयति) २९८
पताल–लोकविशेष (सं. पाताल) ४२३, ५८८ (पाताल), ६९१
पथर–पत्थर (सं. प्रस्तर) १३०, ३३५, ३३६
पदक–पदचिन्हांकित वस्तु, तमग़ा (सं. पद + क) १३२, २२६, २४१
पंत–मार्ग (सं. पंथ) १४
पतुली (दे.)–पहुंचे में पहननेका गहना २७५
परकास–रोशनी (सं. प्रकाश) १५५
परगट–आविष्कृत (सं. प्रकट) ७२, ११४, ३८५
परछर–परछाय (सं. प्रतिच्छाया) ५६०
परताना–पलटाना (सं. पर्यस्त) ६७३
परताप–पराक्रम, शौर्य (सं. प्रताप) १८७
परन–पत्ता, पान (सं. पर्ण) १८९
परना–पडना, गिरना (सं. पत्) १७२, १८७, १८८
पर-रिस–परीस, पारीसका पत्थर (सं. स्पर्श) ९१, ९२, ३३५
परसाद–दानवस्तु, कृपा (सं. प्रसाद) २१०
परिया–पडा हुआ (सं. पतिता) २३८
पलीटना–लपेटना (सं. लिप्त) ६४०
पलौ, पलू–पल्लू (सं. पल्लव) ४१७, ४४७
पल्हाना–पलुहाना, पल्लवित करना (सं. पल्लव) ६०७
पसारना–फैलाना (सं. प्र + √सार्) २१२
पहार–पहरा (सं. प्र + हार) ३०२
पहार–पहाड, पर्वत (सं. पाषाण) ४१७, ४४४
पहुप–फूल (सं. पुष्प) ६५९
पाए (म.)–पाय, पावूं (सं. पाद) १६०, ५४८
पांक–पंख, पर (सं. पक्ष) २१६

### प

पाच–रत्नविशेष, पाचू १११, ११२, ७०८
पातर–कलावंत स्त्री, नर्तिका (सं. पात्र) २७२, ६०८, ६८०
पान–पत्ता (सं. पर्ण) ५४२
पाना–प्राप्त करना (सं. प्र + √आप्) ८६, १५४
पानी–जल, नीर (पं. पानीयम्) ४१२
पारा–धातुविशेष (सं. पारद) ६२२
पावली (म.)–पाऊल, क़दम (सं. पाद+ल) १०६
पावा (म.)–बासरी (सं. प्रा.+√वे) २५२
पास–समीप (सं. पार्श्वे) २०५, ७०६, ७०७
पिंजरा–पञ्जर (स. पञ्चर) ५८६
पिटारा–पेटी (सं. पीटिका) ९
पीट–पीठ (सं. पृष्ठ) ६१४
पीव–प्रियकर (सं. प्रिय) १८
पुकारना–आवाज देना (सं. पूत्+√कृ) ३०६
पुंज–ढेर, राशि (सं. पुञ्ज) २७६
पुरोना–पिरोना, गूंधना (सं. प्रोत) १६६
पुलपुल (दे.)–पिलपिला, जो दबानेसे धंसे २२५
पुलुत–एक रागविशेष (सं. प्लुत) ६६४
पुकराज–पीतमणि (सं. पुष्पराग) ३६४
पूछना–मालूम करना (सं.√पृच्छ्) ९८, ४७७
पूंगडा–युवा, अल्लड, अप्रौढ, उन्मत्त (सं. पोगण्ड, पौगण्ड+क, मराठी पुण्ड) २२, २६, २४५
पूंच–पूस, द्रुम (सं. पुच्छ) ३६७
पूरन–परिपूरित (सं. पूर्ण) ३५, १६४
पूर–पूरा, पूरित (सं. पूर्ण) ३६७
पेर-पेड–वृक्ष (सं. पिण्ड) ५८, ६०, ५००
पेल्हार (म.)–उधर बाजू पेल्हाड, परे (सं. प्रति + प्राकृत इल्ल) २१६, ४५८
पेंजानी–पायजेब (सं. पद + झण) ३६९

### प

पैठना–प्रवेश करना, घुसना (सं. प्र+विष्ट) ६४९
पैनना, पेन्हना–पहनना (सं. परिधान) २३४, २५३, २६५, २७५, ३४७, ५७३
प्यासा–तृषित (सं. पिपासा) २१५

### फ

फटिक–शुभ्र रत्नविशेष (सं. स्फटिक) ६७२
फन–नागका शीर्ष (सं. फण) ६१५, ६५२
फनस (म.)–वृक्षविशेष (सं. पनस) ५३७
फाटना–फट जाना, द्विधा होना (सं.√स्फाट्)
फिरना–पलटना, लौटना (सं. प्रेरण) १९६
फुंदना–गुच्छ, झब्बा (दे. फूल+फंद) ५३६
फूल–पुहुप (सं. √स्फूर्ज्) ६४२, ७११
फोर-डना–द्विधा करना (सं.√स्फोट्) ६५७

### ब

बखान–वर्णन (सं. व्याख्यान) ३८४, ५१५, ६५५, ७०२
बचा-च्चा–बालक (सं. √वत्स) ६३०
बच्न–बचन–वाणी (सं. वचन) ६९, ७०, ९५ ९८, ११२, ७००
बजंतर–बाजा (सं. वाद्यतंत्र) २९६, ३०६, ५२६
बजाना–बजना का प्रेरक (सं. √वाद्) २७१, २९६, ५२६ (बजना)
बती–बत्ती, बाती (सं. वर्ति) ५९८
बदल (फा. बादल का अपभ्रष्ट)–मेघ ५९६
बन–उद्यान, वाटिका (सं. वन) ४००, ५१६
बनपत्त–वृक्षराज (सं. वनस्पति) ५०२, ५४६
बंद–एक दिलके (सं. बंध) ६६६
बंधिया (म.)–कैदी, बंदी (सं. √बध्) ३१७
बरन्हा–रंग (सं. वर्ण) ७६, ६९०

ब

बरमंड–विश्व (सं. ब्रम्हाण्ड) १७६, ४०८
बरसगांठ–जन्मदिन (सं. वर्षग्रंथि) ५९०, ५९१, ६८४ (ट)
बर्स–साल (सं. वर्ष) ७११
बर्न–रंग (सं. वर्ण) १६७, ३२१
बल–विष्णुका दाता (सं. बलि) २००
बल–बली, प्रबल (सं. बलिन्) ३९०
बसंतरावु–वसंतराज (सं. वसन्त+राजन्) ५०४, ५१५, ५२४, ५२७, ४४८, ५५०
बहना–पानीका चलना (सं. √ वह्) ४१९
बहुतेकी–करीब करीब सब (सं. बहुत+एक) २८७
बागुला (म. बगळा)–बगल, बक (सं. बक+ल) ४३६
बाज–विना, बिन (सं. वर्ज्य) ६९७, ६९८
बाजा–ध्वनि (सं. वाद्यक) ४२६
बान–शर, तीर (सं. बाण) ६९८
बांदना–बांधना (सं. √ बध्) १५६, २५३
बार–ठिकाना, स्थान (सं. वार) ४१, ४२, १७८, ३००, ६०१
बार–फलसंभार (सं. भार) २९१, ५३५
बारह–दसपर दो (सं. द्वादश) १७४, ६९८
बाव–हवा (सं. वायु) ४७३, ४७४, ४७६, ४९३
बावल–गतचित्त (सं. वात + लग्न) ४९६
बासुक–विष्णुका वाहन (सं. वासुकि) ४३३, ६९१
बाहना–बुलाना (सं. √ ह्वे) २३
बाहना–भाना (दे.)–डालना, घालना २२६, २४१, ५५७
बिखरना–फेक देना (सं. वि. + √ कृ) २४, ३२३ (बिखार), ३२७

ब

बिचार (फा. अपभ्रष्ट)–बेचारा, अगतिक, निराधार १४१
बिच्च–बीच, मध्ये (सं. विच) २५, २२८
बिछर-डना–बिछुर-डना (सं. वि. + प्राकृत छुट्टो) २१०
बिजली–विद्युत (सं. विद्यूत + ल) ४०९
बिध्या–विद्या, विद्यापूर, बीजापूर (सं. विद्या) २५७
बिद्यापूर–बीजापूर (सं. विद्यापूर) २५०, ४८२, ५२३, ६७७
बिद्याभरी–विद्यापूर्ण (सं. विद्या + √ भृ) २८९
बिन–सिवा, अतिरिक्त (सं. विना) ११०, ६९९, ७००
बिरद–विरद (सं. बिरुद) ३८४, ५४०
बिस–ज़हर (सं. विष) १८
बीडा-रा–सुरचित तांबूल, पान (सं. वीटक) २७५
बुका (म., हिं.)–सुगंधी गंधचूर्ण २६३, ५९९
बु-बूझनहार–समझनेवाला (सं. √ बुध्) १११
बुज-झना–बुझना, अग्निका शांत होना (सं. √ बुध्) ३२५, ३५६
बुद-द्द–विचार (सं. बुद्धि) ७५, ८८, १३२, २७२, ४१७, ४९५
बूंजना–बूझना, समझना (सं. √ बुध्) १९५
बूझक–पारखी, समझनेवाला (सं. √ बुध्) ३७९
बूझना–समझना (सं. √ बुध्) ११, ४७, ४७७, ६९७
बूंद–बिंदू (सं. बिन्दु) ३, ३६
बुऱ्हा-ढा–बूढा (सं. वृद्धक) ४२
बेग (म.)–वेगी, भेगी, त्वरा, जल्दी (सं. वेग) ५१९, ६९४
बेत–बांबू (सं. वेतस्) ३००
बैठना–बैसना (सं. उप + विष्ट) ३१४
बैसना–बैठना (सं. उप + √ विश्) ६१३
बोट (कानडी, म.)–उंगली ३६४

**भ**

भटी–भट्टी (सं. भ्राष्ट्र, प्रा. भट्ठ) ३२४
भन्त–भांत, भांती, प्रकार (सं. भान्त) ५२०, ५८९
भर–परिपूर्ण (सं. √ भृ) ३८५, ४०८, ४८५
भरान–भरा हुआ (सं. भर) ३८५, ४०८
भ-भंवर–भौंरा (सं. भ्रमर) ३, १३७, १४९, ३५६, ५०४, ५३२, ५८२
भाल–बरछी (सं. भल्ल) ५२१
भावु (भाव)–भाव, मनीषा (सं. भाव) ५०२, ६६५
भिंगरी (म.)–भौंरा (सं. भृंग + ट) २
भिखारी–याचक (सं. भिक्षा + कार) २८६
भिजना (म.)–भीगना (सं. अभि +√ अञ्ज्) ४२४
भीतर–अंदर, में (सं. अभ्यंतर) २३३
भुईं–जमीन, भू (सं. भूमि) ४११, ५४९
भेदिक–गुप्त ज्ञान (सं. भेद + इक) २८८
भेस–वेश (सं. भेष) ३२७

**म**

मकर–द्वारभूषण (सं. मकर) २२७
मं-मांगना–चाहना (सं.√ मृग्) १६०, १६७, २०५, ३७६
मछली–मीन (सं. मत्स्य + ल) ३०९
मंजार–देखिए मंझार ४८०
म-मंझार–में, बीच (सं. मध्य+कार) १३३, ३१७, ३३१, ४३५ (मझार)
मंडल–गोल वाद्यविशेष (सं. मंडल) २५५
मंडली–जन, लोक (सं. मंडल) ८
मंडान–रचना, मांडना (सं. मण्डनम्)
मढना–लपेटना (सं. मण्डन) ५५६
मतंग–उन्मत्त हाथी (सं. मत्त + ग) ४८८
मंडवा–मंडप (सं. मंडप + क) ५४४
मद–बीच (सं. मध्य) ५३, २३०
मदकल–हाथी (सं. मदकल) ४२८, ४३१, ४४६

**म**

मन–रत्नविशेष (सं. मणि) १६६, २५८, ३९६
मनजीत–मनको जीतनेवाला, अचपल ४६८
मनका–मणि (सं. मणि + क) २२४
ममोलना–ममोडना, घुंसाना ६२४
हावत–हथवाल (सं. महामात्र) ३०५, ५३२
मांगना–चाहना (सं. √ मृग्) २०५, ३७६
माढी (सं. माडी)–मालेपर का घर (देशीनाममाला हेमचंद्र, माडिअं ६.१२८) २३९
माता–मत्त, मस्त (सं. मत्त) ३०५
मान्ह–में, मध्ये (सं. मध्य) २३८
मार-ड–माड, माडका वृक्ष ५३४
माल (म. माळ)–माला, समूह (सं. माला) ४३६
माव (म.)–जादू (सं. माया) ११
मावा–(१) प्रकृति (सं. माया) २८ (२) सत्ता, निष्कर्ष (सं. माया, मात्रा) ३६९, ४४७
मालिनी–मालन (सं. मालिन्) ८१
मिन–में बीच (में का संक्षेप) ६८५
मिर्त–पृथ्वी (सं. मृत्यु) १४६, ५८८
मिरगलोचनी–हरिणाक्षी (सं. मृगलोचना) २७४
मिलिया–मिला, प्राप्त हुआ (सं. मीलित) ५४
मीत–मित्रता (सं. मित्र) ३, ६९५
मीन–मछली (सं. मीन) ३०७
मुए–मरे (सं. मृत) ५१४, १९ (मुवा)
मुखडा–मूंह, आनन (सं. मुख+ट) ६२२, ६२३
मेख (म. मेख)–मेख (सं. मियुख) ४३७
मूगी (म.)–मुंगी, च्यूंटी (प्रा. हेमचंद्र मुअंगी, सं. वम्र ६.१३४) ७०६
मेग–अभ्र (सं. मेघ) ३२, २५१, ४२०, ६८९
मोंकला (म. मोकळा)–मुक्त, विलग (सं. मुक्त + ल) २२४

म

मोती–समुद्रमें पाया गया रत्नविशेष (सं. मौक्तिक) २२७, ३२१
मोत्यों (तृतीया)–मोतीसे ३४८, ४७०
मोरे–मोर (सं. मयूर) ५८०, ६१२

र

रखना–सुरक्षित करना (सं. √ रक्ष्) ९६
रगडना (दे)–खुदलना (प्रा. रग्ग+ड) २५४
रंगभूम–नाटचशाला, रंगमंच ६४७, ६४९, ६५८
रचन–योजना (सं. रचना) ११९
रचना–योजना करना (सं. √ रच्) ११४, १२०, १२१
रज–कण (सं. रजस्) ८९
रज़ाना (अ. रज़ा)–पसंद आना, संतुष्ट होना ५६९
रतन–मणि (सं. रत्न) ५१
रश्कों (तृतीया)–रश्क, द्वेषसे ३२४
रहन ठावूं–रहनेका स्थान (दे. रहना, स्थान) ३१२
रहसी–भविष्यत्, रहेगा ४२४
राक–राख (सं. रक्षा) ३२६
राकना–संभालना (सं. √ रक्ष्) २३६
राखिइ (भविष्य)–राखेगा, रखेगा ३७७
राजना–राजा (सं. राजन्) २४३, २४४
रानना–राज्य करना (सं. राजन् से क्रिया) १८४
रानी–राजपत्नी (सं. राज्ञी) ५७०, ५७१
रावा–तोता, शुक (सं. रावक) ४९१, ५८१
रावुत–राजपुत्र, योद्धा (सं. राज+पुत्र) ५३५
रावो (प्रथमा)–राजा (सं. राजन्) ३०१, ३८२, ५०२ (वु), ५१२ (वु), ५१८ (वु) ५४६ (वु), ५६७ (वु)
राए–राजा (सं. राजा) ५६६
रास–ढेर, समूह (सं. राशि) ८२, २०१, ३३९

र

रिद–सिद्धीविशेष (सं. ऋद्धि) ८६
रुत–मोसम, हंगाम (सं. ऋतु) ५२०
रोप (म.)–पौधा (सं. रोपण) ५२२
रोंघटा–केस, बाल (सं. रोम+क+ट) ४१८

ल

लक–लाख (सं. लक्ष) ३७, ११०, १५८, ४३१
लक–लग, तलग (सं. लग्न) १६५
लकडी–डंडा (सं. लगुड) ४०५
लकाका–चमकेला ३२५
लखन–चिन्ह, गुण (सं. लक्षण) १८२
लगना–जुडना (सं. √ लग्) ३१६
लग्ग–लग, तक (सं. लग्न) ४५
लंगना–पार करना (सं. √ लंघ्) १०७
लंगेकारी–नग्नरूप (सं. नग्न + कार) ५४१
लच्छ–व्याज, बहाना (सं. लक्ष्म) ३१०
लच्छमी–श्री (सं. लक्ष्मी) ८५
लड–माला, हार ६३१
लडकना–लटकना, टंगना (सं. लटनम्)
लडना–डसना, काटना (सं. √ दश्, दष्ट) १४१
लर (दे.)–लहर, कालवा ४१९
लहडा–लडा हुआ, डसा हुआ (सं. दष्ट) १४१
लहना–प्राप्त होना (सं. √ लभ्) ६९८
लाक–लाख (सं. लक्ष) ४५, १९४
लाखो (लाखों-तृतीया)–लाखसे १७९, २१६, ६८०
लाज–शरम (सं. लज्जा) २९८
लात (दे., म.)–पादप्रहार (स. लत्ता) १०६
लालच–अभिलाषा (सं. लञ्चा) २०५
लीलम–रत्नविशेष, नीलमणि (सं. नीलिमन्) २६२
लुबदना–मोहित होना (सं. लुब्ध) २७१, ४९०, ४९२
लोहू–खून, रक्त (सं. लोहित) १३६, ३८९, ४१२

## व

व (फा.)–और (सं. उत) २८२
वारना–अर्पित करना (सं.√वारयति) १२९
वडूर–रत्नविशेष (सं. वैडूर्य) ३६३

## स

सकी–मित्र, दोस्त (सं. सखिन्) ३५६, ३५८, ४२१
संग–साथ (सं. संग) ६८८
संघात–साथ (सं. संगत) ६४८
संघात–समूह (सं. संघात) ६६१
सजना–अलंकृत होना (सं.√सज्ज्) २४०
संच–समूह (सं. सञ्च) ६६६
संजिया–संजोगना, संजोना, संहिता तयार करना ५६
सटना (दे.)–डालना, फेंकना ३३३, ३९६
सडना–जीर्ण हो दुर्गंधी होना (सं.√सृ, सरण) ७१०
सत–सौ (सं. शत) २२१
संद–सांध, भेद (सं. संधि) ६६६
सपरना (दे.)–सपडना, हस्तगत, प्राप्त होना (हेमचंद्र–दे. ना. मा. संपडिअ ८.१४) ५४, ५५
सपूरन–परिपूर्ण (सं. संपूर्ण) २७३
सब–अशेष (सं. सर्व) २३७, ३७२
सबद–सार्थ ध्वनि (सं. शब्द) १२१, ४२५, ६०७
सबा–सदस्, मज्लिस (सं. सभा) २७३
संभालना–सुरक्षित रखना (सं. सं+√भाल्) ४२४, ५००
समन्द–दर्या (सं. समुद्र) १७७, १८६, ३०४
समन्दुर–समंदर (सं. समुद्र) २११, ६९०
समुंद–समंदर (सं. समुद्र) ३२, ३३, १२२, ७०४
सम्ज (दे.)–समझ, जानकारी १३

## स

सयस–हज़ार, सहस (सं. सहस्र) १५९
सर–बराबर, समान (सं.√सृ) ९०, १७०, ६७२, ६८१
सरक (हि.)–जाला, रस्सी ५३०, ६२४
संरग–स्वर्लोक (सं. स्वर्ग) १४६, २७१, ३७२, ४३९, ५८८, ६७४
सरन–शरण (सं. शरणम्) ८६
सरना–(१) निकलना, पेश होना (सं.√ सृ.) ६, ५३
(२) स्पष्ट होना ७४
(३) समाप्त होना ३६
सरप–सांप (सं. सर्प) ३१०
सरु–(फा. सर्व का अपभ्रष्ट) सरूका वृक्ष ६१२, ५४१
सरबर–बराबरी, समानता १७९, १९४
सवंग–सब प्रकारसे (सं. सर्वांग) २६९
सर्वर–जलाशय, झील (सं. सरस्, सरोवर) १४६, १९०
सऱ्हावना–स्तुति करना (सं.√श्लाघन) २१७
संव-वारना–व्यवस्थित करना (सं. सं+√वृ) ६१, १३३
सवा–एक और पाव (सं. सपाद) ४३१, ४३५
सहस–हजार (सं. सहस्र) ३६६, ६७६, ७११
सा–समान (सं. समम्) ६५, ७०, ७०७
साज–शृंगार, सिद्धता (सं.√सज्ज्) ३०५, ३२८, ५३४, ५४६
सांचा–सच्चा (सं. सत्य) ५५, ६३, ७१
सांज–शाम, संध्या (सं. संध्या) १६०, २६४
सात–छह और एक (सं. सप्त) ३१६
साथ–सह (सं. समं + स्थ) ३०८, ५५० (त), ५८७ (त)
साथी–सहवासी (सं. सम + स्थ) ३०८
सार–समान (सं. सदृश) २७२, ३९४

# फ़ार्सी-अ़रबी शब्दकोश

## संक्षेप

अ़—अ़रबी
अफ—अफ़ग़ानी
अव—अवेस्ता
प—पह्लवी
पा—पाज़ंद
कु—कुर्दी
फा—फ़ार्सी
प्राफा—दारयवहूके शिलालेखोंकी प्राचीन फार्सी
सं—संस्कृत

सूचन–अंक ग्रंथके जोडोंके। शीर्षकोंमें आए शब्दोंके सामने शीर्षकपूर्व श्लोकका अंक दिया गया है।

### अ

अ़क़्ल (अ)–बुद्धि ५, १०६, ४८५

अ़क्स (अ)–प्रतिबिंब २३८

अगर (फा)–यदि, अगरचि (प. अकर्च, नई फा–हॅगिज, पा–अगर, प्राफा–हकरीम) २३८, २७१, २७२

अज़ (फा)–से (प्राफा–हचा, अव–हच प–अज़, सं. सचा) ४९२, ५४६

अ़जब (अ)–चमत्कृत २०३, २१२

अ़जम (अ)–परदेश, ईरान ९९

अज़ल (अ)–आदि, आद्यतम १२१, ३४४

अ़द्ल (अ)–न्याय ५५, १७४, ४८३

अनार (फा)–फलविशेष, दाडिंब १४४, ५४३

अन्बिया (अ)–नबी का बहुवचन, प्रेषित ४७

अफ़राज़ (फा–अफराख़्तन)–शोभा देना (प–अफ्रास्तन, अफ्राख़्तन, सं. अभि+राज्) ५४६

अफ़ान (अ)–खलीफा उस्मानके पिताका नाम ५६

अबद (अ)–अन्त्य, अनंत १२१

अबलक़ (अ)–काला और शुभ्र ४५३

अबू (अ)–पिता १९६

अब्र (फा)–मेघ, अम्बुद (प्राफा-अबू, अव–प अब्र, सं. अभ्र) १९७

अयान (अ)–स्पष्ट, आविष्कृत ४०, ८७, ३९१

### आ

अ़रब (अ)–अरब देश वा भाषा ९९

अर्वाह (अ)–रूह का बहुव०, आत्मा १०

अर्श (अ)–आकाश ३४

अ–अ़राबह (फा. तुर्की)–तोप रखनेकी गाडी २२६, २२७, २३३, २३५

अल्लाह (अ)–ईश्वर २

अल्फ़ाज़ (अ)–लफज का बहुव०, शब्द ११२

अव्वल (अ)–प्रथम २

अश्रफी (फा)–सोनेकी पुतली २४, २६

असहाब (अ)–साहिब का बहु० स्वामी, मित्र मक्काके वह साथी जिन्होंने मुहम्मदकी उसके धर्म फैलानेमें सहायता की ५०

अहद (अ)–एकमेव, अकेला

अहल (अ)–जन, लोक ५०, ५६६

अहवाल (अ)–हालका बहु०, वृत्तांत १३

### आ

आग़ाज़ (फा)–आरम्भ ५८९

आतश (फा)–अग्नि (अव-आतर्श, प-आतर्श बेल-आच्, सं. अथर्) ५४३

आ़दिल (अ)–न्यायी, अद्ल करनेवाला ७३

आन् (फा)–वह (अव-अन, अएश प-आन् पाजंद-आन्, सं. एष) ५६६

## आ

आमदन (फा)–आना (प्राफा-आ + √ गम्, अव-आ + √ गम, प-मतन, आमतन, सं. आ + √ गम्) ५४६
आरास्तह (फा-आरास्तन)–सुशोभित (प्राफा-राद्, अव-राद्, प-आरास्तन, सं. आ + √ राध्) २६८, ३९९, ५६६
आ़रब (अ)–अरब देश ४५६
आ़रिफ़ (अ)–ज्ञाता, ज्ञानी ३, १०८, १२६, ७१२
आ़लिम (अ)–विद्वान्, इल्मवाला ४९१
आल (अ)–पुत्रसंतान, संतति, रिश्तेदार ५०, ६२
आ़लम (अ)–जगत्, दुनिया ६, ८, १५, ९५, ५९३
आला (अ)–श्रेष्ठ ४८२, ५५३
आलो असहाब–इष्टमित्र, रिश्तेदार ५०
आवाज़ (फा)–ध्वनि, रव (प-आवाज, सं. आ+वाच्) ४०४, ४२२, ६४२
आश्कार (फा)–स्पष्ट, प्रकट (प-आश्कार-राक, अव-आविश्कार, सं. आविष्कार) ८०, १२५, १४३, २००
आशुफतह (फा)–क्षुब्ध (फा-आशु, शोफ्तन, अव-आ+ख्शुफ़्शन, प-आशोफ़्तन, सं. आ + √ क्षुभ्, क्षोभते) ४९७
आ़शिक़ (अ)–प्रेमी, प्रियकर ४६
आस्मान (फा)–आकाश (प्राफा-अस्मन्, अव-अस्मन्, प-आस्मान्, सं. अश्मन्) १५०, ३६६

## इ

इत्तिफ़ाक़ (अ)–ऐक्य, एकता ५८९
इदराक (अ)–बुद्धि, धी १०५, ११३
इन्साफ़ (अ)–न्याय ४८३
इब्तिदा (अ)–आरम्भ १४४, १४५
इब्न (अ)–पुत्र, बेटा ७१२

## क

अ़िमारत (अ)–घर, प्रासाद ३२८
अ़िलाम (अ)–बहुवचन अलामतका)–निशानी, मर्यादा, सीमा ८९
इलाही (अ)–ईश्वर १
अ़िल्म (अ)–ज्ञान १२
अ़िश्क़ (अ)–प्रेम ३८, ४७
अ़िष्क़बाज (अ. फा.)–प्रेमका खेल खेलनेवाला ६३
इश्तियाक़ (अ)–प्रेम ४९८
ईमान (अ)–प्रतिज्ञा, सौगंद

## उ

उस्ताद (फा)–गुरु, प्रवीण (अव-अवस्तात्, प-ओस्तात्) ६९, ७०, ९८, ११२

## ए

अ़ैन (अ)–केवल, निष्कलंक ४०
अ़ैब (अ)–व्यंग, कलंक १०८
अ़ैश (अ)–आराम, चैन ५१७, ५८९

## क

कंगूरा (फा. कुंगुर का अपभ्रष्ट)–दीवारका ऊपरी नकशीवाला भाग २२७, ३२१
कतबह (अ)–लेखन ७१२
क़तार (अ)–हार, अवाली ३०६, ५३४
क़द (अ)–शरीर, अंग २२७
कमर (फा)-मध्य-कटी (सं. ककुभ् + मूर्धन्) ४१, ६३९
कमान (फा.)–धनुष्य ४३९
करम (अ)–कृपा ४८५
क़रार (अ)–स्थिरता, अचलता ९६, १४१, ४९७
कर्दन (फा)–करना (प्राफा-कर, कुनावहि, अव-कर, करनोइति, प-कर्तन, सं. √ कृ, कृणोति) ५६६, ५८९

## क

क़लम (अ)–लेखनी २९, १३४
क़व्वाल (अ)–गानविशेष गानेवाला ६०६
कहकश (फा)–आकाशगंगा २३, २९
काकुल (फा)–बाल की लट ६१३
काग़ज़ (अ, तुर्की)–पत्र, पर्ण, कागद १३३, १४८
कातिब (अ)–लेखक २८
क़ादिर (अ)–सत्ताधीश, कुदरत रखनेवाला १४, ३१
कान (फा)–खदान, खानि (सं. खन्, खानि) १३४
काफ़ूर (फा)–कपूर, कर्पूर (सं. कर्पूर) ६२९
क़ाफ़िया (अ)–अंत्यानुप्रास ११६
कार (फा)–काम (अव-कार, प-कार, सं. कृ, कार) ५८९
कारी (फा)–गहरा जख़्म करनेवाला (सं. कृन्तति) ३१०
कि (फा)–कि, यद, जो (सं. यद्, प्रा. जं, गुजराती, जे, मराठी जे, जो. अव, किद् पष्तो-चिद्, चि) २०७
किताब (अ)–ग्रंथ, पुस्तक ९४, १४४, ६८६
किनार (फा)–तट, बाजू, सीमा (अव-करन, प-कनार) ५१, ५५०
किस्वत (अ)–पोशाक, परिधान २७९, २९१, ३६९, ५२२
क़ुदरत (अ)–निसर्ग, प्रकृति ९, ११९
कुन (अ. आज्ञार्थ कौन का)–हो, बनो १२०
कुन फ़यकुन (अ)–ईश्वरने कहा, ऐसा हो १२०
क़ुमरी (अ)–चीडी, पक्षिविशेष ४९०
क़ुमाश (अ)–रेशमी वस्त्र ५५६
कुन्ह (फा)–वस्तु, सत्व, विशालता १२
कुफ़्र (अ)–धर्मविद्रोह, अन्यधर्मीयता १९३
कुम्मेत (अ)–घोडाविशेष ४५२
कूर (फा)–अंधा ३३

## ख

कुरंग (अ)–करडे रंगका घोडा ४५२
कुर्सी (अ)–आसन, स्थान ३४
कूज़दान (अ)–सुराही पात्र ५३७
कूस (फा)–डौल ४०४
कुल्फ़ (अ. कुफ़्ल)–ताला ११३

## ख

ख़त (अ)–अक्षर, ३४३
ख़त्म (अ)–पूरा, पूर्ण ६८६
ख़बर (अ)–वार्ता १४१, ३७३, ४९७
ख़-ख़ियाल (फा)–विचार १३, ८३, १२५
ख़-ख़ुल्द (अ)–स्वर्ग ६८
ख़र (फा)–गधा, गर्दभ (अव-खर, प-खर, सं. खर) ४८९
ख़रज (ख़र्ज-अरबी)–मेघके समान १५
ख़राब (अ)–बुरा, वीरान ५१९
ख़ल्क़ (अ)–लोक, मनुष्य २९५, ३२३
ख़ातिम (अ)–पूरा, खत्म करनेवाला ४७
ख़ातिमुल–अम्बिया (अ)–प्रेषितों, नबीयोंका अंतिम प्रेषित, मुहम्मदकी उपाधि ४७
ख़ानह (फा)–घर, वंश ५६२
ख़ानवादा (फा)–घराना, वंश ५८
ख़ास (अ)–विशिष्ट, विशेष ६२
ख़ासलत (अ. खसलत का अपभ्रंश)–स्वभाव ७०७
ख़त्ताब (अ)–खातिब का बहु० अभिभाषी खिताब करनेवाला ५५
ख़िलअत (अ)–पोशाक ५४६
ख़िलाफ़त (अ)–खलीफाकी गद्दी, सिंहासन, राज्य ५९
ख़ुद (फा)–स्वयं (अव-ख्वतो, प-ख्वत्, पा-खुद सं. स्वतस्) २६८
ख़ुदा (फा.)–स्वयं, ईश्वर (अव-खतो, प-ख्वत्, पा-खुद, सं. स्वधा) २६८

**ख**

खुदा (फा)—देखिए, खुदाई ८०, ४७६, ७१२
खुदाई (फा)—स्वामित्व, ईश्वरत्व (अव-ख्वदाय, प-खुताई, सं. स्वधा) ७३, २५६
खुर्श (फा—खुर्शा का अपभ्रष्ट खुर, हुर)—सूर्य (अव-ह्वर्, प-खुर, ख्वर, सं. स्वर्) २२८, ६२९
खुशबुई (फा)—सुगंधता ५५३
खुश (फा)—सुचारु, आनंददायी (प-ख्वश, पुरानी, फा-ख्वश, सं. सु + अक्षि, स्वक्ष) ११७, ३३८, ४७६, ५२५
खुल्द (अ)—स्थान, स्वर्ग ४२७
खुल्देल्लाह (अ)—ईश्वरसमान ४२७
खूब (फा)—अच्छा, सुंदर (अव-ह्वपह, प-ख्वप्, सं. सु+अपस्) १०३, १४३, २०१, २६१
खोई (फा)—घर्म (अव-ख्वएद, प-ख्वई, ख्वेदे, सं. स्वेद) ३५१, ३६३

**ग**

गंज (फा)—कोश, भंडार १, ७, ३८, ६९६
गदा (फा)—भिक्षुक, याचक ६६
गर्द (फा)—धूलि, रज १४, ५९९
गर्दन (फा)—ग्रीवा (प्राफा-वर्तन, प-गर्तन, कुर्दी-गर्दान) ५८३
गल (फा)—कंठ, गर्दन (सं. गल) २६, ५५७, ६३२
ग़लग़लह (फा)—ध्वनि, रव ४०४
गलू (फा)—कंठ, गर्दन (अव-गरह, प-गरुक्, सं. गल) ६३१
ग़व्वास (अ)—गोता, डूब लगानेवाला १२३
गाशयह (अ)—आच्छादन ४४४, ४७०
गिर्द (फा)—आवृत्त, बाजू (प्राफा-वर्त, प-कर्त, फार्सी-वर्द, सं. वृत्त, √ वृत्) १५७, २३५
गिरिह (फा)—गांठ (सं. ग्रंथी, √ ग्रथ्) ५८९
गिलावा (फा. गिलावह्)—गिलावा ३३२

**ज**

गुज़ाश्तन (फा)—गुज़ारना, चलाना (प्राफा-वि+√ तृ, अव-वीतरतो, प-वितारतन, सं. वि+√ तर) ३९९
गेसू (फा)—केश, बाल (अव-गएस, प-गेस, सं. केश) ६०
गुल (फा)—फूल (प. वर्ता, वर्दा) ६१३
गोहर (फा = अरबी-जौहर)—रत्न, मोती (प. गोह्र, गोहर, सं. गोत्र) ११०, १२५

**च**

चमन (फा)—बाग, उद्यान ३७८
चर्ख़ (फा)—आकाश (अव-चख़्र, प-चर्क, कु-चर्ख़, सं. चक्रम्) १, २७, ३६
चश्म (फा)—आंख (अव-चश्मन, प-चश्म, सं. चक्षुस्) ६२३
चश्मह (फा)—निर्झर, नाला ४१९
चाबूक (फा. चाबुक)—त्वरा, वेगवत्, प्रतोद १०८
चाखनी (फा)—रुचि (प-चाश्त, चाशिश्न, सं. चाश्) ७६, १६९, ५५४
चाशनीगीर (फा)—रुचि पैदा करनेवाला ५५४
चिराग़ (फा)—दीप, दिया ६२

**ज**

ज़अफ़रान (फा)—कस्तूरी २५४, ३७०, ६४५
जद (अ)—संपत्ति, वैभव ८
ज़न (पश्तो, अस्तराबाद)—प्रेयसी, स्त्री २१
ज़न, ज़दन (फा)—मारना, पीटना (प्राफा-ज़न, अव-ज़न्, प-जतन, सं. हन्, हन्ति) ६०७
ज़ंजीर (फा)—सांखल ४४१
जनावर (फा. जान्वर का अपभ्रष्ट)—पशु, प्राणी, देखिए जानवर ४, ४८७, ४९२
ज़बान (फा.)—जीभ, वाणी (अव-हिज़ू, प-उज़्वान्, सं. जिह्वा) १, ३६, ९८, २१७, ६५५
जमअ् (अ)—समुदाय, समूह ५६६

### ज

ज़मानह (फा)—काल, समय (सं. ज्रयन) १६, ३८१
ज़मीन (फा)—भूमि, पृथ्वी (प्राफा-उज़्मया, अव-ज़ाव, प. ज़मीक्, सं. ज्मा) ७७, ३२१, ५६३
ज़र (फा)—सुवर्ण, धन (अव-ज़ेरि, ज़रन्य, प-ज़र, सं. हरि, हिरण्य) ३०, २२२, ३५२, ५७४
ज़रबाफ़ (फा)—ज़रीन ४४४, ५५२
ज़र-हल (फा. अ.)—सुवर्णरस चित्ररेखनके लिए ३०
ज़रा (अ)—कण, अणु, किंचित् १, ५०
ज़राईन (फा. ज़र)—सुवर्ण अलंकार ५७४
ज़रीन (फा)—देखिए ज़र, सुवर्णमय २२२
ज़वाब (अ)—उत्तर ९४, ५१९
जशन् (फा)—समारंभ (अव-यस्न, प-जश्न, सं. यज्ञ) ६८२
ज़हर (फा)—विष (प-ज़हर, सं. ह्न) १३९, १६५
जहाज (अ)—नौ, नौका ३०५
जहान (फा)—दुनिया, जगत् (फा-गेहान्, अव-गएथी, प-गेहान, सं. गेहान्) ६८, ७१, २८३
जहान-पनाह (फा)—जगदाश्रय, जगाधार ४९७
ज़ात (अ)—व्यक्ति, मनुष्य ३२०, ३६०, ५२४
ज़ादह (फा)—पुत्र (अव-√जन्, ज़ात, प-ज़ातन, सं. √ जन्, जातः) ४७२, ६०७
जानवर (फा. जान + वर)—पशु २१५
ज़ाहिर (अ)—स्पष्ट, आविष्कृत ४५
ज़िक्र (अ)—उल्लेख, वर्णन ४९०
जिन्स (अ)—प्रकार, समान १३२, २६२, २६८, वस्तु १०, ९७, २३८
ज़िह (फा)—धनुष्यकी डोरी (अव—ज्या, काश्मीरी—ज़ह, ज़े, सं. ज्या) ५९५

### त

ज़ीन (फा)—पल्याण, पलान
ज़ुलैख़ा (अ)—नायिकाविशेष १८३
ज़ुल्मात (अ)—अंधेरा ४२९
ज़ुहूर (अ)—स्पष्ट आविष्कार १६९
ज़ूलक़रन (अ)—दारयवहू ह्खामनिशकी उपाधि १९२
ज़ेब (फा)—शोभा २९८, ३४३, ५८३
ज़ोर (फा)—शक्ति, प्रभाव (अव-जोथ्र, प-ज़ोहर, ज़ोर, सं. होत्रा) १०७
जौहरी (अ)—देखिए गोहर ११०, १२५, २६०

### झ

झार (फा)—देखिए ज़हर-अपभ्रष्ट रूप १६५

### त

तअ़रीफ़ (अ)—वर्णन, व्याख्या, स्तुति ६०, १५२, २१४
तअ़लीम (अ)—शिक्षा, विद्या ३४४, ४६७
तक़वा (अ)—शक्ति, बल १८५
तख़्त (फा)—गद्दी, सिंहासन, फुली (अव-थ्वख़्श, प-तुख़्शक, तुख़्शीदन, सं. √त्वक्ष्) ३३८, ३४५
तबअ़ (अ)—प्रकृति, धी ११५
तजम्मुल (अ)—शोभा, प्रकाश ५४६
तबला (अ-तबल)—थाल, परात २६२, २६३
तबीब (अ)—वैद्य ५०४, ५१२
तमाम (अ)—सब, पूरा ४७, १४५, ६४४
तर (फा. अधिकता का परसर्ग)—तर (सं. तर) ६५०
तरफ़ (अ)—ओर, दिशा ८, ९१, १५१, २९०, ४८७
तरीक़त (अ)—ईश्वरभक्तिकी साधना, मार्ग ४०
तवारीख़ (अ)—तारीख़ें, तारीखका बहु० तिथियां ६८६

## त

तश्रीफ़ (अ)–वेश, पोशाख ५४६, ५५६

तस्बीह (अ)–माला, हार ६३१

तहक़ीक़ (अ)–सत्य, सत्‌भाव ६०

ताईत (अ-तअ़वीज़)–मंत्रपूत डिबी ५७८

ताक़ (अ)–मिहराब, खिडकी २९८, ३१७

ताब (फा)–धूप, तेज (सं. ताप, तप्त) १६२, २७०

तार (फा)–धागा, डोरा (अव-तथ्र, सं. तन्त्र) ६११

तार-ज़र (फा)–सुवर्णतंतु ६४०

तास (अ)–बजानेकी घंटा २२२, २४३, २४४, ६९९

तीर (फा)–शर, बाण (अव-तध्न्य, तार, तारीक, प-तेरक, अफ-तीर, सं. तीर) १३५

तीला (फा)–गोलाकार गंध (सं. तिलक) ६२०

तुज्जार (अ)–ताजिर का बहुव०, व्यापारी २५९

तुरा (अ. तुर्रह)–शिरोगुच्छ ८४

तूफ़ान (अ)–झंझावात ४२९

तूस (फा)–नगरविशेष । यह नगर ईरान देशमें नैशापूरके समीप है ४७

तेग़ (फा)–अस्त्र, खड्ग (अव-तएग, तीग्र, सं. तीव्र) १३५

तेज़ी (अ. ताज़ी)–घोडा, अश्व (यह अपभ्रंशीकरण अमीर खुस्रौके फार्सी साहित्यमें भी मिलता है) ३०७, ४५९, ४७१

## द

दफ़ (अ. फा.)–ढोल ६०७

दफ़्तर (अ)–कचहरी, ग्रंथ ४८

दर (फा)–(१) में, मध्य (प. दर, सं. अंतर्) ५३, ११६, ३९९

(२) द्वार (प्राफा-दुवर, अव-द्वार, प-दर, सं. द्वार्) ५

## द

दरख़्त (फा)–वृक्ष (अव-द्रख़्त, प-द्रख्त, सं. दृध) ४९७, ५६६

दर-बार (फ)–संबंधी, संलग्न ९९

दर-बार (फा)–सभास्थान, आस्थानी (दर–प्राफा-दुवर, अव-द्वार, प-दर, सं. द्वार और बार–सं. वार) २९६, ३११

दराज़ (फा)–लंबा, दीर्घ (अव-द्राज़ह, प-द्राज़, सं. द्राघ्मन्) ६०

दर्द (फा)–दु:ख (प-दर्त, दर्तक, फा-आज़ार) २८७, ५०५

दर्या (फा)–समुद्र (अव-ज्रयह, प-दर्यक, प्राफा-द्रयह, सं. ज्रयस्) ४८, १२२

द-दावात (फा)–मसीपात्र २९

दर्वेश (फा)–भिखारी (अव-द्रिगु, प-दर्योश-शी) ४९०

दस्त (फा)–हाथ (प्राफा-दस्त, अव-ज़स्त, प-दस्त, सं. हस्त) ६३४

दह (फा)–दस (अव-दस, प-दहुम, सं. दश) ५८

दारू (फा)–औषध, उपाय (अव-द्रव, प-दारूक, सं. √ धृ, धर) ५१०

दाद (फा)–न्याय, धारणा, आश्रय (प्राफा-दात, अव-दात, सं. √ धा, धामन्) १९५, ६७३

दानाई (फा)–चतुरता, बुद्धिमता (प्राफा-√ दन्, अव-जन्, ज़ानता, प-दानिश्तन, सं. √ ज्ञा, जानाति) ४८६

दिल (फा)–हृदय, हिया (अव-ज़रद्, ज़रदय, प-दिल, सं. हृदय) ४४, १३१, १३५, १५४, १९३

दिवाना (फा. दीवानह)–मूर्ख, निर्बुद्ध ५०२

दिदार (फा)–दर्शन (फा. दीदन, अव-दाइ, प-दीतन, सं. √ धाइ, दिध्ये) ५११, ५१४

दिहलीज़ (फा)–द्वारके समीपकी कोठरी २९७, ३०२

### द

दीदह (फा.)–आंख, चक्षु (प्राफा-दाइ, अव-दिदाइति, सं. √दृश्) ३६२, ५६३

दीन (फा.)–धर्म, नीति (अव-दएना, प-दीन, सं. ध्य, ध्यान) ५२

दीनार–(अ) नाणक, सुवर्णनाणक (ग्रीक-दिनारस) ४५४

दुआ–आशीर्वाद ३७६

दुकान (अ-दुक्कान)–पण्यालय, विक्रीघर १०३, २५८, २६१

दुनिया (फा.)–पृथ्वी, जगत् ९७

दुर्जक (अ.)–पेटी, पिंटारा १३३

दूद, दूदह (फा.)–धूम, धुंवा, काजल (प-दूत, दूतक, सं. धूम) ६२३

देव (फा.)–देव का उलटा अर्थ, दुष्ट, पिशाच्च (अव-दएव, प-देव, सं. देव) २४२

दौर (फा.)–चक्र, परिवर्तन १९, ३९, १९२, २२९

दौलत (अ.)–धन, संपत् २३१, २३३, ३६८

### न

नक़्श (अ.)–चित्र, रेखन, ३५२

नग़्ज़ (अ.)–सुंदर, चपल ४५५

नज़र (अ.)–दृष्टि ४३, ६८, ८५, १२६, ४६६

नबी (अ.)–ईश्वरवाणी, कुरान, मुहम्मदकी उपाधि, पैगंबर मुहम्मद ५३

नवाज़ना (फा. नवाख़्तन)–स्तुति करना, सहाय करना, इच्छापूर्ति करना, ६६

नहव (अ.)–मार्ग, रास्ता १३

नसब (अ.)–कुल, वंश ६२

नाज़ (फा.)–वैभव, प्रौढी, गर्व ६३

नाफ़ (फा. नाफ़ह)–नाभि (अव-नाफ़ह, नाफ़्य, प-नाफ़क, नाफ़, सं. नाभि) १३६

नामदार (फा.)–कीर्तिमान (सं. नाम + √धृ, धारिन्) ३३५, ५१३

### प

नाम, नामह (फा.)–ग्रंथ, पुस्तक (सं. नाम + क) १, १४४, १४५, ६८६, ७११

निगार (फा. निगारीदन)–लिखना, रेखांकित करना (प. निकार, सं. नि + √कृ) ११४, १७६, ३४१

निदा (अ.)–ध्वनि, स्वन ४५

निशान (फा.)–झंडा, ध्वज ३१, ९१, ९७, १६५, ५२८

नुमूदन (फा.)–बतलाना, दिखाना (हिन्दी नुमाना) ६४, २२२, ५८९

नूर (अ.)–प्रकाश ४३

नेक (फा.)–अच्छा (प्राफा-नैब, प-नेवक, नेवकिह) २८, १९३

नेको-बद (फा.)–अच्छा और बुरा २८

नेज़ह (फा.)–छोटा भाला ३१०, ५४१

नौ (फा.)–नया (अव-नव्, प-नवक, सं. नव) ५८९, ५९०

नौबत (अ.)–दौर, क्रांति, रक्षक ४१

नौशेरवान् (फा.)–ईरानका न्यायी राजा, खुस्रौ प्रथम-१९३

### प

पंज (फा.)–पांच (अव-पंच, प-पंच्, पंचुम, सं. पञ्च) ५०

पंज-तन (फा.)–पांच शरीर, मुहम्मद, फातिमा, अली, हसन और हुसेन यह पाँचों पवित्र आत्मा ५०

पनाह (फा.)–आश्रय, आसरी (प-पनाह) ६८, ४९७

पंद (फा.)–उपदेश, मार्गदर्शन (प्राफा-पथि, अव-पंतन्, प-पंद, सं. पथन्) ९९

पर्चम (फा.)–निशान, ध्वज (सं. प्रत्यञ्जन–सुशोभित करना) ५३९

पर्दह (फा.)–अंतःपट ९

पल्क (फा. पलक)–आंखके ऊपरका चमडा, पपोटा ५६५

### प

पादशाह (फा.)—राजा (प्राफा-पतिख़्शायथिय, प-पातख़्शा) २८६

पाय (फा.)—पावूं (अव-पाद, प-पाई, सं. पाद) ५४६, ६४२

पाए-कुबान (फा. पाएकूब का ब०)—नर्तिकाएं २६८, ६०९, ६४४

पावा—बांसरी २५२

पियालह (फा.)—प्याला ६३१

पिस्तान (फा.)—स्तन, कुच (अव-पश्तान, प-पिस्तान) ६३६

पेशानी (फा.)—कपोल, माथा ६१८

### फ

फ़न (अ.)—कला, काव्य १०१, ३७८

फ़र्मान (फा.)—आज्ञा, राजाज्ञा (प्राफा-फ्मान, प-फ़र्मूतन, फ़र्मान, सं. प्रमाण) ३, ४०५, ५५१, ५९३

फ़र्मूदन (फा.)—देखिए फर्मान, आज्ञा करना ९९

फ़र्राश (अ.)—फैलाना, बिछाना, बिछायत ११४

फ़ल्क (फा.)—आकाश, अवकाश ४१

फ़हम (अ.)—समझ, बुद्धि ८३, ४८६

फ़ाख़्ती (अ.)—पक्षीविशेष ५८३

फ़ाम (अ. फहम का अपभ्रष्ट)—बुद्धि ८९

फ़िराक़ (अ.)—वियोग, जुदाई ४९८

फ़िक्र (अ.)—चिंता, विचार ५, १५४, ७००

फ़िरिश्तह (फा.)—देवदूत ३३८, ३७३

फ़ीरोज (फा. पीरोज)—रत्नविशेष २६२

फ़ील (फा. पील)—हाथी ४२७

फुनून (अ. फन का ब०)—कला १२०

फ़ौज (अ.)—सेना ४२७

### ब

बइअ़त (अ.)—शिष्यत्व, अनुयायित्व ५९

बख़्श (फा. बख़्शीदन)—क्षमा करना, देना २३९

बद (फा.)—बुरा, दुष्ट (सं. बत) २८

बदल (अ.)—परिवर्तन, ऐवज, हेरफेर ५९६

बनफ़्शा (फा.)—फूलविशेष ३७०

बयान (फा.)—वर्णन (सं. व्याख्यान) ४०, ५४

बर्ग (फा.)—वृक्षका पान (अव-वरकह, प-वर्ग, सं. वल्क) ६२७

बलिक (फा.)—वलेकिन, परंतु ५१

बहार (फा.)—वसंतर्तु (प्राफा-वाहर, अव-वंहरि, प-वहार, सं. वसंत) ५४६

बाक़ी (अ,)—शेष, अवशिष्ट ९५, ५१४

बाग़ (फा.)—उद्यान (अव-बाग़, प-बाग़) ३६८, ४९७, ५५८, ७१०

बाज़ (फा.)—श्येनपक्षी, शिकारी, पक्षीविशेष (प-बाज़, सं. वाजिन्) ६०, १८५

बाज़ार (फा.)—हाट, पण्यस्थान (प-वाचार, वचार, प्राफा-अपाचरिश) १६, २४१, २५७

बार (फा.)—दरबार, सभा (प-बार, सं. वार) ६०१

बारगा-गाह (फा. बार+गाह)—राजदरबार, आस्थानी (अव-वार, प-बार, सं. वार) ५९४

बाज़ीगर (फा.)—खेलनेवाला, जादूगार १६

बाज़ू (फा.)—बाहू, हात (अव-बाज़ू, प-बाज़ीह, बाज़क, सं. बाहु) ५, ४६७

बाज़ूबंद (फा. बाज़ू + बंद)—बाहूपर बांधनेका अलंकार ५७८

बादल (फा.)—मेघ (सं. वात+ल) ४२०, ४३९, ६२७

बादशाह (फा.)—देखिए पातशाह ३३४

### ब

बार (फा.)–फल, भार (प-बार, सं. भार) ४८०, ५३५

बारदार (फा.)–फलयुक्त (फा-दार, दाश्तन, प्राफा-दर, दार, अव-दार, प-दाश्तान, सं. √ धृ-धारयति) ४८०

बाल (फा.)–बाल, केस, रोम (सं. वाल, बाल) ४९

बाफ़तन (फा.)–बुनना (ओसेटी-वाफिन, सं. √ वे, वावायते, वावाति, वावेति) ५५२

बिराहीम (अ.)–इब्राहीमका अपभ्रंश ७११

बिस्म (अ.)–ब + इस्म, नामसे २

बिहिश्त (फा.)–स्वर्ग (अव-वहिश्त, प-वहिश्त, सं. वसिष्ठ) २३८, ३३९

बीनी (फा.)–नाक (अव-वएना, प-वेनीक्, बेनीक्) ६२१

बुन (फा.)–पाया, आधार (अव-प, बुन, सं. बुध्न) ३२९

बुनयाद (फा.)–पाया, आधार (देखिए बुन +सं. पात) ३२९

बूंद (फा.)–बिंदु ३२, ३५१

बे (फा.)–बिना, अतिरिक्त ८८

बे-क़रार (फा. अ.)–अस्थिर १४१

बे-शुमार (फा.)–अगणित, अनगिनत (अव-मर, प-शुमार, सं. √ स्मृ) ८, १४४

बोई (फा. बूई, बोईदन)–सुगंध (अव-बोइदि, प-बोद, बोई, सं. √ बुध्) ११७, २६१, ४७७

बोर (अ.)–घोडा ४५२

बोसीदन (फा.)–चुंबन करना ५४६

### म

म (फा.)–मत, नको (प्राफा-मा, सं. मा) २३६

मअ़नी (अ.)–अर्थ, आशय, अभिप्राय १०४, १२६, १३७

मअ़मूर (अ.)–परिपूर्ण, भरा हुआ २३८, २९२

मअ़रिफ़त (अ.)–ईश्वरप्राप्तिके मार्गका ज्ञान ४०

मअ़शूक़ (अ.)–प्रेमासक्त, प्रियकर ४६, ६३

मक़्बूल (अ.)–संमत ७१२

मख़्फ़ी (अ.)–गुप्त, गूढ ७, ३८

मख़मल (फा.)–बारीक पतला कपडा ४७०

मगर (फा. म + अगर)–परंतु (पाजंद-म + अगर) २३८

मज़्दूर (अ.)–नोकर, सेवक ३२९

मज़्मून (अ.)–विषय, आशय ९४, ११५

मज्लिस (अ.)–सभा ५२, ८४, ११५

मदह (अ.)–स्तुति, प्रशंसा ५०, १४४

मन (फा.)–मैं (सं. अहम्) ५६६

म-बादा (फा.)–ऐसा न हो (सं. मा + पात, अव-पात, प-पात) २३६

मरम (अ-मरहम का अपभ्रष्ट)–दवाई, औषध १९५

मश्विरत (अ.)–मंत्रणा ५६६

मस्जिद (अ.)–पूजास्थान, मुसलमानोंका देवल २४१

मस्त (फा.)–मत्त, माता हुआ (अव-मद, प-मस्त, सं. मत्त) ३०२, ३०५

मस्नवी (अ.)–द्विपंक्ती वृत्तमें लिखा कथा-काव्य ९९

महफ़ूज़ (अ.)–सुरक्षित ३४५

महल (अ.)–प्रासाद, घर ११४, २३१, ३११

महलदार (अ. फा.)–रक्षक ५३८

माज़ी (अ.)–भूतकाल १३

माह (फा.)–(१) मास, महिना (२) चंद्र (प्राफा-माह, अव, प-माह, सं. √ मा, मास) १६५, १७७, २३०, ३११, ६१५

मियान (फा.)–में, मध्य (अव-मइद्यन, प-मियान, सं. मध्य) ५३, ११६, २२९

मिस्कल (अ.)–मुलामा करनेका साधन ३८

मिस्र (अ.)–ईजिप्त देश १८१

### र

राज़ (फा.)–गुह्य, गुप्त बात (अव-रज़ह, प-राज़, सं. रहस्) ६७

राह (फा.)–मार्ग, पथ (प-रास्, अप-राह, सं. रथ्या) १७२

रिकाब (अ.)–पल्याणका पैर रखनेका स्थान ४६६

रिवायत (अ.)–इतिहास, परम्परा ३३

रिसालत (अ.)–प्रेषितकार्य ३५

रुख़सार (फा.)–गाल ३६१

रूयं (फा.)–मुख, चिहरा (सं. रूप) ५३८

रुमाल (फा.)–मुख पोछनेका छोटा कपडा (सं. रूप + √ मृद्, फ़ा-मालीदन) ५३८

रोज़ (फा.)–दिन, दिवस (प्राफा-रोचन, प-रोचन, सं. रोचन) ७८, ३९९, ५८९

रोशन (फा.)–प्रकाशित (अव-रोख्शन, प-रोशन, सं. √ रुच्) १६१, २०६

### ल

लअ़ल (अ.)–रत्नविशेष ३४८, ३९७, ६१३

लक (फा.)–लक्ष, सौ हज़ार (सं. लक्ष) १५८

लक़ब (अ.)–नाम, उपनाम, उपाधि ७३

लंगर (फा.)–जहाजकी संखल ४४१

लफ़्ज़ (अ.)–शब्द ११२

लब (फा.)–होंट (प-लप, कुर्दी-लिव, काश्मिरी-लेव) १२४, ६२७

लर्ज़ह (फा. लर्ज़ीदन)–कंप, कांपना ४०६

लश्कर (फा.)–सेना, फ़ौज ४०४, ४८७, ५१८

लायक़ (अ.)–योग्य ८४

लासाई (फा.)–मादी, नास अर्थात् किसी पशुकी मादी ४५६

लीलम (फा-नीलम)–रत्नविशेष, नीलमणि (सं. नीलिमन्) २६२, ३६२, ६३१

लुक़मान (अ.)–ईसाप ८८

लौलाक (अ.)–तेरे इशारेके सिवा, जगत् अस्तित्वमें न आता ४५

### श

लौह (अ.)–फलक ३४५

वज़अ़ (अ.)–प्रकार, पहलू २६८, ६०९

वज़ीर (फा.)–प्रधान, मंत्री (फा-ग़ज़ीर, ग़िज़ीर, अव-विचीर, प-विचीर्) ५१७

वजूद (अ.)–अस्तित्व ३७

वर्क़ (अ.)–पर्ण, पत्ता २८, ३४, ४८, १६८

वलायत (अ.)–साधुता ५७

वली (अ.)–साधु, सज्जन ५७

वले (अ.)–परंतु १३०

वलेकिन (अ.)–परंतु ९२, १११, १५०

वहम (अ.)–शंका, संशय ११३

विलायत (अ.)–प्रदेश ५१९

### श

शक्ल (अ)–आकृति ७२

शफ़क़ (अ)–संध्यासमय १८८, ४०१

शब (फा.)–रात (प्राफा-छाप, अव-छाप, प-शप, सं. क्षप, क्षपा) ३९९

शमअ़ (अ.)–दिया, दीप ३९५

शमशाद (फा.)–ऊंचा वृक्षविशेष ६१२

शय (अ.)–वस्तु १०

शरीअ़त (अ.)–ईश्वरप्रणीत वा मुहम्मदके नियमोंका पालन ४०

शह-हा (फा. शाह का संक्षेप)–राजा ६५, ८६, १५५, १५८, १७७, ४९८, ५६९

शहनाई (फा.)–वाद्यविशेष (सं. शृंगनाद) २५२

शहबाज़ (फा.)–श्येनपक्षी ६०

शह-बार (फा.)–दरबार, आस्थानी (शह < क्षत्र + बार, सं. वार) ६०१

शहर (फा.)–नगर (प्राफा ख्शाथ्र, अव-ख्शाथ्र, प-शतर, पाजंद-शह्र, सं. क्षत्र) २२६, २२९, २३७, २३८, ५९३

शाअ़िरी (अ.)–कवित्व, साहित्य १०२

### श

शागिर्द (फा.)–शिष्य, अनुयायी (प. शागिर्द, सं. आशाकृत्) ९१

शाह (फा.)–राजा, नृप (प्राफा-ख्शायथिय, पाजंद-शाह, सं. क्षत्रिय) ६१, ७६, ३४९, ५४८

शाहे-आलम-पनाह (फा.अ.) जगदाश्रय राजा ६८, १४४, १९६, ५४७

शाह-ज़ादह (फा.)–राजपुत्र (शाह< सं. क्षत्र, ज़ादह< सं. जात) ४७२

शिअ़र (अ.)–काव्य, पद्य ६८, ९५, १०४

शिकार (फा. शिकारीदन)–व्याध (प-श्कर, शक्र, पष्तो-ष्कार, सं. स्कृ) १३५, ४०४

शुनीदन (फा. शुनूदन)–सुनना (अव-√ श्रव.-सुरुनोति, प-आश्नूतन, सं.√श्रव्, शृणोति) ४९२

शुजाअ़त (अ.)–शौर्य, पराक्रम ५७

शिताब (फा.)–त्वरा (अव-अइविश + √तप्, तापयति) ४६६

शुदन (फा.)–होना (अव-शव्, शवइते, सं. √ च्यव्, च्यवते) ४९७, ५४६

शुमार (फा. शुमुर्दन)–गणना (अव. √ मर-मारयति, प-शुमार, सं.√स्मर्) ८८, ६७९

शुरूअ़ (अ.)–आरंभ ५८९

### स

सख़ा (अ.)–उदार, दाता १९६

सख़ावत (अ.)–औदार्य ५७, १९७, ४८३

सख़ुन, सुख़्न (अ.)–वचन, वाणी ११२

सद्र (अ.)–दीवानखाना, आस्थानी ११४, २८१

संदल (अ.)–चंदन (सं. चदन) २७५, ६४५

सफ़ेद (फा.)–शुभ्र (सं. श्वेत) २९, ३६२, ५६३

सरदार (फा.)–सेनानी ५२९

सरफ़ (अ.)–व्यय, खर्च १३

### स

सरीर (अ.)–गद्दी, सिंहासन ४८३

सरू (फा.)–देखिए सर्व ५४१, ६१२

सर्व (फा.)–वृक्षविशेष, सरू २७७

सल्तनत (अ.)–राज्य ६८

सल्तनतहू (अ.)–राज्यका स्वामी ६८

सह्‌रा (अ.)–अरण्य, वन ४९७

साक़ (अ.)–टांग, पर ६४०

साअ़त (अ.)–समय, घडी ७९

साख़्तन (फा.)–बनाना, घडना (अव-सच्, प-साख़्तन) ५४६

सितारह-रा (फा.)–तारा (अव-स्तर, प-स्तारक, सं. स्तृ) २४, २२४, ३१८, ३२३, ३२७, ३८६

साल (फा.)–वर्ष (अव-सरज़, प-साल्, सालक, सर्द, सं. शरद्) ५८९

सालगिरिह़ (फा.)–बरसगांठ ५८९

सितार (फा.)–वाद्यविशेष (फा. सि, सिह< त्रि और ता, सं. तन्त्र, त्रितंत्र) ६२७, ६४८

सिद्‌क़ (अ.)–अर्पण, दान ४४, ५२

सिफ़त (अ.)–(१) गुण, सद्‌गुण ४, ८३, १४५, १५२, ७०९
(२) वर्णन ३६, ४८

सियाह-ही (फा.)–कालापन (अव-स्याव, प-सियाक्, सियाह, सं. श्याव) २५, ३३, ४२, १३९, १६५

सिलह (अ.)–हथयार, शस्त्र ४७२

सिलह (अ.फा.)–शस्त्रधारी, सैनिक ४७२

सीनह (फा.)–उरःस्थल ४०९, ६३८

सीमुर्ग (फा.)–श्येन, बाज़, सिकरापक्षी, (अव-सएनो मरग़ो, प-सेनमुर्व, सेनें मुरूक, सं. श्येन + मृग) ४८८

सुबह (अ.)–प्रभात २१, १५९, ४०४

सुबहान (अ.)–ईश्वर ७१

### स

सुर्ख़ (फा.)–रक्तवर्ण, लाल (प्राफा-हुख़्र, अव-सुख़्र, प-सुख़्र, सं. शुक्र) ५८०

सुल्तान (अ.)–राजा ७१, ७२

सुर्ख़ाब (फा. सुर्ख़ + आब)–लाल पानी, अश्वविशेष, प्राणिविशेष ५८४

सूरत (अ.)–आकृति ६४

स्याह (फा.)–सियाह का अपभ्रष्ट, काला (सं. श्याम) १७१, ३५६, ६११

स्वार (फा.)–घोडसवार (फा-सुवार, अस्वार, प्राफा-अस्बार, सं. अश्व+वार) ४७२, ५३५

### ह

हक़ (अ.)–ईश्वर, सत्य ११९

हक़ीक़त (अ.)–ईश्वरकी ज्ञानप्राप्ति ४०

हंगाम (फा.)–ऋतु, समय (प्राफा-अव-प, हंगाम) ५१७

हज़रत (अ.)–श्रेष्ठ पुरुष ३५, १४४, १९६

हज़ार (फा.)–दस सौ (अव-हज़र, प-हज़ार, हज़ारक, सं. सहस्र) ४९, १७९, २१६, २८६

हद्द (अ.)–सीमा, मर्यादा ५६

### ह

हबशिनी (अ.)–अबिसिनियाकी स्त्री ४३

हमिलान (अ. हमेलान)–चांदी सोनेकी कंठ-माला २५७

हर (फा.)–सब, प्रत्येक (प्राफा-हरुव, अव-हउर्व, प-हर, सं. सर्व) ४०५, ५४७

हर्फ़, हरफ़ (अ.)–अक्षर २९, ३५, १४०

हर्फान (अ.)–अरबी हर्फ़ शब्दका फार्सी बहु० अक्षर १३३

हवाल (अ.)–विचलित, अस्थिर ४०७

हाल (अ.)–वृत्तांत, स्थिति १३, ८४, ५०९

हिकमत (अ.)–कौशल्य, चातुर्य ५१७

हुक्म (अ.)–आज्ञा ३०, ५६९

हुनर (फा.)–कुशलता, नैपुण्य (अव-हुनर, प-हुनर, सं. सूनर, सुंदर) १०८, ६५४

हुस्न (अ.)–सौंदर्य, चारुता १७०, १८३, ६३७

हूर (अ.)–अप्सरा, परी २८३

हैबत (अ.)–डर, भीति ४०४

हैरान (अ.)–त्रस्त, हतबुद्ध १२, १५३, ३७२

हौज़ (अ)–कुंड १३८, ५५९, ६३७

हौस (अ. हवस, परंतु ध्वनी और अर्थसन्धारणामें मराठीमें भेद है)–अभिलाषा, छंद ७०६

## PUBLICATIONS OF THE DEPARTMENT OF ARCHIVES MAHARASHTRA STATE

### I. MAHARASHTRA ARCHIVES BULLETINS
[Edited by Shri V. G. Khobrekar]

| | | | | |
|---|---|---|---|---|
| (1) | No. 1* | .. (i) Journal of James Anderson (1783–1785), (ii) The Legend of Nana Saheb (Dhondopant Nana), (iii) A Fragment of Autobiography, 1857 (in Marathi) .. | Re. | 0·92 |
| (2) | No. 2* | .. Ibrat-Nama by Faqir Khair-ud-din (English translation by Sir Jadunath Sarkar) .. .. | Rs. | 1·60 |
| (3) | No. 3‡ | .. (i) Rao Saheb (nephew of Nana Saheb of 1857 fame), (ii) Kalyan Residency Diary, 1781, (iii) Kalyan Treasure Trove Case, 1781, (iv) Historical Account of Himmat Bahadur Chavan .. | Rs. | 1·45 |
| (4) | No. 4‡ | .. (i) The Pretender of Govind Rao Ghorpade of Mudhol, (ii) The Legend of Nana Saheb, (iii) Mahadji Ram Karandikar's Account of Raghunathrao *alias* Dadasaheb (in Marathi) .. | Rs. | 1·75 |
| (5) | No. 5 | .. (i) Tarikh-i-Shah Alam by Munna Lal (English translation by Sir Jadunath Sarkar), (ii) Tatya Tope's Movements in Gujarat .. .. | Rs. | 2·30 |
| (6) | No. 6 | .. (i) First Protest of East India Company's Civil Servants of Bombay Presidency 1820-1822, (ii) Summary of Correspondence between the British and Shrimant Chintamanrao Appasaheb I of Sangli leading to the treaty of 1819 .. | Rs. | 1·50 |
| (7) | No. 7 | .. (i) The Konkan Railway, (ii) Literary Reviews by the Dakshina Prize Committee, (iii) Itineraries of the Peshwas and Haripant Phadke .. | Rs. | 2·15 |
| (8) | No. 8 | .. (i) Baizabai Sindhia and a Deccan Bund, (ii) Bayabai Apte, the daughter of Peshwa Bajirao II, (iii) The Step-brother of Tatya Tope .. .. | Rs. | 1·95 |
| (9) | No. 9 and 10 .. | The Legend of Nana Saheb .. | Rs. | 7·25 |

*In collaboration with Dr. P. M. Joshi.

‡In collaboration with the late Dr. M. G. Dikshit.

## II. SELECTIONS FROM PESHWA DAFTAR (New Series)
[Edited by Dr. P. M. Joshi]

| | | | | |
|---|---|---|---|---|
| (10) | Vol. I | .. Expansion of Maratha Power (1707–1761) | Rs. | 1·86 |
| (11) | Vol. III | .. Revival of Maratha Power (1761–1772).. | Rs. | 3·13 |

## III. POONA RESIDENCY CORRESPONDENCE
[Edited by Sir Jadunath Sarkar and G. S. Sardesai]

| | | | | |
|---|---|---|---|---|
| (12) | Vol. X | .. Treaty of Bassein and War of 1803–1804 in the Deccan .. .. | Rs. | 4·87 |
| (13) | Vol. XII | .. Poona Affairs—Elphinstone's Embassy (Part I, 1811–1815) .. .. | Rs. | 7·44 |
| (14) | Vol. XIII | .. –Do– (Part II, 1816–1818) .. | Rs. | 6·44 |
| (15) | Vol. XIV | .. Daulat Rao Sindhia and North India Affairs (1810 –1818) .. .. | Rs. | 6·50 |

## IV. PERSIAN RECORDS OF MARATHA HISTORY
[Edited by Sir Jadunath Sarkar]

| | | | | |
|---|---|---|---|---|
| (16) | Vol. I | .. Delhi Affairs (1761--1788).. .. | Rs. | 2·50 |
| (17) | Vol. II | .. Sindhia as Regent of Delhi (1787 and 1789--1791) .. .. | Rs. | 2·00 |

## V. OTHER PUBLICATIONS

| | | | |
|---|---|---|---|
| (18) | Descriptive Catalogue of Secret and Political Department Series (1755–1820) (Ed. Dr. V. G. Dighe) .. .. | Rs. | 5·56 |
| (19) | Historical Genealogies (Ed. G. S. Sardesai) .. | Rs. | 1·58 |
| (20) | Aitihasik Sadhane, 1688--1821 (in Marathi) (Ed. S. V. Avalaskar) .. .. .. | Rs. | 1·82 |

[The following are edited by Shri V. G. Khobrekar]

| | | | |
|---|---|---|---|
| (21) | Facsimile Handwriting of the Notable Personalities of Maratha History (in Marathi) (in collaboration with Dr. M. G. Dikshit) .. .. .. | Rs. | 28·50 |
| (22) | Descriptive Catalogue of the Papers in Shahu Daftar, Vol. I | Rs. | 21·00 |
| (23) | Descriptive Catalogue of the Papers in Shahu Daftar, Vol. II | Rs. | 17·00 |
| (24) | Descriptive Catalogue of the Nivadi Daftar.. .. | Rs. | 7·25 |
| (25) | Konkanchya Itihasachi Sadhane (in Marathi) .. | Rs. | 2·75 |
| (26) | Tarikh-i-Dilkasha (Sir Jadunath Sarkar Birth Centenary Commemoration Volume) .. .. .. | Rs. | 5·25 |